

काव्यमाला. २१.

श्रीसातवाहनविरचिता

# गाथासप्तशती ।

गङ्गाधरभट्टविरचितया टीकया समेता ।



जयपुरमहाराजाश्रितेन महामहोपाध्यायपण्डितदुर्गाप्रसादतनयेन  
पण्डितकेदारनाथेन, मुम्बापुरवासिपणशीकरोपाह-  
लक्ष्मणात्मजवासुदेवशर्मणा च संशोधिता ।

( द्वितीयावृत्तिः )

मुंबय्यां

तुकाराम जावजी

इत्येतैः स्वीये निर्णयसागरालयत्रालये मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।

शाकः १८३३, सिखान्द १९११.

( अस्स ग्रन्थस्य पुनर्मुद्रणादिनिषये सर्वेषां निर्णयसागरमुद्रात्रालयाधिपते-  
रैवाधिकारः । )

मूल्यं सार्धं रूप्यकः ।

# गाथानुक्रमणिका ।



अइ उज्जुए ण	७७७	अज्जाइ णीलकयुजे	१११
अइकोवणा वि सासु	५१९३	अज्जाएँ णवण	५१९३
अइ दिअर किं ण	६७०	अणुऊल विअ वोत्तु	६१७०
अइदी हराई बहुए	७७४	अणुणअपसा	(विण्णस्स) ३१७७
अउलीगो दोमुइ	३१५३	अणुदिअइ	(परक्कमस्स) ३१६६
अकअणुअ घणवण्ण	६१९९	अणुमरणपत्थिआए	७१३३
अकअणुअ तुज्ज	५१४५	अणुवत्तण	(हालस्स) ३१६५
अक्खडइ पिआ	(रइराअस्स) ११४४	अणुहुत्तो करकसो	७१५७
अगणिअजणाववाअ	५१८४	अण्णग्गामपउत्था	७१८७
अगणिअसेस	(मत्तलद्धिअस्स) ११५७	अण्णण कुसुम	(अणुराअस्स) २१३९
अगघाइ छिवइ	७१३९	अण्णमहिला	(अणिइद्धस्स) ११४८
अग्गाण तणुआरअ	(मिहरस्स) ४१४८	अण्ण पि किं पि	६१९
अधासण्णविवाहे	७१५५	अण्णइ ण सीरइ	(अणवरथस्स) ४१४९
अच्छउ ता जणवाओ (वाहवस्स?)	३११	अण्णाणं वि होन्ति	५१७०
अच्छउ दाव मणहरं	२१६८	अण्णावराहकुविओ	५१८८
अच्छीहिं ता थइस्स (नस्सीहस्स)	४११४	अण्णासआई	(मअरदअस्स) ११२३
अच्छेरं व णिहिं	(रामस्स) २१२५	अण्णेसु पहिअ	७१२९
अच्छोडिअवत्थ	(गुणद्धस्स) २१६०	अण्णो वो वि	५१३०
अज्जअ णाह	(मिअन्नस्स) २१८४	अण्णोण्णकडक्ख	७१९९
अज्ज कइमो वि	(हालस्स) २१९९	अत्ता तइ रमणिज्ज	(कुमारिलस्स) ११८
अज्ज गओत्ति अज्ज	(पवरसेणस्स) ३१८	अत्थक्करुसण	७१७५
अज्ज मए गत्तव्व	(सुचरिअस्स) ३१४९	अइसणेण पुत्तअ	(बहुरसस्स) ३१३६
अज्ज मए तेण	(कैलाणस्स) ११२९	अइसणेण पेम्म	(सामिअस्स) ११८१
अज्ज पि ताव एक	६१२	अइसणेण महिला	(सामिअस्स) ११८२
अज्ज मोहणसुहिअ (जण्णन्दसारस्स)	४१६०	अइच्छिपेच्छिअ	(मअरदस्स) ३१२५
अज्ज णि हासिआ	(हालस्स) ३१६४	अन्तो हुत्त डब्बइ	(णाहइथिस्स) ४१७३
अज्ज वि बालो (विथियिग्गहस्स)	२११२	अधअरबोरपत्त	(अणुराअस्स) ३१४०
अज्ज ध्वेअ पउत्थो अज्ज (अमीअस्स)	२१९०	अपहुप्पन्त	(उअहिस्स) ५१११
अज्ज ध्वेअ पउत्थो उज्जा (असरिसस्स)	११५८	अण्णच्छ दपहाविर	(पवरसेणस्स) ३१२
अज्ज सहि केण	(केसवस्स) ४१८१		

अप्यत्तपत्तभ	(मउहस्स?) ३४१	अहरमहुपाण	७१६१
अप्यत्तमणुदुक्खो	(.....) २१५७	अह्व गुणध्विअ	(चन्दहदिस्स) ३१३
अप्पाहेइ मरन्तो	७३२	अह सभाविअम्मगो	(मोजअस्स) ११३२
अम्मन्तरसरताओ	७१२३	अहसरसदन्त	(अहअस्स) ३११००
अमअमअ	(हालस्स) १११६	अह सा तहिं तहिं	४११८
अमिअ पाउअक्ख्व	११२	अह सो विलक्खहि	(हालस्स) ५१२०
अम्बवणे भमरउळ	६१४३	अहिआअमाणिओ	(चुल्लोगस्स) ११३८
अम्हे उज्जुअसीला	७१६४	अदिणवपाउसवि	६१५९
अलिअपसुत्त	(चन्दसामिणो) ११२०	अहिलेन्ति सुर	(वसन्तस्स) ४१६६
अलिअपसुत्तव	७१४६	आअण्णाअट्टि	६१५४
अलिहिज्जइ पञ्चअले	७१९०	आअण्णेइ अउअणा	(अइस्स) ४१६५
अवमाणिओ वि	(अवन्तिवम्मस्स) ४१२०	आअम्बन्तक्कोल	२१९२
अवरउज्जसु	(माउराअस्स) ४१७६	आअम्बलोअणाण	५१७३
अवरह्हागअजामा	७१८३	आअरपणामिओट्टं	(वत्तविआरस्स) ११२२
अवराहेहिं वि	(जअराअस्स) ४१५३	आअस्स किं शु	२१९८७
अवलम्बद मा	(दुद्धरस्स) ४१८६	आउच्छणविच्छाअ	५११००
अवलम्बिअमाण	(रेवाए) ११८७	आउच्छग्गि सिरेहिं	७१८०
अवहत्थिऊण	(देवस्स) २१५८	आअखेवआई	३१४२
अविअह्णेक्खणिज्जेण	(वज्जस्स) ११९३	आणत्त वेण तुमं	७१८५
अविइह्णेच्छणिज्ज	(धिरिसत्तिअस्स) ११९९	आम असइ द्वा	(पालितस्स) ५११७
अविरलपडन्तणव	५१३६	आमजरो मे मन्दो	(कालस्स) ११५१
अविहत्तसधिवन्धं	७११३	आम बहला वणाली	६१७८
अविहवलक्खणवलअ	६१३९	आरम्भन्तस्स धुअ	(वत्तहस्स) ११४२
अव्वो अणुणअ	(सीहस्स) ४१६	आरुहद जुणअ	६१३४
अव्वो दुक्कर	(सरलस्स) ३१७३	आलोअन्त दिसाओ	६१४६
असमत्तगुहअकळे	६१३७	आलोअन्ति पुलिन्दा	(हेलिअस्स) २१९६
असमत्तमण्डणा	(कौलिराअस्स) ११२१	आवण्णाई कुल्लइ	५१६७
असरिसचित्ते	(मैण्डहिअस्स?) ११५९	आसण्णविआहदिणे	५१७९
अह अद्दा आअदो	(अहअस्स) ४११	आसासेइ परिअणं	(अलकारस्स) ३१८३
अहअ लब्धा	२१२७	इअरो जणो ण	(वाइवराअस्स) ३१११
अहअ विओअतणुई	५१८६	इअ विरिहाल	७११०१

१. 'मकरन्दस्य' घे. २. 'कलिराजस्य' घे. ३. 'मुग्धदीपस्य' घे. ४. 'शालिवाहनस्य' घे. ५. 'हालिकस्य' घे.

ईसं जनेन्ति	(माहवसेणस्स)	४१२७	एक धिअ रुअणुणं	६१९२
ईसामच्छररहिएहि		६१६	एक पहरुविण्णं	(पैहईए) ११८६
ईसाल्लभो पई	(अरिकेसरिस्स)	२१५९	एकल्लमभो दिग्गीअ	७१७८
उअअ ल्हिउण		५१९०	एकेकभवइवेठण	(अरिकेसरिणो) ३१२०
उअ ओळ्ळिअइ		७१४०	एण्णेण वि वड्डी	७१७०
उअगअअंचत्थि		७१४४	एको पड्डुअइ षणो	(हालस्स) ५१९
उअ णिचल	(बोदितस्स)	११४	एको वि कालसारो	(कालसारस्स) ११२५
उअ भोम्मराअ		११७५	एहिइ वारेइ जणो	(सिरिसुन्दरस्स) ७१९६
उअरि हरदिइ	(पवरसेणस्स)	११६४	एत्ताइधिअ मोहं	(मोजअस्स) ५११०
उअ सममविकिखत्तं		५१६१	एत्थ चउत्थं विरमइ	४११०१
उअ सिन्धवपण्वअ		७१७९	एत्थ णिमच्चइ	७१६७
उअह तरुओडराओ		६१६२	एत्थ मए रमिअब्बं	(गुणमन्दिअस्स) ४१५८
उअह पड्डन्तरो	(पालितस्स)	११६३	एइहमेत्तम्मि जए	(सिरिराअस्स) ४१३
उअिरापपइ	(हालस्स)	२१२०	एइहमेत्ते गामे	६१५३
उअागरअरुसाइअ		५१८२	एसो मामि जुवाणो	(मन्दसुअणस्स) ३१९४
उअुअरए ण तूसइ		५१७६	एइ इमीअ णिअच्छइ	६१७९
उअसि पिआइ	(ईसाणस्स)	३१७५	एइइ सो वि पउत्थो	(सिरिधम्मअस्स) १११७
उअन्तमहारम्भे	(मत्तगइन्दस्स)	४१८२	एहि ति वाहरन्तम्मि	६१३
उअाई णीससन्तो	(अणत्तस्स)	११३३	एहियि तुमं ति	(अल्लस्स) ४१८५
उअच्छो पिअइ	(भाइअस्स)	२१६१	ओसरइ धुणइ साहं	६१३१
उअपण्णत्थे कजे	(माणइन्दस्स)	३११४	ओसहिअजणो	(मन्दरस्स) ४१४६
उअपहपहाविइजणो		६१३५	ओ हिअअ ओहि	५१३७
उअ्पाइअइव्याणं	(पालितस्स)	३१४८	ओ हिअअ मडइ	(महाएवस्स) २१५
उअ्पेअखागअ	(विसा[म]सेणस्स)	४१३९	ओहिदिअहागमा	(पुण्णमोजअस्स) ३१६
उअ्फुत्तिआइ	(वच्छस्स)	२१९६	अण्डन्तेण अकण्डं	७१६३
उअ्मूलेन्ति व	(विजयगइणो)	२१४६	अण्डुअुआ	(अअलीहरस्स) ४१५२
उअ्हावन्तेण ण होइ		६१३६	अत्थ मअं रइविम्मं	५१३५
उअ्हावो मा दिज्जठ		६११४	अं तुअ्हायणु	(पालितस्स) ३१५६
उअ्वहइ णवतण		६१७७	अमल सुअन्त	७१४१
एएण धिअ	(कड्डिअस्स)	५१४	अमलाअरा ण	(मिअण्णस्स) २११०
एअकमपणिरवत्तण		७११	अरमरि फीअ ण	६१२७
एअकमसदेसा	(.....)	४१४२	अरिमरि अअाल	(अअरन्दस्स) ११५५

कुटुणाहो विव	५१४३	सैन्धुरिगणा	११७७
कलहन्तरे वि	(हालस्स) ४१२१	खरपवणरअगल	६१८३
कल किर ख	(निपेटस्स) ११४६	खरसिप्पिर	(पसण्णस्स) ४१३०
कस्स करो बहु	६१७५	खाणेण अ पाणेण	७१६२
कस्स भरिसि ति	(सुरहिवच्छस्स) ४१८९	खिण्णस्स उरे	(अवन्तिवम्मस्स) ३१९९
कहँ णाम तीअ	(सवरसत्तिस्स)? ३१६८	खिप्पइ हारो	५१२९
कहँ मे परिणइआले	६१६८	खेम कन्तो खेम	५१९९
कहँ सा णिव्व	(पव्वअकुमारस्स) ३१७१	गअकलहकुम्म	(कइराअस्स) ३१५८
कहँ सा सोहग्गुण	५१५२	गअगणउत्थल	(गन्धराअस्स) २१२१
कहँ सो ण	(सङ्करस्स) ५११३	गअवहुवेहव्वअरो	७१३०
कह तपि तु इण	(सेहणाअस्स) ७१९७	गज्ज मह चिअ	६१६६
कारिममाणन्दवड	५१५७	गन्ध अग्घाअन्तअ	६१६५
कि किं दे	(गअसिहस्स) १११५	गन्धेण अप्पणो	(विअहस्स) ३१८१
कि ण भणिओ तिं	(बहुसहस्स) ४१७०	गम्मिहिति तस्स	७१७
कि दाव कआ	(रिवाए) ११९०	गहअछुहाउलि	४१८३
कि भणह म सहीओ	७११७	गहवद गओ	(विअहइन्दस्स) ३१९७
कि रुअत्ति	(महिन्दस्स) ११९	गहवदणा	(सचसामिणो) २१७२
कि रुवत्ति कि अ	६१९६	गहवइसुओ	(हालस्स) ४१५९
कीरन्ती विवअ	(सरस्स) ३१७२	गामङ्गणणिअडि	६१५६
कीरमुहसच्छ	(सूरणस्स) ४१८	गामणिधरम्मि अत्ता	५१६९
कुसुममभा वि	(हालस्स) ४१२६	गामणिणो सव्वातु	५१४९
के उव्वरिआ के	५१७४	गामतरणीओ	६१४५
केण मणे भग	(मिअहस्स) २१११	गामवडरस	(उण्डस्स) ३१९५
केत्तिअमेत्तं होहिद	६१८१	गिज्जन्ते मज्जल	७१४२
केलीअ वि रुसे	(पावच्छीलस्स) २१९५	गिज्जे दवग्गि	(वैद्दावहीए?) ११७०
केसररअ	४१८७	गिरसोत्तो ति	६१५१
केअवरहिअ	(रामस्स) २१२४	गेअच्छेण	(अहअस्स) ४१३४
कोरथ जअम्मि	(विलासस्स) ४१६४	गेह पलोअह	(हरितउत्स) २१९००
कोसम्बक्सल	(गजस्स) १११९	गेह व वित्तइहिअ	७१९
खणभहुरेण येम्मेण	५१२३	गोतवखलण सोऊण	५१९६
खणमेत्तं पि ण	(हालस्स) २१८३	गोलाअडिअ	(अविअकणस्स) २१७

१. 'रुम्पस्स' वे. २. 'विनयायितस्स' वे. ३. 'अनुरागस्स' वे. ४. 'अलि-  
कस्स' वे.

गोलाणइए	(णरवाहणस्स) २।७१	ज ज पुलएमि दिस्	६।३०
गोलाविसमो	२।९३	ज जं सो णिज्जा (वैसन्तभस्स)	१।७३
घरिणिघणत्थण	(दुव्विदुअस्स) ३।६१	ज तणुआअइ सा	७।११
घरिणीए	(हालस्स) १।१३	जन्तिअ गुल	६।५४
घेत्तुण चुण्ण	(कान्तफरस्स) ४।१२	ज तुग्ग सइ (अणुलच्छीए)	३।२८
चधुपुडाइअवि	७।६६	जम्मन्तरे वि चलणं	५।४१
चत्तरघरिणी	(भेद्विलस्स) १।३६	जस्स जह विअ (अद्धराअस्स)	३।३४
चन्दमुद्दि	(गग्गराअस्स) ३।५२	जह चिन्तेइ परि	७।२८
चन्दसरिस	(वाहवराअस्स) ३।१३	जह जह उण्वइइ (... ..)	३।९२
चलणोआसणि	(भमरस्स) २।८	जह जह जरा (पोट्टिसस्स)	३।९३
चावो सहावसरल	५।२४	जइ जइ वाएइ (ससिप्पहाए)	४।४
चिक्खिण्डसुत्त	(सुत्तोहस्स) ४।२४	जाएज्ज वणुदेशे (असमसाइस्स)	३।३०
चित्ताणिअइइ	(वैण्डइवस्स) १।६०	जाओ सो वि (चन्दस्स)	४।५१
चिरडिं पि अ	(पावच्छीलस्स) २।९१	जाणइ जाणावेउं (गौमउज्जस्स)	१।८८
चोरारो कामुआरो	७।९८	जाणि वअणाणि	७।४९
चोरा सभअसतणइ	६।७६	जारमसणसमुच्चभव (हालस्स)	५।८
चोरिअरअसद्धाउइ	(वग्गअन्तस्स) ५।१५	जाव ण बोसवि	५।४४
छन्नइ पडुस्स	(सुन्दरस्स) ३।४३	जिविअ असाणअ (हालस्स)	३।४७
छिन्नन्तेहिं	(माणिकराअस्स) ४।४७	जिविअसेसाइ (अवज्ञात्तस्स)	२।४९
जइ बोत्तिओ	७।७२	जीहाइ कुणन्ति	६।४१
जइ चिक्खल	(सुद्धुराअस्स) १।६७	जुज्जचवेडामोडि	७।८४
जइ जूरइ जूरउ	७।८	जे.जे गुणिणो	७।७१
जइ ण छिवसि	५।८१	जेण विणा (रोहाएँ)	२।६३
जइ भमसि भमसु	५।४७	जे णीलभमर	५।२२
जइ लोकणिन्दिअ	५।८०	जेत्तिअमेत्त (सुद्धसीलस्स)	१।७१
जइ सो ण वल्लहो	(सुसीलस्स) ४।४३	जेत्तिअमेत्ता (पालितस्स)	४।९३
जइ होसि ण	(सुद्धराअस्स) १।६५	जे सँमुहाणअ (वाहवराअस्स)	३।१०
जं जं आळिहइ	७।५६	जो कइ वि (वैल्लइचस्स)	२।४४
जं जं करेसि ज जं (कलणसीहस्स)	४।७८	जो जस्स विहव (वाहवराअस्स)	३।१२
ज ज से ण मुहाअइ	७।१५	जो सीए अहर (दामोअरस्स)	२।६
ज ज पिहुल	(कुलउत्तस्स) ४।९	जो वि ण आणइ	५।३८

१. 'मल्लोअव' वे. २. 'सुग्गदीपस्स' वे. ३. 'धीरस्स' वे. ४. 'वसलक्ख' वे. ५. 'प्रामकूटस्स' वे. ६. 'वल्लइपितस्स' वे.

ओ सीसमिम	४१७२	गिअववखारोवि	७१४२
इज्झावाउत्तिणिअघर (जअसेणस्स)	२१७०	गिक्कण्ड दुरारोह	५१६८
इज्झावाउत्तणिए (राअहत्थिणो)	४११५	गिक्कमाहिं	(पुण्डरीअस्स) २१६९
ठाणम्भट्टा परि	७१५२	गिक्किव जाआ	(ईरिआल्स्स) ११३०
उज्जसि उज्जसु	(हालस्स) ५११	गिइ लहन्ति कहिअ	(देवएवस्स) ५११८
ण अ दिहिं णेइ	७१४५	गिहामज्जो	(हालस्स) ४१७४
णअणम्भन्तर	(हालस्स) ४१७१	गिहालस	(हालस्स) २१४८
णइऊरस	(पैवणराअस्स) ११४५	गिप्पच्छिमाइ	(त्तिरिवलस्स) २१४
ण कुणन्तो विवअ	(अद्वाराअस्स) ११२६	गिप्पण्णसस्सरि	७१८९
णअअक्खुडिअ	(महाराअस्स) ४१३१	गिबुत्तरआ	(सहुणकलत्तस्स) २१५५
ण गुणेण	(समरिणसस्स) ४११०	गिहुअणसिप्प	६१८९
णअणसलाहणणि	(गुवरस्स ?) २११४	णीआइ अअ	(धणजअस्स) ४१२८
ण छिवइ हत्थेण	६१३२	णीलपडपाउअग्गी	६१२०
णन्दन्तु सुरअसुह	(हालस्स) २१५६	णीसासुकम्पिअ	(रोएवस्स) ४१६१
ण सुअन्ति	(हालस्स) २१४७	णूण हिअअ	(महाएवस्स) ४१३७
णलणीसु भमसि	७११९	णूमेन्ति अे पटुत्त	(मौथवीए) ११९१
णवक्कणिएण	७१९२	णेउरकोडि	(अणत्तस्स) २१८८
णवपडव विसण्णा	६१८५	णोहलिअमप्पणो	(मअरन्दसेनस्स) ११६
णवल अपहरं	(पैणामस्स) ११२८	तइआ कअग्घ	(माअत्तस्स) ११९२
णववहुपेम्म	(कण्णउत्तस्स) २१२२	तइ बोलन्ते	(हालस्स) ३१२३
ण विणा सन्मावेण	(भोजअस्स) ३१८६	तइ सुइअ	(मणोरहस्स) ४१३८
ण वि तह अइ गरुएण	५१८३	तइविणिहिअग्ग	(हालस्स) ४१९१
ण वि तह अणालवन्ती	६१६४	तइसठिअ	(मणस्स) ११२
ण वि तह छेअ	(अणुलच्छीए) ३१७४	तणुएण वि	(भाउल्स्स) ४१६२
ण वि तह पडम	(भाणुससिणो) ३१९	तं णमह जस्स	(गिर्कलत्तस्स) २१५१
णै वि तह विएस	११७६	तत्तो अिअ ह्वेन्ति	७१४८
णाअ व सा इवोडे	(सौमिअस्स) ११९६	तं मिसं काअन्वं	(पालितस्स) ३११७
णाह इइं ण	(अमुलद्धीए) ? २१७८	तम्मिरपसरिअहु	६१८८
णिअअणुमाण	(केल्यस्स) ४१४५	तस्स अ सोहग्ग	(मअरद्धअस्स) ३१३१
णिअधणिअ	६१८२	तस्स कइावण्टइए	७१५९

१. 'प्रवरराजस' वे. २. 'दुरस्य (१)' वे. ३. 'प्राणामस्य' वे. ४. 'भीमवि-  
क्रमस्य' वे. ५. 'त्तिरसाहसस्य' वे. ६. 'शाठिकस्य' वे. ७. 'गजरेवस्य' घ.  
८. 'कलहस्य' वे.

तद् तस्त् माण	(हालस्स) ५१३१	दइअकरग्गइल्लिओ	६१४४
तद् तेणवि सा	७१२५	दक्खिण्णेण वि	(आइवराइस्स) ११८५
तद् परिमल्लिआ	७१३७	दट्ठण उण्णमन्ते	६१३८
तद् माणो	(साळिअस्स) २१२९	दट्ठण तरुणसुरअ	६१४७
तद् सोण्हाइ	(सुन्दअस्स) ३१५४	दट्ठण रुन्दतुण्ड	(विग्गहस्स) ५१२
ता किं करेउ	(वम्हआरिणो) ३१२१	दट्ठण हरिअदीह	७१९३
ता मज्झिमो विअ	(हालस्स) ३१२४	दडरोस	(अवन्तिवम्मस्स) ४११९
ता ण्णं जा	(विरसत्तिस्स) २१४१	दरफुडिअ	(वम्हराअस्स) ११६२
तात्तरममा	(अवट्ठस्स) ११३७	दरवेविरोरुजुअलासु	७११४
तावचिअ रइ	(धुल्लोहस्स) ११५	दिअरस्स	(हालस्स) ११३५
तावमवणैइ	(हरिउद्धस्स) ३१८८	दिअहं खुडक्किआ	(विच्छमस्स) ३१२६
ताविज्जन्ति	(पवाराअस्स) ११७	दिअहे दिअहे	७१९१
तामुहअविलम्भ	.	दिहा च्चआ	(कौन्तकसुरस्स) ११९७
तीअ मुहाहिं	(हालस्स) २१७९	दिडमण्यु	(मोत्ताइल्लस्स) ११७४
तुक्कणै विसेस	५१२७	दिडमूलयन्ध	(अणुलच्छीए) ३१७६
तुहो धिअ	(माउराअस्स) ३१८४	दीसइ ण च्चअ	६१४२
तुज्जक्कराअ	२१८९	दीसन्तो णअणमुहो	(राअरसिअस्स) ५१२१
तुज्ज यसइ	(मुदस्स) ११४०	दीसन्तो दिडिमुहो	७१११
तुष्पाण्णा	(अलकरस्स) ३१८९	दीसत्ति पिआणि	५१८९
तुद दंसणेण जणिओ	७११०	दीहुइअपर	२१८५
तुद दंसणे सअहा	६१५	दुक्खं देन्तो	(तिरिसत्तिअस्स) १११००
तुद मुहसारिच्छ	(राहहम्धिणो) ३१७	दुक्खेहिं लम्मइ	४१५
तुद विरहुक्कागरओ	५१८७	दुग्गअकुट्टम्भ	(तिरिधम्मअस्स) १११८
तुद विरहे	(अणत्तस्स) ११२४	दुग्गअपरमि	५१७२
ते अ जुआणा सा	६११७	दुग्गिअखेवअ	(साहिअस्स) २११४
तेण ण मरामि	४१७५	दुम्मेन्ति देन्ति	(वसन्तवम्मस्स) ४१२५
ते विरत्ता सणु	(इन्दस्स) २११३	दुरिसत्तिसअरअ	७१२७
ते थोळिआ	(निदपमस्स) ३१३२	दइ तुमं विअ	(आइवसत्तिणो) २१८१
धणज्जहणणिअ	(सच्चसेणस्स) ३१३३	दरन्तरिए वि पिए	७१५८
धोअ पि ण	(धुरभिवसस्स) ११४९	देव्वमि पराहुत्ते	(अन्धस्स) ३१४५
धोरेसुएहिं ण्णं	६१२८	देव्वाअत्तमि	(भीएवस्स) ३१७९

१. 'त्रिलोक्य' धे. २. 'मुदस्स' धे. ३. 'धुरभिवत्तलस्स' धे. ४. 'स्थिरका-  
दयस्स' धे. ५. 'पउल्लिन्यस्स' धे.



दे सुभणु पत्तिअ	५१६६	परिमलणसुहा	५१२८
दोअहुलअकवाल	७१२०	परिरद्धकणअ	४१९८
धण्णा सा मदि (मलअसेहरस्स)	४१९७	परिहूएण (विद्धमराअस्स)	२१३४
धण्णा बहिरा	७१९५	पत्तिअ पिए (कुविन्दस्स)	४१८४
धण्णा वसन्ति	७१३५	पसुवदणो (हालस्स)	१११
धरिओ धरिओ (माणस्स)	२११	पहरवणमग्ग (अहराअस्स)	११३१
धवलो जिअइ	७१३८	पहिअवहु विवरन्तर	६१४०
धवलो सि जइ	७१६५	पहिउद्धरण (अहराअस्स)	२१६६
धाराधुव्वन्तमुहा	६१६३	पाअडिअ सोहृग्ग	५१६०
धावइ पुरओ पासेसु	५१५६	पाअडिअणेह (मणिराअस्स)	२१९९
धावइ विअलिअ (माऊराअस्स)	३१९१	पाअपडणार्णे मुदे	५१६५
धीरावलम्बिरीअ (वाहवस्स)	४१६७	पाअपडिअं (हालस्स)	४१९०
धुअइ व्व (विसमराअस्स)	३१८०	पाअपडिअस्स (दुग्गसाभिणो)	११११
धूलिमहलो वि	६१२६	पाअपडिओ ण	५१३२
पइपुरओ विअ (मल्लसेणस्स)	३१३७	पाणउडीअ वि (हालस्स)	३१२७
पउरजुवणो (हालस्स)	२१९७	पाणिग्गइणे (अणुराअस्स)	११६९
पइमइलेण छीरेक्क	६१६७	पासासष्टी (भोजअस्स)	३१५
पचग्गप्फुल्ल	६१९०	पिअदसण (वसन्तसेणस्स)	४१२३
पच्चसमऊहावलि	७१४	पिअसभरण (बम्हआरिणो)	३१२३
पच्चसागअ रजित	७१५३	पिअविरहो (वैसुआरिणो)	११२४
पअरसारि अत्ता ण	६१५२	पुच्छिअन्ती ण	७१४७
पडिवक्ख (उद्धवस्स)	३१६०	पिअइ कण्णअ	७१७६
पढम वामणविहिणा	५१२५	पुट्ठि पुससु (पण्डिणो)	४११३
पढमणिलीणमहुर	५१९५	पुणरुत्तकरप्फालण	६१४८
पणअकुविआर्णे (कुमारस्स)	११२७	पिसुणेन्ति कामिणीणं	६१५८
पत्तणिअम्बप्फसा	६१५५	पुसइ खण धुवइ	५१३३
पत्तिअ ण पत्तिअन्ति (पवरसेणस्स)	३११६	पुसउ मुहं ता	७१८१
पत्तो छणो ण (कालइवस्स)	११६८	पुसिआ अण्णा (कलसगन्धस्स)	४१२
पप्फुद्धणकलम्बा	७१३६	पेच्छइ अलद्ध (विअट्टइन्दस्स)	३१९६
परिओसवि (जीअएवस्स)	४१४१	पेच्छन्ति अणिसि (सुरहिक्कस्स)	४१८८
परिओससुन्दराइं	७१६८	पेम्मस्स विरो (वैम्मइस्स)	११५३

१. 'कालाधिपस्य' चे. २. 'सिरिराअस्स' चे. ३. 'ब्रह्मचारिण.' चे. ४. 'मन्मपस्य' चे.

पोटपडिण्हिं	(कंभइलसीलस्स)	११८३	मगं विअ	७१६९	
पोट भरन्ति	(अलकस्स)	३१८५	मज्झइणपत्थिअस्स (मङ्गलकलसस्स)	४१९९	
फग्गुच्छण	(सूरस्स)	४१६९	मज्झे पअणुअ	७१८२	
फलसपत्तीअ	(उवलअस्स)	३१८२	मज्झो पिओ	६१९७	
फलहीवाहण	(कहिलस्स)	२१६५	मण्णेआअण्णन्ता	७१४३	
फालेइ अच्छमत्त	(कालसीहस्स)	२१९	मण्णे आसाओ विअ	६१९३	
फुहन्तेण वि	(राअवग्गस्स)	३१४	मन्द पि ण आणइ	६१९००	
फुरिए वामच्छि	(सत्तिहग्घिस्स)	२१३७	मरगअसूइ	(पालितस्स)	४१९४
बलिणो याआवन्धे	(भोजअस्स)	५१६	मसिण चइम्मन्ती	५१६३	
बहलतमा	(अहअस्स)	४१३५	महमहइ मलअवाओ	५१९७	
बहुआइ गइ	(अदराअस्स)	३१९८	महिलाण विअ	६१८६	
बहुपुफ्फमरोणा	(माणस्स)	२१३	महिलासहस्स	(हालस्स)	२१८२
बहुवड्ढहस	(अल[भ]स्स)	११७२	महिसक्खन्धवि	६१६०	
बहुविहवितासरसिए		५१७७	महुमच्छिआइ	७१३४	
बहुसो वि	(सुरहिवसेस्स)	२१९८	महुमासमाइआ	(सालिअस्स)	२१२८
बालअ तुमाइ दिण्ण	(तुगअस्स)	५१९९	मा पुण पठिवक्ख	(माअहस्स)	२१५२
बालअ तुमाहि	(हालस्स)	३१९५	मा जूर दिआ	(अहस्स)	४१५४
बालअ दे षच लहुं		६१८७	माणदुमपहस	४१४४	
भग्गपिअसग्गम		५१९९	माणुम्मत्ताइ मए	६१२२	
भज्जन्तस्स वि	(हालस्स)	२१६७	माणोसह व	(वाहवस्स)	३१७०
भण को ण	(महोहिअस्स)	४१९००	मामि सरसक्खराणं	५१५०	
भण्डन्तीअ	(अत्यस्स?)	४१७९	मामि हिअअ	(वीलएवस्स?)	३१४६
भमइ पलित्ताइ जूरइ		५१५४	मारोसि क ण मुदे	६१४	
भम धम्मिअ	(.....)	२१७५	मालइकुमुमाई	५१२६	
भरणमिअणील		७१६०	मालारीए वेड्ढहल	६१९८	
भरिउधरन्त	(विसेसरसीहस्स)	४१७७	मालारी लल्लिउ	६१९६	
भरिमो से गहिआहर		११७८	मा वच पुफ	(णन्दणस्स)	४१५५
भरिमो से सअण	(उच्छेउस्स)	४१६८	मा वचह वीसम्भ	७१८६	
भिच्छाअरो	(सतिराअस्स)	२१६२	मामपसूअ	(कइराअस्स)	३१५९
मुज्जमु ज साहीण	(तिलोअणरस्स)	४१९६	मुदे अपत्तिअन्ती	७१७८	
भोइणि दिण्ण पहेण		७१३	मुहपुण्डरीअछाआइ	७१२४	
मअणग्गिणो ध्व		६१७२	मुहपेच्छओ पइ	५१९८	

मुहमादरण	(वेदिसैत्य)	११८९	वम्पडण्णा	(कण्णस्त)	११५४
मुहविण्णवि	(वम्पएवस्त)	४१३३	वणदवमति	(हालस्त)	२११७
मेहमदिसस्त		६१८४	वण्णअघअलिप्पमुट्टि		६१९६
रद्वेडिद्विअमि		५१५५	वण्णअमरद्विअस्त		७११२
रद्विरमअमिआओ		५१५९	वण्णन्तीटि सुद	(सद्वरसतिसस्त)	४१५०
रफ़सेइ पुत्तअं		७१२१	वण्णवत्तिए विअत्थवि		७१७८
रण्णाउ तण	(अवणअरस्त)	३१८७	वन्दीअ गिहव	(हालस्त)	२११८
रत्थापडण्ण	(हालस्त)	२१४०	वसइ अटि	(कित्तिराअस्त)	२१३५
रन्धणकम्मणि	(भोमसामिणो)	१११४	वसणम्मि	(प्रणालस्त)	४१८०
रमिऊण पअ	(मकरन्दस्त)	११९८	वाआइ कि भणिसउ		६१७१
रसिअजण	(हालस्त)	१११०१	वाउदअसिचअ		६१७
रसिअजण	(हालस्त)	२११०१	वाउलिआपरि		७१२६
रसिअजण	(हालस्त)	३११०१	वाउव्वेड्ढिअसाउत्ति		७१५
रसिअजण		५११०१	वाएरिएण	(पालितस्त)	२१७६
रसिअजण		६११०१	वावारविसेवाअ		७११६
रसिअ विअड	(वद्दभारिणो)	५१५	वासारतो उण्णअ		५१३४
राअविहदं	(वहुलस्त)	४१९६	वाहरउ अं	(कुं सुमराअस्त)	२१३१
रुन्दारुविन्दमन्दिर		६१७४	वाहिता पडिवअण	(रोलएवस्त)	५११६
रुअ अच्छीसु	(वद्दगतिणो)	२१३२	वाहिव्व वेअ	(वामएवस्त)	४१६३
रुअं सिठ विअ		६१७३	वादीहभरिअ		६११८
रेहइ गलन्तकेस		५१४६	विक्किणइ माह	(हालस्त)	३१३८
रेहन्ति कुमुअदल		६१६१	विआविअइ	(अणुराअस्त)	५१७
रोवन्ति व्व अरणे		५१९४	विअसाइहणालाव		७१३१
रुहालआणे	(अणुराअस्त)	४१११	विण्णाणगुण	(सवरसतिसस्त)	३१६७
रुआ चत्ता सील		६१२४	विरहकरवत्त	(साहिअस्त)	२१५३
रुहुअन्ति	(मोविन्दसामिस्त)	३१५५	विरहाणलो	(अमिअस्त)	११४३
रुम्बीओ अङ्गण	(वत्तस्त)	४१२२	विरहेण म-दरेण		५१७५
रुओओ जूरइ जूरउ		६१२९	विरहे विअ व	(हालस्त)	३१३५
वअणे वअणम्मि	(असोअस्त)	४१५६	विवरीअसुरअलेहल		७१५४
वद्विवर	(उद्धवस्त)	३१५७	विसमद्विअपिके		६१९५
वर्कं षो पुलइ	(मेहणाअस्त)	२१६४	वीसत्थहत्तिअपरि		७१६
वहुद्विछपेच्छि	(वप्पसामिणो)	२१७४	वेविरविण्ण	(अण्णस्त)	३१४४

नेसोसि जीअ	६१०	सहि ईरिसि	(अैलअस्त) ११०
बोडसुणओ विअण्णो	६१४९	सहि दुम्मेन्ति	(असुलद्धीए?) २१७७
बोलीणालक्खिअ (पन्नराअस्त)	४१४०	सहि साहसु सन्ना	५१५३
सवाट्ठसुहरस	५१६४	सा आम सुहअ	६१११
सैथणे चिन्ता	२१३३	सा तुइ सहय	२१९४
सक्कअगहैरह	६१५०	सा तुज्ज वट्ठहा	(उज्जअस्त) २१२६
सक्रेत्तिओ व (हालस्त)	७१९४	सा तुह कएण	(दुव्विअसुस्त) ३१६२
सच्च कलहे कलहे	६१२१	सामाइ गरुअ	५१३९
सच्च जाणइ (दुग्गसामिणो)	१११२	सामाइ सामळि	( .. ) २१८०
सच्च भणामि बालअ (देवराअस्त)	३१३९	सालोए थिअ	(हालस्त) २१३०
सच्च भणामि भरणे (विअसुस्त)	३१३९	साहीणपिअअमो	६११५
सच्च साहसु	७१८८	साहीणे वि पिअ	(रैविराअस्त) ११३९
सओवणोसह (विहलस्त)	४१३६	सिक्क रिअमणिअ	(नन्दिउद्धस्त) ४१९२
सञ्जागहिअजलज्जलि	७११००	सिहिपिच्छल्लुत्तिअ	(वैसैरस्त) ११५२
सञ्जाराओत्यइओ	६१६९	सिहिपेहुणावअसा	(पोटिसस्त) २१७३
सञ्जासमए जलपू	५१४८	सुअणपउरम्मि	(देवराअस्त) २१३८
सणिअ सणिअ	५१५८	सुअणु वअण	(णीलस्त) ३१६९
सए सताइ (हालस्त)	११३	सुअणो ज देस	(हैरकुन्तस्त) ११९४
सन्तमसन्त दुक्ख	६११२	सुअणो ण कुप्पइ	(अज्जुणस्त) ३१५०
संभावणेह (हौलस्त)	११४१	सुअखन्तवहल्लकम्म	५११४
सच्चमाव सुच्छन्ती (सअस्त)	४१५७	सुन्दरजुआणजण	५१९२
समविसमणिअ	७१७३	सुप्पउ तइओ वि	(सिरिसत्तिस्त) ५११२
समसोक्खसुक्ख (वसुवरसुस्त <sup>१</sup> )	२१४२	सुप्प उट्ठ चणआ	६१५७
सरए महइदाण (विग्गहराअस्त)	२१८६	सुइउच्छअ जण	(सगवम्मस्त) ११५०
सरए सरम्मि	७१२२	सुहपुच्छिआइ	(सिलोअणस्त) ४११७
सरसा वि सूसइ	६१३३	सुइअइ हेम	(अण्हअस्त) ४१२९
संअत्यदिसा (कमलस्त)	२११५	सुइवेहे सुखल	६११
सच्चसम्मि वि दहे (अच्छलस्त)	३१२९	सूरच्छलेण	(विग्गहराअस्त) ४१३२
सच्चआभरेण मग्गइ	७१५०	सेअच्छलेण	(हालस्त) ३१७८
सहइ सहइ ति (कुसुमाउइस्त)	११५६	सेअअसच्चव्वी	५१४०
सहिआहि <sup>२</sup> (बलाइवस्त)	२१४५	सो अत्यो जो	(हालस्त) ३१५१

१. 'ब्रह्मगते' घे. २. 'नाथाया' घे. ३. 'अनीकस्य' घे. ४. 'उजयस्य' घे.  
 ५. 'कविराजस्य' घे. ६. 'वेशारस्य' घे. ७. 'हारउत्थस्य' घे.

सो को वि गुणाद्	६१९१	हासाविओ जणो	(अणुराअस्स) २१२३
सो णाम संभरिअइ (वाप्यइराअस्स)	११९५	हिअवं हिअए	५१८५
सो तुज्ज कए (ईसाणस्स)	११८४	हिअअ बेअ	(विकिरस्स) ३१९०
हंसेहिँ व तुइ	५१७१	हिअअट्ठिअस्स	(सच्चसेणस्स) ३१९८
हत्थप्फंसेण जरगवी	५१६२	हिअअण्णएहिँ	(मैण्णहिँवस्स) ११६१
हत्थाहत्थिअ अइमह	६१८०	हिअअम्मि वसत्ति	६१८
हत्थेसु अ (पालितस्स)	४१७	हिअआहिन्तो पसरन्ति	४१५१
हरिहिइ पिअ (वट्ठरइस्स)	२१४३	हेमन्तिआसु	(कैन्तेसरस्स) ११६६
हल्लफल्लाण (कैटिलस्स)	११७९	हेलाकरगअट्ठिअ	(पोट्टिअस्स) ५१३
हसिअ अदिट्ठदन्तं	६१२५	होन्तपहिअस्स	(सिहस्स) ११४७
हसिअ सहत्थ (अणुलच्छीए)	३१६३	होन्ती वि णिप्फल	(कुन्दपुत्तस्स) २१३६
हसिएहिँ उवालम्भा	६११३	हाणहत्थिहा	(मअरन्दस्स) ११८०

## सातवाहनः ।

दीपकर्णिसूनुः सातवाहनो नाम कश्चन विद्वान्महीपतिः प्रतिष्ठानपुरे बभूव, यस्सर्मा वृहत्कथाप्रणेनृगुणाख्य-कालापञ्चाकरणकर्तृशर्ववर्मप्रभृतयो भूयोसो विद्वांसो मण्ड्या-चक्रुरिति कथासरित्सागरपद्यतरङ्गस्थितकथातः प्रतीयते. 'सोऽहं दक्षिणे वित्तार्थी प्रयातो दक्षिणापथम् । प्राप्तः पुरं प्रतिष्ठानं नरसिंहस्य भूपतेः ॥' (३८११०८) इत्यादिकथासरित्सागरस्थश्लोकेभ्य एव दक्षिणापथे प्रतिष्ठानपुरमस्तीत्यप्यवगम्यते. तच्चाधुना 'पैठण'नाम्ना प्रसिद्धमस्ति. 'कर्तार्या कुन्तलः शातकार्णं. शातवाहनो महादेवीं मलयवतीं [जघान]' इति वात्स्यायनप्रणीतकामसूत्रस्य द्वादशाध्यायोपान्ते समुपलभ्यते. डॉक्टरपीटर्सनेन बुन्दीनगराधीशपुस्तकालयादानीते गाथासप्तशतीपुस्तके 'राएण विरइभाए कुन्तलजणवअइणेण हालेण । सत्तसई अ समत्त सत्तममउशासअ एअम् ॥ इति सप्तम शतकम् । इति श्रीमत्कुन्तलजनपदेश्वर-प्रतिष्ठानपत्तनाधीश-शतकर्णोपनामक-द्वीपि(दीप)कर्णोत्तमज-मलयवतीप्राणप्रिय-कालापप्रवर्तकशर्ववर्मधीसरा-मलयवत्युपदेशपण्डितीभूत-स्वकभाषाप्रयस्वीकृतपैशाचिकपण्डितराजगुणाख्यनिर्मितभस्मीभ-षट्पद्वत्कथावशिष्टसप्तमांशावलोकनप्राकृतादिवाक्यपञ्चक (१)प्रीत-कविवत्सल-हालायुपनामक-श्रीसातवाहननरेन्द्रनिर्मिता विविधान्योक्तिमयप्राकृतगीर्णुष्किता शुचिरसप्रधाना काव्योत्तमा सप्तशत्यवसानमगात् ॥' एवं समाप्तिश्च वर्तते. एतद्विलोकनेन वात्स्यायन-स्मृत. कथासरित्सागरदर्शितश्च सातवाहन एक एव तेनैवेय गाथासप्तशती प्राचीन-ग्रन्थेभ्य. सफलता. स च त्रिस्तादस्य प्रथमशतक आसीदित्याधुनिमाना विद्वद्-राणां निश्चय . युक्तं चैतत्. यत्. शकप्रवर्तकं क्षालिवाहन एव सातवाहन इति निर्वि-

१. राजशेखरसूरिप्रणीते प्रबन्धकोषे सातवाहनप्रबन्धे 'अधुना तु दक्षिणदेशस्थित प्रतिष्ठानपुरे ध्रुवकप्रामतुल्यं वर्तते ।' इत्यस्ति. २. डॉक्टरपीटर्सनेनस्य तृतीये पोर्टा-हयपुस्तके ३४९ पृष्ठे द्रष्टव्यम्. ३. 'कामगिरिं समारभ्य द्वारकान्तं महेश्वरि । धीकुन्तलाभिधो देशो ह्युदेशं ऋणु प्रिये ॥' इति शकिसंगमतन्त्रम्. तस्मिन्समये च गुर्जर-देशेऽपि सातवाहनस्यैव प्रभुत्वमासीत्, यतस्तेन सद्युष्टेन स्वसचिवाय शर्ववर्मणे अहकच्छ- (मरोच)देशप्रभुश्च दत्तमिति 'राजाहंरजनिकर्षरथ शर्ववर्मा तेनार्चितो गुरुरिति प्रण-तेन राजा । स्वामी कृतश्च विपद्ये अहकच्छनाग्नि कूलोपकण्ठविदिवेश्चिनि नर्मदायाः ॥' अस्मात्कथासरित्सागरपद्यतरङ्गस्थमाप्तिस्थश्लोकाऽज्ञायते. ४. अनन्तराज-कलशदेव-द्वपदे-षादयः कश्मीरमहीपाला अपि सातवाहनकुलोत्पन्ना आसन्निति कहराजतरङ्गिणीतः कथासरित्सागरसमाप्तिस्थितप्रसंगस्थितश्च प्रतीयते. साऽपि सातवाहनः कदाचिदय-मेव स्यात्.

वादैव प्रथमशतके तस्य स्थिति . अथ गाथासप्तहकता सातवाहनोऽन्यै प्रत्नविभिर  
 प्यभिहित यथा—‘अविनाशिनमप्राम्यमकरोत्सातवाहन । विशुद्धतातिभि कोप रञ्ज  
 रिव सुभाषितै ॥’ इति हर्षचरितारम्भे षाण कोपथायमेव गाथासप्तहकरो वाणस्य  
 विवक्षित ‘जगत्या प्रथिता गाथा सातवाहनभूभुजा । व्युर्धुतेस्तु विस्तारमहो चित्र  
 परम्परा ॥’ अथ श्लोक केषुचित्सूक्तिमुक्तावलीपुस्तकेषु राणशेखरनाम्ना समुद्रतो  
 दृश्यते ‘सच्च भण गोदावरि पुव्वसमुद्रेण साहियासन्ती । सालाहणकुलसरिचं जइ ते  
 वूले कुल अत्थि ॥ उत्तरओ हिमवन्तो दाहिणओ सालवाहणो राथा । समभारभर-  
 कन्ता वेण न पण्ठथए पुहवी ॥’ एतद्गाथाद्वय राणशेखरसूरिप्रणीते प्रवन्धकोप सात-  
 वाहनप्रवन्धे समुपलभ्यते

शतानन्दसुनुमहाकविध्रीमदभिनन्दप्रणीतरामचरिताख्यमहाकाव्यस्य सप्तमसर्गा  
 न्ते पञ्चदशसर्गांते च ‘नम थीहारवर्पाय येन हालादनन्तरम् । स्वकोप कविकोपा  
 णामाविर्भावाय सञ्चत ॥’ अथ श्लोक, द्वात्रिंशत्सर्गसमाप्तौ च ‘हालेनोत्तमपूजया क  
 विवृष श्रीपालितो लालिष रयाति कामपि कालिदासकवयो नीता शकारातिना ।  
 श्रीहर्षा विततार गदवच्ये वाणाय वाणीफल सय सक्रिययाभिनन्दमपि च थीहारव-  
 र्पोऽप्रहीत् ॥’ अथ श्लोक समुपलभ्यते एतेन श्रीपादितकविर्नैव धनलिप्या स्वप्र  
 भोर्हालस्य नाम्नाय गाथात्तप्तशतकप्रथ सगृहीत स्वादित्यप्यनुमीयते सातवाहनस्यैव  
 हाल, शाल, सातवाहन, एते पर्याया सन्तीति हैमकोपादिषु सुव्यक्तमेव

१ प्रवन्धकोपे तु ‘महावीरस्वामिनि मोक्ष गते ४७० वर्षान्तर विक्रमादित्य ।  
 तत्समकालीन एवाथ सातवाहन । काटिकाचार्यसमकालीनोऽपि कश्चन सातवाहन,  
 सोऽस्मादर्वाचीन ।’ इत्यस्ति २ ‘शालो हाले मत्स्यभेदे’ इति, ‘हात् सातवाहनपा-  
 धिवे’ इति च हैमानेकाथ ‘शलति शाल । इयति वा । ‘श्यामादया-’ इति ल ।  
 हात् सातवाहननृप । तत्र यथा—‘जज्ञे शात्तमहीपाल प्रतिष्ठानपुरे पुरा ।’ इति,  
 ‘यथा—दिव गते हालवमुधरधिपे ।’ इति च तटीका अनेकार्थैरैवाकरकौमुदी  
 ‘हाल सात्सातवाहन’ इति हैमनाममाला. ‘हाल्वरानिहृदय हाल । ज्वलादिवाक्  
 ण । सात इत्तुसुख वाहनमस्य सातवाहन । सालवाहनोऽपि ।’ इति तटीका अभिषा-  
 नचिन्तामणि ‘सालाहणमि हालो’ इति देशीनाममाला ‘हाल सातवाहन’ इति  
 तटीका. ‘शालो हालनृपेऽपि च’ इति त्रिकाण्डशेषानेकार्थ कथाचरितसागरे तु सा  
 तेन यस्माद्गोऽभूत्सात्त सातवाहनम् । नाम्ना चकार कालेन राज्ये चैन न्यवेद्यत् ॥’  
 इति सातवाहनपदस्य निरुक्तिरुक्तं सातो नाम कश्चन यक्ष कुवेरशापेन सिंहात्  
 प्राप्त तेनाथ स्मृष्टेऽधिरोपित इति कथापि तत्रैवास्ति वात्स्यायनीयकामसूत्रे तु  
 ‘सातवाहन’ इति तालव्यादि समुपलभ्यते वायु-भातस्य विष्णु-पुराणेऽपि भागवते च  
 हात्तमहीपतेर्नाम समुपलभ्यते इति विद्वद्वरभाण्डारकरोपाह—रामवृष्णशर्मभि प्रणीते

सप्रहूरूपेऽस्मिन्ग्रन्थे काश्चन गाथा हालप्रणीता अपि सन्ति यत कबिरपुस्तके चतुर्थगाथामारभ्य द्वादशगाथापर्यन्त प्रतिगाथाप्रे तत्तद्गाथान्तृणां 'हालस्स (हालस्य), बोडिसस्स, जुगेहस्स, मअरन्दसेणस्स (मकरन्दसेजस्य), अमरराअस्स (अमरराजस्य), कुमारिलस्स (कुमारिलस्य), विरिराअस्स (श्रीराजस्य), भीमस्तामिणो (भीमस्तामिन), हालस्स, एतानि पद्यन्तानि नामानि समुपलभ्यन्ते अत्रे च ऐत्यकप्रमादेन गलितानीति भाति. एतद्ग्रन्थान्तर्गता गाथा ध्वन्यालोके, तल्लोचने, सरस्वतीकण्ठाभरणे, काव्यप्रकाशे चोदाहृता सन्ति कुलबालदेवनिर्मिता गङ्गाधरभट्टनिर्मिता चास्य टीका समुपलभ्यते, तत्र गङ्गाधरभट्टनिर्मितैव समीचीना टीकाकत्रोंदेशकालौ चानिधितावैव.

जर्मनीदेशे टीकारहितोऽयं ग्रन्थो रोमनलिप्या वेबरपण्डितेन मुद्रितः . स च तोदेशीयानामेवोपकारक इति गङ्गाधरभट्टप्रणीतटीकासमेतोऽस्माभिर्मुद्रयितुमारब्ध भविष्यति चायमतिप्रबो मनोहरश्च ग्रन्थो रसिकानां हृदयावर्जन इति दृढमाशास्मटे.

#### अस्मन्मुद्रणाधारभूतपुस्तकानि त्वेतानि—

१. प्रथमं जयपुरराजकीयसंस्कृतपाठशालाया न्यायशास्त्राध्यापकाना ओझोपनामरु-  
थीजीवनाथचर्मणा गङ्गाधरभट्टटीकासमेतं प्राय शुद्ध 'नेत्ररामाङ्गभूषाके (१६३२),  
लिखित क-संज्ञकम्.

२. द्वितीयमप्येतादशमेव अलवरमहाराजाश्रितश्रीभवानन्दोदयानन्दरामचन्द्रपण्डि-  
ताना नवीन नातिशुद्ध च स विहितम्

३. तृतीयं कुलबालदेवप्रणीतटीकासमेतमस्मदीयं नात्यशुद्धं च विहितम् तत्र डॉ-  
क्टरपीटर्सनेन कोटानगरादानीतस्य पुस्तकस्य प्रतिलिखकम्.

४. चतुर्थं जयपुरराजगुरुपर्वणीकरोपाह्वनारायणभट्टाना केवलं संस्कृतच्छायामात्र  
प्राय शुद्ध नातिनवीनं च च-विहितम्

एतत्पुस्तकाधारेणात्रास्माभि शुद्धान्येव पाठा-तराणि गृहीतानि सन्ति.

दक्षिणप्राचीनेतिहासनाम्नि पुस्तके २५ पृष्ठे विलोकनीयम् शातकर्णे सातवाहनस्य  
विस्तरेण वर्णनं च तत्र एवावधार्यम्.

१. पुस्तकान्तरे 'कुलनाथदेव' इत्यपि नाम दृष्टमस्ति.



# काव्यमाला ।

हालापराख्यमहाकविश्रीसातवाहनसंकलिता

गाथासप्तशती ।

श्रीगङ्गाधरभट्टप्रणीतया भाववेशप्रवाशिकाख्यया टीकया संवलितया ।

नस्वा दुग्ण्डिपदान्ज गङ्गाधरभट्टनिर्मिता टीका ।

सप्तशतभाववेशप्रकाशिका शोभ्यता विज्ञैः ॥

अथ तत्रभवान्प्राकृतकविषुमुदकुमुदिनीनायकः शालिवाहनश्चिद्रीर्यितगाथाकोपस्या-  
पेन्नपरिसमाप्तये कृतं मङ्गलं श्रोतृहितार्थमुपनिबध्नाति—

पसुवङ्गो रोसारुणपट्टिमासंकन्तगोरिसुखअन्दम् ।

गृहीअग्घपट्टअं विअ संज्ञासल्लिअल्लि णमह ॥ १ ॥

[पशुपते रोषारुणप्रतिमासंकान्तगौरीमुखचन्द्रम् ।

गृहीतार्घपट्टजमिव संख्यासल्लिलाञ्जलिं नमत ॥]

पसुवङ्ग इति । मामुपेक्ष्य कथमयमन्यां ध्यायतीति रोषेणारुण प्रतिमया संक्रान्त  
आवृते पूर्वनिपातानियमासंकान्तप्रतिमं वा यद्गौरीमुख तदेव चन्द्रो यत्र तं पशुपतेः  
संख्यासल्लिलाञ्जलिं नमतेत्यन्वयः । रक्तमुखप्रतिविम्बच्छलेन गृहीतार्घोचितरक्तपट्टज-  
मिवेत्युत्प्रेक्षा । यद्वा मानिन्याः प्रणयरोपमसहमानं नायक प्रति दृष्ट्या उक्तिरियम्—  
'अनभिज्ञोऽसि प्रेमव्यवहाराणां यस्त्व प्रियाप्रणयरोपलक्षणे हर्षस्थाने कुप्यसि । न पश्यसि  
किं देव्याः संख्यासल्लिलाञ्जलावपि प्रणयरोपम्' इति ॥

गाथाकोपविरचनप्रयोजनमाह—

अमिअं पाउअकव्वं पट्टिअं सोअं अ जे ण आणन्ति ।

कामस्स तत्ततन्ति कुणन्ति ते कैहं ण लज्जन्ति ॥ २ ॥

१. 'पट्टअभिअ' इति ख ग-पुस्तकयोः पाठः. २. 'अमअ' इति ख-ग-पाठः. ३. 'कहं'  
इत्यस्मिन्पदे 'हं' इति गुर्वक्षरस्यापि छन्दोभङ्गभयात्त्वक्षरवदुच्चारण विधेयम्, इत्यत्र प्रमाण  
प्राकृतपिण्डे यथा—'अइ दीहो वि अ वण्णो लहु जीहा पवइ होइ सो वि लहु । वण्णो

[अमृतं प्राकृतकाव्यं पठितुं श्रोतुं च ये न जानन्ति ।  
कामस्य तत्त्वचिन्तां कुर्वन्ति ते कथं न लज्जन्ते ॥]

अमिअमिति । शृङ्गाररसनिर्भरत्वेनाङ्गादकत्वादमृतमिवामृतं प्राकृतकाव्यमवसरे पठितुं परपठितं च श्रोतुं बोद्धुं ये न जानन्ति, अथ च-कामस्य तत्त्वचिन्तां तन्त्रवार्ता वा कुर्वन्ति ते कथं न लज्जन्त इत्यर्थः । कामशास्त्रव्युत्पत्तिविधुरं प्रति विदग्धनायिकोक्तिर्वा ॥

प्रेक्षावत्प्रवृत्तये स्वप्रन्यस्य सकृत्ततां साररूपता चाह—

सप्त सताइं कइवच्छलेण कोडीअ मज्झआरम्मि ।

हालेण विरइआइं सालंकाराणं गाहाणम् ॥ ३ ॥

[सप्त शतानि कविरत्सलेन कोटेर्मध्ये ।

हालेन विरचितानि सालंकाराणां गायानाम् ॥]

सत्तेति । मज्झआरो मध्यः । कविगाथासमूहेण तत्कीर्तिस्थापनात्कविवरत्सलेन हा-लेन शालियाहनेन सालकाराणां गायाना कोटेर्मध्ये सप्त शतानि विरचितानि । संगृही-तानीत्यर्थः । गायालक्षणं तु—‘पढमं वारह मत्ता बीए अद्दारएहिं सडुत्ता । जइ पढम तह तीअं दहपयविहुंसिआ गाहा ॥’ इति पित्रलोच बोध्यम् ॥

‘कैलोलिनीकाननकदरादां दु साधये चापितचित्तवृत्ति । मृदुवमारम्भमभिर्धर्य-श्लयोऽपि दीर्यं रमते रतेषु ॥’ इत्यादि कामशास्त्रादीर्धरमणार्थं नायकस्यान्यचित्तता कुर्वती वाचिदाह—

उअ निञ्जलणिप्पन्दा भिसिणीपत्तम्मि रेहइ वलाभा ।

णिम्मलमरगअभाअणपेरिट्ठिदा सद्धसुत्ति ज्व ॥ ४ ॥

वि तुरिअपडिओ दोतिणिं वि एक जणोहु ॥’ इति ‘यदि दीर्घमपि वर्णं लघुवृत्त्या जिह्वा पठति तदा सोऽपि वर्णो लघुरेव भवति । द्वौ वर्णौ त्रयो वा वर्णास्त्वरिनपठितास्ता-नेक एव वर्ण इति जानीत ।’ इत्येतद्विधा. एवं ‘इ’ ‘हिं’ इति वर्णद्वयम्, ‘ए’ ‘ऊ’ इति वर्णद्वयं श्रुतम्, जवर्ण(अन्यवर्ण)मिलितं वा विकल्पेन लघु भवति, तथा रकारयुक्ते हकारयुक्ते वा व्यञ्जने परे पूर्वाक्षरं विकल्पेन लघु भवति, इत्यादि नियमाः सोदा-हरणा. प्राकृतपित्रले दृश्यन्ते. अस्माभिरप्यत्र यस्य गुर्धक्षरस्य लघ्वक्षरवदुच्चारणं भवति तदुपरि एतादृशमर्थवन्नाच्चारं विहं स्थापितमस्ति. १. ‘कोट्यामध्ये’ इति अ-पुस्तके, ‘कोटिमध्यात्’ इति ग-पुस्तके पाठः. २. ‘शालवाहनेन’ इति, ‘शालिवाह-नेन’ इति च ग घ पुस्तकयोः पाठौ. ३. अयं श्लोकः कुकोकप्रणीते इतिरहस्ये (५१३) वर्तते. ४. ‘परिट्ठिआ’ इति ख-ग-पाठः.

- [पश्य निश्चलनि.स्पन्दा विसिनीपत्रे राजते बलाका ।

निर्मलमरकतभाजनपरिस्थिता शङ्खशुक्तिरिव ॥]

उभ गिचलेति । निश्चलोऽचलस्तद्वन्नि.स्पन्दा वेगविधारणप्रयत्नवशात् । निश्चलेति पुरुषसंबोधनं वा । शङ्खपटिता शुक्तिः शङ्खशुक्तिः । तथा च यदि वेगविधारणपरोऽस्ति तदैनां बलाकां पर्यग्रन्थमनस्कतया चिरं रमस्वेति भावः । यद्वा नि स्पन्दत्वेनाश्व-  
स्तरवम्, तेन च जनरहितत्वम्, तेन च सकेतस्थानमिति कयाचित्कचित्प्रति व्यज्यते । अ-  
थवा मिथ्या वदसि । न त्वमत्रागतोऽभूरिति व्यज्यते ॥

विपरीतरत्नप्रसङ्गे सदर्पां काचिदुद्दिश्य कथिदाह—

तावच्चिअ रइसमए महिलाणं विव्रममा विराजन्ति ।

जाव ण कुवलयदलसंछायाणि मुकुलीभवन्ति नयनानि ॥ ५ ॥

[तावदेव रतिसमये महिलानां विभ्रमा विराजन्ते ।

यावन्न कुवलयदलसंछायानि मुकुलीभवन्ति नयनानि ॥]

तावेति । यद्वा सुरतावसानोपचाराद्यनभिज्ञतया रतान्तेऽपि कटाक्षभुजप्रक्षेपादि-  
विभ्रमं कुर्वन्ती नायिकां प्रति सदृशाः शिक्षोक्तिरियम् । रतिसमये स्त्रीणां विभ्रमस्ता-  
वदेव विराजन्ते पुरुषाणां हृदयहारिणो भवन्ति यावत्पुरुषाणां नयनानि रतिप्राप्त्या  
मुकुलितानि न भवन्ति । अतस्तथाविधं नायकमुपलभ्याप्राप्त्यतिमुख्यापि प्रसन्नरतिमु-  
स्येव त्यक्तविभ्रमया त्वया भवितव्यमिति ॥

स्वकीशोपवनरोपितस्य पुष्पफलरहितस्य कुरवकंतरोर्दोहदमन्वेपयन्तं नायक प्रति  
नायिकायाः सखी वदति—

णोहलिअमप्पणो किं ण मग्गसे मग्गसे कुरवअरस ।

एअं तुह सुहग हसइ वलिआणणपङ्कअं जाआ ॥ ६ ॥

[दोहदमात्मनः किं न मृगयसे मृगयसे कुरवकस्य ।

एवं तव सुमग हसति घलिताननपङ्कजं जाया ॥]

णोहलिअमिति । यद्वा णोहलिअं नवफलोद्गममित्यर्थः । मदालिङ्गनेन कुरवकस्य  
फलोद्गमं प्रार्थयसे आत्मनः पुंस्यस्य फलं किमिति न प्रार्थयसे । अहो ते जाव्य-  
मित्यभिप्रायः ॥

१. 'तावच्चिअ' इति क-पाठः. २. 'जावण्ण' इति ग-पाठः. ३. 'दलसछाया' इति  
ग-पाठः. ४. 'मउलन्ति' इति क-पाठ. ५. 'सदृशानि' इति ग-घ-पाठः. ६. 'मुकुला-  
यन्ते' इति, 'मुकुलन्ति' इति ग-घ-पाठौ. ७. 'दोहलिअ' इति ग-पाठः. ८. 'एवं तु  
तुह' इति छन्दोभङ्गयुक्तः क-ख-पाठः. ९. 'नवदोहदमात्मनः' इति घ पाठः. १०. 'मार्ग-  
से मार्गसे' इति ग-पाठ. ११. 'एवं सल्ल सुमग त्वा' इति क-ख-घ-पाठः, 'इयं त्वा सु-  
मग' इति ग पाठः.

वसन्तसमये गमनोद्यन नायक प्रति कान्ताया सखी गमनाक्षेपर्यमाह—

ताविज्जन्ति असोएहिँ लडहवणिआओँ दइहविरहम्मि ।

किं सहइ को वि कस्स वि पाअपहार पडुप्पन्तो ॥ ७ ॥

[ताप्यन्ते अशोकैर्विदेग्धवनिता दयितविरहे ।

किं सहते कोऽपि कस्यापि पादप्रहारं प्रभवन् ॥]

ताविज्जन्तीति । अशोकैरननुभूतशोकत्वात्परपोढानिर्दये । अन्योऽपि न सहते किं पुनरशोक । प्रभवन्नित्यवसरप्राप्त्या समर्थो भवन् । कातसंनिधौ तु सामर्थ्याभावात् ताप्यन्त इत्याशय । तथा च वरस्त्रीचरणताडनरूप दोहद त्वयैव कारितेय मत्सखी त्वद्विरहे लब्धावसरैः सानुशयैरशोकैस्त्राप्यमाना जीवितमेव जह्यादिति भाव । प्रो-  
पितभर्तृकाया कान्तं प्रति तत्सख्या लेसगायेयमिति कथित् ॥

कस्यापि केनचित्क्षामुकेन तिलवाटिका संकेतस्थानमासीत् । ततः पक्षेपु तिलेपु संकेतस्थानात्तरं जारं प्रति धावयन्ती श्वश्रू प्रत्याश्रयंकथनव्याजेनाह—

अत्ता तह रमणिज्ज अह्म गौमस्स मण्डणीहूमम् ।

लुअतिलवाडिसरिच्छ सिसिरेण कअ भिसिणिसण्डम् ॥ ८ ॥

[श्वश्रु तथा रमणीयमस्त्राक ग्रामस्य मण्डनीभूतम् ।

तूनतिलवाटीसदृश शिशिरेण वृत्त भ्रिस्तिनीषण्डम् ॥]

अत्तेति । हिमदग्धपन्नतया दण्डमात्रशेषं वाहूनतिलवाटीसदृशम् । तथा च पूर्वं पश्चादाहरणार्थं जनानां तत्र गतागतमासीत्, तदधीदानीं नास्तीति विजनव तस्य देशस्य सूचितम् । 'तिलक्षेत्रपद्मसरं प्रभृति संकेतस्थानान्तराभावाद्गृहमेव संकेतस्थानमित्यर्थः' इति कथित् ॥

कस्यापि केनचित्सम शालिक्षेत्रं संकेतस्थानमासीत् । ततः शालिपाके तदपगम इदं रुदन्तीं तामुद्दिश्य संकेतस्थानान्तरं सूचयन्ती सखी आह—

किं रुअसि ओणअमुही घवलाअन्तेसु सालिछेत्तेसु ।

हरिआलमण्डितमुही णडि व्व सणधाडिआ जाआ ॥ ९ ॥

[किं रोदिष्यवनतमुखी घवलायमानेषु शालिक्षेत्रेषु ।

हरितालमण्डितमुखी नदीव शणवाटिका जाता ॥]

किमिति । हरितालेन धातुविशेषण मण्डितमुखी नदीव । शणवाटिकापक्षे—पीतकुम्भ-

१ 'असो इहिँ' इति ग पाठ २ 'मनोहरस्त्रिय' इति ग पाठ, 'ललितवनिता' इति घ पाठ ३ 'पुष्पित' इति ग पाठ ४ 'गाअस्स' इति ख-पाठ ५ 'लुअ-तिलवाडिसरिस्' इति ख-पाठ ६ 'हे मातसया' इति ग पाठ

मस्तयकनिकरनिविडशिखरशणतरुनिवहनिरन्तरतया हरितालमण्डितमुखीवेत्युपमा । अथ च हरीणां मर्कटानां जालेन मण्डित मुख प्रवेशमार्गो यस्या इति निर्जनता व्यज्यते । अथवा पाकाभिमुखेषु शालिक्षेत्रेषु हर्षस्थानेष्वपि रुदितलक्षितशालिक्षेत्राभिसारा कापि कयापि परिहासशीलया एवमुपहस्यते ॥

कलहान्तरितां नायिका कान्तानुश्रुत्यभिमुखीं कर्तुं सखी आह—

सहि ईरिसिञ्चिअ गई मा रुव्वसु तंसेवलिअमुहअन्दम् ।

एआणं बालवालुक्कितन्तुकुडिलाणं पेम्माणम् ॥ १० ॥

[सखि ईदृश्येव गतिर्मा रोदीस्तिर्यग्बलितमुखचन्द्रम् ।

एतेषां बालकर्कटीतन्तुकुडिलानां प्रेम्णाम् ॥]

सहीति । ईदृश्येवेति सनिहितमेवानुवर्तन्ते । वेष्टितभेव वेष्टयन्ति । मनागाकृष्ट्यापि नुश्रुयन्ति । सथावदन्यत्र दृढानुबन्धो न भवति तावदेव मानं विहाय कान्तमनुवर्तस्वेति सहायामुपदेशः । तत्कान्ते च विरहविपुत्रेयं मानिनी तदेनामनुनयस्वेति व्यङ्ग्योऽर्थः ॥

गृहीतमानायाः कस्याश्चिदनुनयार्थं चरणपतितस्य पत्युः पृष्ठमारूढ पुत्रं दृष्ट्वा बन्ध-विशेषस्मरणात्तस्या हास्योद्गमो जात इति काचित्सखीमाह । यद्वा छतकलहयोर्दंपत्यो रात्रिश्रुतान्तमनुबंधायागता सपत्नी सपत्न्या पृष्ट्वा तामाह—

पाअपडिअस्स पइणो पुट्टिं पुत्ते समारुहत्तम्मि ।

दढमण्णुदुंणिआएँ वि हासो घरिणीएँ णेक्कन्तो ॥ ११ ॥

[पादपतितस्य पत्युः पृष्ठं पुत्रे सैमारुहति ।

दृढमन्युदूनाया अपि हासो गृहिण्या निष्कान्तः ॥]

पाएति । पत्युः स्वामिनः । न तु बद्धमस्येत्यर्थः । पुत्रे समारुहतीत्यनेन पुत्रवत्तया गलितरथीवनायामप्यनुरक्त इति व्यज्यते । गृहिण्या गृहस्वामिन्याः । अस्मादादीना-मौदासीन्यादिति भावः । दढमन्युदूनाया इत्यनेन रोषोपशमाभावप्रतिपादनेन स्वाधीन-भर्तृकायाः सौभाग्यगर्वात्पतिविषयेऽनादरः, पत्युश्च तादृश्यामपि क्षेहातिशयः प्रकटितः ॥

प्रियविश्लेषोपतप्तया कयाचिरश्रेयिता निस्त्रयार्थो दूती नायकमुत्कर्षयन्ती भग्न्या स्वस-सीमरण सूचयन्ती आह—

सेसं जाणइ ददुं सरिसम्मि जणम्मि जुज्जाए रीओ । -

मरुण ण तुमं भणिससं मरणं वि सत्ताहणिजं से ॥ १२ ॥

१. 'तिरिअवलिअ-' इति ग-पाठः. २. 'दुंणिआएँ' इति ख-पाठः; 'दुम्मिआइ' इति ग-पाठः. ३. 'समारुहमाणे' इति ग-पाठः. ४. 'दढमन्युदुर्मनस्काया.' इति ग-पाठः. ५. ख-ग-पुस्तकयोरेत्या अप्रिमायाथ गाथाया व्यत्ययोऽस्ति. ६. 'जाण' इति ख-ग-पाठः.

[सत्यं जानाति द्रष्टुं सदृशे जने युज्यते रागः ।

म्रियतां न त्वां भणिष्यामि मरणमपि श्लाघनीयं तैस्त्वाः ॥]

सधमिति । यतोऽनन्यरूपस्त्राधिनी र्वद्रूपमेव बहु मन्यत इत्याशयः । सदृशे जने युज्यते राग इत्यनेन रूपाभिजनादिभिरनुरूपे त्वमि तस्याः समागमौत्सुक्यं युक्तमेवेति नायिकायाः सुललुरागाभ्यां नायकप्रोत्साहनम् । म्रियतामित्यनेन नायकस्थानभ्युपगमे क्षीय-  
धपातकम्, आत्मनश्च प्रार्थनामङ्गलीकृतं दर्शितम् । मरणमपीत्यादिना चानुरूपांनुष्ठाना-  
रवद्गतचित्ताया मरणे अन्मान्तरे त्वत्प्राप्तिर्धमवो व्यज्यते ॥

वैखादिमालिन्यशब्दा गृहकृत्वपराङ्मुखीं सखीं प्रबोधयितुं काविदाह—

घरिणीं महाणसकम्मलङ्गमसिमैलिङ्गण हत्येण ।

छित्तं मुहं हसिज्जइ चन्द्रावत्थं गअं पइणा ॥ १३ ॥

[गृहिण्या महानसकर्मलमपीमलिनितेन हत्येन ।

दृष्टं मुखं हसते चन्द्रावत्त्वं गतं पत्या ॥]

वरीति । यस्य यदुचितं कर्म तच्छील्यतो वैरूप्यमप्यलंकारायैव भवति । यतो  
स्वमपीकालिमपि मुखं पत्या सपरिहासं चन्द्रेणोपमीयते । अतः कुलव्रीणां गृहकृत्वप-  
राङ्मुखत्वमनुचितमिति भावः ॥

कृतकारमाहतेनान्यप्रज्वलसमी कुण्ठन्ती काचित्स्वामिलापं प्रकाशयमाह—

रन्धणकम्मणिउणिए मां जूरसु रत्तपाटलसुअन्धम् ।

मुहमारुअं पिअन्तो धूमाइ सिही ण पज्जलइ ॥ १४ ॥

[रन्धनकर्मणिपुणिके मा कुण्ठस्व रत्तपाटलसुअन्धम् ।

मुखमारुतं पिबन्धूमायते शिखी न प्रज्वलति ॥]

रन्धणेति । रन्धनपरतया स्वदबलोकनकौतुकोपगतमपि मां नाबलोकयतीति भावः ।  
मा इति । तवापरकृतेऽग्निपूजोचितस्य रत्तपाटलाङ्कुमुमस्येव सुरभिशीतलो गन्धो  
यस्य तम् । मुखेति । दोषाहणत्वन्मुसदिदृक्षयैव धूमोद्गमचाद्रुमाचरति । लन्मुखमाहृतपा-  
नेच्छवैवार्यं न प्रज्वलति । ज्वलितस्य तत्प्राप्त्यसंभवादिति भावः ॥

१. 'अस्त्राः' इति ग-पाठः. २. 'कापि मलिनत्वाशब्दा स्वामिसमाहितगृहकृ-  
त्वपराङ्मुखी' इति ख-पाठः. ३. 'मदलिण' इति ख-ग-पाठः. ४. 'कीऽपि युवा  
कायुकधर्ममयी समाधाय स्वामिप्रायं प्रकाशयन्माहतेनाप्रज्वलसमी कुण्ठन्ती नायिका-  
माह' इति ख-पाठः. ५. 'खिदल' इति ग-पाठः. ॥

नवोढायाः कन्याधिभूतगर्भयोगिन्याः कान्तं प्रत्यनुरागातिशयं प्रतिपादयन्  
काचिदाह—

• किं किं दे पडिहासइ सहीहिँ इअ पुच्छिआएँ मुद्धाए ।

पढमुग्गअदोहँणीए णवरं दइअं गआ दिट्ठी ॥ १५ ॥

• [किं किं ते प्रतिभासते सखीभिरिति पृथाया मुग्धायाः ।

प्रथमोद्गतदोहदिन्याः केवलं दयितं गता दृष्टिः ॥]

किमिति । प्रतिभासते रोचते । दयितेऽभिलाषमेव सूचितवतीत्यर्थः । यद्वा सपत्नीं प्र  
सासूयस्य सपत्नीजनस्योपालम्भवादोऽयम् । मुग्धाया इति मोहाद्गर्भायासमप्यग  
यन्त्याः । प्रथमेति । बहुप्रसूताश्च गर्भखेदखिन्नाः मुरतावासं परिहरन्ति । इय त्वननुः  
तप्रसूतिखेदा प्रियसंभोगमेव परमभिलषतीति भावः ॥

प्रोषितपतिका काचिद्विरहदाहदुःसहत्वं व्यञ्जयन्ती कान्तसमागमविषये सखीञ्च  
स्वरयितुं चन्द्राभ्यर्थनच्छलेनाह—

अमअमअ गअणसेहर रअणीमुहत्तिलअ चन्द्र दे छिवसु ।

छित्तो जेहिँ पिअअमो ममं पि तेहिँ विअ-करेहिँ ॥ १६ ॥

• [अमृतमय गगनशेखर रजनीमुखतिलक चन्द्र हे स्पृश ।

स्पृष्टो यैः प्रियतमो मामपि तैरेव करैः ॥]

अमएति । देशब्दः सानुनयसंबोधने । अमृतमयेत्यनेन जगज्जीवनहेतुत्वम्, गगनरं  
खरेत्यनेनाखिललोकलोचनानन्दकारित्वम्, रजनीमुखतिलकेत्यनेनाबलाजनपक्षपातित्वम्  
चन्द्रेत्यनेनाहादकत्व व्यज्यते । एवविधोऽपि मां निर्दयं दहसि, मत्कान्तं पुनरमृतशिशिः  
करैः स्पृशसीत्यतोऽद्यापि नायातीति भावः ॥

सखि मुञ्च खेदम् । अद्य श्रो वा तवागमिष्यति कान्तः । किं त्वागतोऽप्यसौ त्वर  
सप्रणयरोपमुपालम्भैः खेदवितज्य इति सखीभिरुक्ता प्रोषितमर्तृका आह—

ऐहइ सो वि पउत्थो अहं अ कुप्पेज्ज सो वि अणुणेज्ज ।

इअं कस्स वि फलइ मणोरहाणं माला पिअअमम्मि ॥ १७ ॥

• [ऐष्यति सोऽपि प्रोषितो अहं च कुपिष्यामि सोऽप्यनुनेष्यति ।

इति कस्या अपि फलति मनोरथानां माला प्रियतमे ॥]

१. 'दोहलिणीए' इति ग-पाठः; 'दोहलिणी' इति ख-पाठः. २. 'एहिइ' इति  
ख-पाठः. ३. 'अणुणेज्ज' इति ग-पाठः. ४. 'अगमिष्यासि' इति ग-पाठः.  
५. 'अथाह' इति ग-पाठः.

एहइति । कान्तस्य निरनुकोशत्वात्, आत्मनश्च कान्तावधीरणभीरुत्वात्, श्यञ्चिरे  
प्रेमानुबन्धस्यासंभाव्यमानत्वाच्च सर्वमेतन्मनोरथमात्रमित्याशयेनाह—इतीति । कस्यापि  
धन्यजनप एतरसपत्न्ये । मम तु मन्दभाग्यायाः कृत एतदिति भावः ॥

कथमधुना दुर्वलोऽसीति मित्रेण पृष्टस्य कान्तस्य बहुमहिलाकृष्टि कापि सेर्धोपाल-  
म्भमन्यापदेशेनाह—

दुग्गअकुटुम्बअट्टी कहेँ णु मए धोइएण सोढव्वा ।  
दसिओसरन्तसलिलेण उअह रुण्णं व पडएण ॥ १८ ॥

[दुर्गतकुटुम्बाकृष्टिः कथं नु मया धौतेन सोढव्या ।

दशापसरत्सलिलेन पश्यत रुदितमिव पटकेन ॥]

दुग्गएति । सोढव्येव्यनन्तरं इति शङ्कया इति शेषः । तथा चैवंविधशङ्कामानेण  
खेदारशागलज्वलच्छलेनाचेतनोऽपि पटो रोदिति, अयं तु विदग्धो महिष्ठाण्डानुवृत्त्या  
कथं न खिन्नः स्यादिति भावः । यद्वा कापि वेश्या धनदानेन विना बहूनां ग्रामप्रधा-  
नानामाकर्षणादुद्वेगं कुटनीं प्रति सूचयन्तीत्यं कथयति ॥

कोऽप्यात्मनः पराधीनवृत्तित्वमनुरागातिशयं च नायिकां प्रति ह्यापयन्नायिकावृह-  
गामिवत्समन्यापदेशेनाह—

कोसम्बकिंसलअवण्णअ तण्णअ उण्णामिएहिँ कण्णेहिँ ।

हिअअट्टिअँ घरेँ वञ्चमाण धवलत्तणं पाव ॥ १९ ॥

[कोशाग्रविंसलयवर्णं तर्णकं उन्नानिताभ्यां कर्णाभ्याम् ।

हैदयस्थितं गृहं भ्रजन्धवलत्वं प्राप्नुहि ॥]

कोसम्बेति । धवलत्वं श्रेष्ठतां पण्डत्वं वा । स्वेच्छाचारितामिति यावत् । अहमिव पराधी-  
नवृत्तिर्मा भूयति भावः । अथवा या वृद्धा कामयते तस्यास्त्वं तर्णक इवेति कथावित्क-  
चित्प्रसूच्यते ॥

कापि भावजिज्ञासार्थं कृतकतिद्रानिमीलिताक्षं कपोलचुम्बनपुलकिताग्रत्वेन विदित-  
मिभ्यास्त्रापं कान्तमाह—

अलिअपसुत्तअविणिमीलिअच्छ दे सुहअ मज्झ ओभासम् ।

गण्डपरिउम्बणापुलइअङ्ग ण पुँणो चिराइस्सम् ॥ २० ॥

[अलीकप्रसुप्तवविनिमीलिताक्ष हेँ सुभग ममावकाशम् ।

गण्डपरिचुम्बनापुलकिताङ्गं न पुनश्चिरैरिष्यामि ॥]

१. 'कुटुम्बकृष्टिः' इति घ-पाठः. २. 'हैदयेपित्तं' इति ग-घ-पाठः. ३. 'उणो'  
इति ग-पाठः. ४. 'ददस्स सुभग ममावकाशम्' इति ग-पाठः. ५. 'चिररिष्ये' इति  
ग-घ-पाठः.



अलिपति । हे मुभग, ममावकाश देहीति शेषः । 'दिसु धअ मज्झ' इति क्वचित्पाठः ।  
अत्र हे धव, ममावकाशं देहीति योज्यम् । केचित्तु—'दिसु हअमज्झ इति पदच्छे-  
दः । इतमप्य अङ्गविन्यासरुद्धमप्य देहि अवकाशम् । अर्यान्मम ।' इत्याहुः । गण्डेति ।  
एतेन नायिकाया इक्षितज्ञानमन्योन्यानुरागश्च यूनोर्दक्षितः ॥

वेद्याह्वानार्थमागते नायकमित्रे गृहीतान्यभुजंगमाच्छादयन्ती वेद्यामाता इहि-  
तरमार्ह—

असमत्तमण्डणाविअ वध धरं से सकोडहह्रस्स ।

वोलाविअहलहलअस्स पुत्ति चित्ते ण लग्गिहिसि ॥ २१ ॥

[असमाप्तमण्डनैश्च व्रज गृहं तैस् सकौतूहलस्य ।

व्यतिक्रान्तीत्सुक्यस्य पुत्रि चित्ते न लगिष्यसि ॥]

असमत्तेति । मण्डनकरणेनास्या विलम्बो नान्यप्रसङ्गेति भावः ॥

कश्चिन्नागरिकः कामिनीजनचित्तहरणार्थं रजस्रलामुखचुम्बनेनात्मनः कामुकत्वा-  
तिशयं प्रकटयन्नाह—

आभरपणामिओट्टं अघडिअणासं अंसंहअणिडालम् ।

वण्णविअटुप्पमुहिए तीए परिउम्बणं भरिमो ॥ २२ ॥

[आदरप्रणामितौष्ठमघटितनासमसंहतललाटम् ।

वर्णभृतलिप्तमुख्यास्रसाः परिचुम्बनं सैरामः ॥]

आभरेति । हरिद्रादिवर्णप्रधानं घृतं वणेषुतम् । देशविशेषे रजस्रलामुखं विद्यार्थं वर्ण-  
भृतेन लिप्यत इत्याचारः । तस्या या मया त्वयि प्राकथितसौन्दर्या । परि सर्वतः  
कपोलादी । यद्वा प्रोषितः कश्चिद्विप्रयाया । स्पृष्टक नामानुरागातिशयसूचकमालिङ्गनं  
स्मरन्नात्मानं विनोदयतीति गाथार्थं ॥

जनसवाधेऽपि प्रिय प्रत्युद्भटभावा सखी शिक्षयितु वापि प्रच्छन्नकामुकोकं कुल-  
जायां गाम्भीर्यगुणमाह—

अण्णासआइँ देन्ती तह सुरए हरिसविअसिअकवोला ।

गोसे वि ओणअमुही अँह सेत्ति पिआं ण सँहधिमो ॥ २३ ॥

१. 'मण्डणे विअ' इति ग-पाठः . २. 'अस्य' इति ग-पाठः . ३. 'व्यतिक्रान्तर-  
रणकस्य' इति ग-पाठः ; 'व्यतिक्रान्तहलहलकस्य' इति घ-पाठः . 'हलहलक कामौ-  
त्सुन्यमिति देशी' इति कुलवालदेव . ४. 'अघअलिलाडम्' इति ग-पाठः . ५. 'तु-  
प्पशब्दे देशी लिप्ते वर्तते' इति कुलवालदेव . ६ 'निटिलम्' इति घ पाठः .  
७. 'स्वामि' इति ग पाठः . ८. 'सहसेत्ति पिआ' इति ग-पाठः; 'अहसेत्ति पिआ'  
इति क्वचित्पाठः । अह इयमर्थे । इय सा प्रियेति तदर्थः . १' इति कुलवालदेव .  
९. 'सहहिमो' इति ग-पाठः..

[आज्ञाशतानि ददती तथा सुरते हर्षविकसितकपोला ।

प्रातरप्यवनतमुखी ईर्यं सेति प्रियां न अद्दम् ॥]

। अण्णोति । हर्षविकसितकपोला सती । तथा आज्ञाशतानि गृहाणाधरं मुखं चिकुरमि-  
त्यादीनि ददती । गोप्ते प्रातः । अद्द इयं सेयमिति । प्रथमैव न भवतीत्यर्थः । लोकसमक्षं  
गूढाकारतैव नायकप्रतिहेतुः, न तु धार्ष्ट्यमिति भावः ॥

काचित्पत्युरन्यस्यामनुरागमात्मनि चाननुरागं कुलीनतानमस्कारच्छलेनाह—

पिअविरहो अप्पिअदंसणं अ गरुआइँ दो वि दुक्खाइँ ।

जीएँ तुमं कैरिज्जसि तीएँ णमो आहिजाइँए ॥ २४ ॥

[प्रियविरहोऽप्रियदर्शनं च गुरुके द्वे अपि दु खे ।

यया त्वं कार्यसे तस्यै नम आभिजात्यै ॥]

। पिएति । करोतिरत्रानुभवार्थकः । अतएव देवदत्तो दुःखमनुभवतीत्यर्थे दु.खं करो-  
तीति प्रयोगः । आभिजात्यै कुलीनतायै । ऋतुस्नानादौ बन्धुजनाभ्यर्थना धर्मं वानुसन्धानः  
कुलीनतया मानुषागतोऽपि, न तु श्लेहेनेत्याशयः ॥

कथमयं गमनाय वृत्तारम्भोऽपि न प्रस्थित इति कस्यचित्प्रश्ने तद्वयसः सपरि-  
हासमाह—

एँको वि कैलसारो ण देइ गन्तुं पैआहिणवलन्तो ।

किं उण वाहाउलिअं लोअणजुअलं पिअअमाए ॥ २५ ॥

[एकोऽपि कृष्णसारो न ईदति गन्तुं प्रदक्षिणं बलन् ।

किं पुनर्बाष्पाकुलितं लोचनयुगलं प्रियतमायाः ॥]

एह इति । पक्षे व्याधाकुलितम् । किं पुनरिति । लोचनयुगलमपि यतः कृष्णसार-  
मिति भावः । एतेन वान्ताभ्रेहनिगडबद्धोऽयं न गच्छतीति सूचितम् ॥

अनुनीयमानमप्यनुनयमगृह्णन्त प्रणयिनी सप्रेमदण्डमाह—

ण कुणन्तो विअ माणं णिसासु सुहमुत्तदरत्रिबुद्धाणम् ।

सुण्णइअपासपरिमूसणवेअणँ जइ सिजाणन्तो ॥ २६ ॥ ।

१. 'सहसा प्रियेति न' इति ग-पाठः. 'असौ सेति' इति घ-पाठः. २. 'कारिज्जइ'  
इति क-पाठः. ३. 'अभिजात्यै' इति ग-पाठः. ४. 'एको वि' इति क-पाठः.  
५. 'कृष्णसारो' इति ख. पाठः. ६. 'पाहिणवलन्तो' इति क-पुस्तके, 'दवाहिण-  
वलन्तो' इति च ख पुस्तके पाठः. ७. 'बलन्' इति ग घ-पाठः. ८. 'नयनयुगलं'  
इति घ-पाठः. ९. 'परिमुत्तण' इति ख-ग-पाठः.

[नाकारिष्य एव मानं निशासु सुखसुप्तदरविशुद्धाम् ।

शून्यीकृतपार्श्वपरिमोषणवेदनां यद्यज्ञास्यः ॥]

नेति । निशासु स्वकान्तया सह सुखसुप्तानां किञ्चिद्विबुद्धानां ततोऽन्याभिसारिण्या  
तया शून्यीकृतेन पार्श्वेन यन्परिमोषणमथन तेन या वेदना ता यद्यज्ञास्यः सा वेदना यदि  
त्वया ज्ञाता भवेत्तदा त्वं मानं नाकारिष्य एवेति संवन्धः । समैवायं दोषः । यद्यहं पति-  
मता न स्या तदा किं त्वमेव करोषीति भावः ॥

कृतकलहशोर्दपलो रात्रिद्विताकलनार्थमागता प्रियसखी प्रणयरोपमद्रार्थमाह—

पणअकुविआणं दोहं वि अलिअपसुत्ताणं माणइह्लाणम् ।

णिच्चलणिरुद्धणीसासर्दिण्णकण्णणं को मल्लो ॥ २७ ॥

[प्रणयकुपितयोर्द्वयोरप्यलीकप्रसुप्तयोर्मानवतो ।

निश्चलनिरुद्धनिःश्वासदत्तकर्णयोः को मल्लः ॥]

पणएति । निश्चलेति । प्रयत्नधृतिश्चासत्त्वेन कृतकप्रसुप्तम्, तथाविधनिश्वासारुर्णन-  
तत्परतया चाभिलाषित्वं सूचितम् । को मल्ल इत्युपालम्भप्रथमं । न कोऽपीत्यर्थः । परस्प-  
रावधीरणासमर्थं वृथैव युवामात्मानं खेदयथ इति भावः ॥

वाभिदूती नायिकाया देवरानुरक्तत्वेनासाध्यत्वं सूचयन्ती जारं प्रत्याह—

णवलअपहरं अह्णे जहिं जहिं महइ देवरो दाउम् ।

रोमभ्वदण्डराई तहिं तहिं दीसइ बहूए ॥ २८ ॥

[नवलताप्रहारमह्ने यत्र यत्रेच्छति देवरो दातुम् ।

रोमाश्वदण्डराजिस्तत्र तत्र दृश्यते बध्वाः ॥]

श्रेयितभर्तृका प्राणेशरमीपगामिनमन्वगं सखीजनं वा तदानयनत्वरायमाह—

अज्ज मए तेण विणा अणुहूअसुहाई संभरन्तीए ।

अहिणयमेहाणं रवो णिसामिओ वज्जपडहो व्व ॥ २९ ॥

१. 'न पुवेन्त्येव' इति घ-पाठः. २. 'विषुद्धानाम्' इति घ-पाठः. ३. 'परि-  
मोषणं' इति ग-घ-पाठः. ४. 'यदि हि जानन्ति' इति घ-पाठः. ५. 'दोषं वि'  
इति ख-पाठः. ६. 'दिह' इति ग-पाठः. ७. 'मानान्विनयो' इति ग-पाठः. ८. 'ण-  
वलरुपहारमह्ने' इति ख-पाठः. ९. 'देवरो दासु' इति ख-पाठः. १०. 'वस्मिन्व-  
स्मिन्महति' इति ग-पाठः. ११. 'तस्मिन् तस्मिन्' इति ग-पाठः. १२. 'अणुभू-  
तमुरत' इति घ-पाठः.

[अथ मया तेन विना अनुभूतमुखानि संस्मरन्त्या ।

अभिनवमेघानां रघो निनामितो वषट्पटह इव ॥]

अत्रेति । गर्जितप्रवनाद्गुर्वास्वभूतमुखानि संस्मरन्त्या मया मेघानां चक्षो वषट्पटह इव वषट्स्थानं गीयमानस्य दीवयोयगापटहम्भिरिव धृत इत्यर्थः । एतेन वर्षाक्षणा-  
नघट्टति तस्मिन्पट्टवर्णानं मे मरणमित्यवगम्य यत्पुत्र तद्विधीयतामिति सूचितम् ॥

प्रामपालपुत्र प्रति वृत्ती कन्याधित्संगमायोभ्याहमिनुं सोपालम्भमाह—

‘निकिब जाआमीरक दुइंसण निम्बईहसागिच्छ ।

गामो गामिणिणन्दण सुअ एफ तह वि तणुमाइ ॥ ३० ॥

[निध्वैर जायाभीरक दुर्दशनं निर्भेफीटसेदृश ।

प्रामो प्रामणीनन्दन तव वृते तथापि तनुकायते ॥]

निकिबेति । अनुरक्तहृदिनीजनवैमुखाभिपृष्टप । ‘निकिब’ इति पाठे निकिब  
क्रियाशब्दः । जायाभीरक भार्यापरतन्त्र । अत एवासत्त्वचन्द्रप्रहारत्वारुर्दशनं दुर्लभद-  
शनं । निम्बईहसागिच्छ, तिष्ठदचित्वाद्गुन्दरमदिलानुरागाच्च । अभव्यटपितया द्वयोः  
साम्यम् । प्रामणीनन्दनेति भयशून्यताप्रदर्शनपरं सवोधनम् । प्रामो प्रामनिवारिविला-  
सिनीजनः कथं त्वासंगमः । भ्यादिति चिन्तया तनुकायते दुर्पलायत इति कामिनीजनानु-  
रागवचनेन वमनीयत्वं धर्मितम् ॥

कमपि सुभटयोपिदभिलाषिण विगृह्यग्रारिणमुत्साहयितुं तस्याः पत्यावनिच्छया सु-  
रासाध्यतां पुरस्स च सुगनिर्गमप्रयेततया निरपायतां दृष्टी सुभटमुत्थिव्यालेनाह—

पहरयणमग्गविसमे जाआ किच्छेण लहह से णिहम् ।

गामाणिउत्तस्स उरे पही उण सां सुहं मुचइ ॥ ३१ ॥

[प्रहारप्रणमार्गविषमे जाया कृच्छ्रेण लभते तस्य निद्राम् ।

प्रामणीपुत्रस्योरसि पही पुनः सां सुखं सपिति ॥]

पहरेति । उरे इति उरसि पुरे वा । प्रहारप्रणमार्गविषमे निद्रोपतककंशे तस्योरसि  
जाया कृच्छ्रेण निद्रां लभते । अनिच्छन्त्यपि भयात्तमाच्छिन्नं स्वपितीत्यर्थः । पुरपक्षे  
त्रु—प्रहारप्रणमार्गविषमे प्रहरगम्यो यो वनमार्गस्तेन विषमे दुर्गमे । पही, रक्षणया पही-

१. ‘निकिब’ इति ग-पाठः. २. ‘दुरस्सण’ इति ग पाठः. ३. ‘निकिब’  
इति घ पाठः. ४. ‘निम्बईह’ इति ख-पाठः. ५. ‘सहस’ इति ग-घ-पाठः.  
६. ‘तनुभवति’ इति ग घ पाठः. ७. ‘से’ इति क-ख-पाठः. ८. ‘सुअई’ इति ख-  
पाठः. ९. ‘तस’ इति घ पाठः.

निवासी जन , सुखं स्वपिति । न कोऽपि जग्गार्ताख्यः । जाया पुन कृच्छ्रेण । बहुव-  
हभत्वात्तस्य तज्जाया सावसरेव । अतस्तत्र गच्छेति जारं प्रति इतीवच ॥

अन्यनायिकानाम्ना संवोधानुनयन्त खण्डिता सविनयोपालम्भमाह—

अह सभाविअमग्गो सुहअ तुए जेव्व णवरं णिव्वुहो ।

एहिं हिअए अण्णं अण्ण वाआह लोअस्स ॥ ३२ ॥

[अय समावितमार्गः सुमग त्वयैव केवल निर्व्यूढ ।

इदानीं हृदयेऽन्यद्व्याचि लोकस ॥]

अहेति । इदानीं लोकस्य हृदयेऽन्यत् वाच्यन्वत् । तव तु यदेव हृदये तदेव वाचि ।  
यतो मा प्रति हृदयवाद्येनापि प्रियवचसा सैवानुनीता, न त्वहमिति भावः ॥

प्रणयकुपिता काचित्पृष्ठाभिमुखसुप्त कान्तमाह—

उह्माँ णीससन्तो किंति मह परम्मुहीएँ सअण्णे ।

हिअअ पलीविअ वि अणुसएण पुट्ठिं पलीवेसि ॥ ३३ ॥

[उष्मानि नि श्वसन्कमिति मम पराङ्मुख्या शयनार्थे ।

हृदय प्रदीप्याप्यनुशयेन पृष्ठ प्रदीपयसि ॥]

उह्माँ इति । शयनैकदेशे पराङ्मुख्यास्त्वचित्तामकुर्वन्त्या इति भावः । मम हृदयम-  
नुशयेन सपत्नीसमुत्कर्षजनितेन प्रदीप्योष्णैर्नि श्वासैर्मम पृष्ठ किं प्रदीपयसि । तामेव  
वल्लभानुपगच्छ । अलीकदाक्षिण्येन मामाश्रितान च किं खेदयसीति भावः ॥

इती कस्याधिद्विरहिण्या अवस्था नायक प्रत्याह—

तुह विरहे चिरआरअ तिण्णा णिवडन्तघाहमइलेण ।

रइरइसिहरधएण व मुहेण छाहि विअ ण पत्ता ॥ ३४ ॥

[तव विरहे चिरकारक तस्या निपतद्वाप्यमलिनेन ।

रविरथशिखरध्वजेनेव मुखेन च्छायैव न प्राप्ता ॥]

तुहेति । चिरकारक, अवधिदिवसलहनात् । छाया काप्तिरातपाभावश्च । 'छाया  
सूर्यप्रभा कान्ति प्रतिबिम्बमनात्प' इत्यमरः । तदेव विरहविधुरामनुकम्पस्वेत्याशयः ॥

नववधू प्रति सतीवृत्तशिक्षार्थं कापि बन्धुवधूराह—

दिअरस्स अमुद्धमणस्स कुल्लवहू णिअअकुड्डुलिहिआइ ।

दिअह कहेइ रामाणुल्लग्गसोमिस्तिचरिआइ ॥ ३५ ॥

१ 'वेअ' इति ख-ग पाठ २ 'णिव्वुहो' इति ख पाठ ३ 'एहिं' इति ख-  
पाठ ४ 'असो' इति घ पाठ ५ 'वीस' इति ख पाठ ६ 'पलीविअ विअ' इति  
क पाठ, 'पलीअ वि उ' इति ख-पाठ ७ 'तिस्सा' इति क ख पाठ ८ 'कुल्लव-  
हुआ' इति क पाठ ९ 'णिअअकुड्डु' इति क ख पाठ

[देवरसाशुद्धमनसः कुलवधूर्निजकुक्ष्यलिखितानि ।

दिवसं कथयति रामानुलभसौमित्रिचरितानि ॥]

दिबरस्सेति । अयमाशयः—कुलस्त्रिया रामायणवृत्तान्तं गृहभित्तौ विलिख्य तत्र विमातृजेऽपि रामे सभायेंऽनुलभानि लक्ष्मणस्य चरित्राणि कथयित्वा दुष्टहृदयो देवरः प्रत्याख्येयः, न तु प्रकटम् । कुटुम्बविषटनादिभयादिति भावः ॥

सतां सलपि विनाशकारणे विनाशो न भवतीत्यसती स्वदोषप्रच्छादनार्थमाह—

चत्तरर्घरिणी पिअदंसणा अ तरुणी पउत्थपइआ अ ।

असईसैपज्जिआ दुग्गआ अ ण ह्य रण्ण्डिअं सीलम् ॥ ३६ ॥

[चत्वरगृहिणी प्रियदर्शना च तरुणी प्रोषितपतिका च ।

असतीप्रैतिवेशिनी दुर्गता च न खलु खण्डितं शीलम् ॥]

चत्तरेति । चत्तरे राजमार्गं गृह यस्याः । प्रियदर्शना सुन्दरी । अश्ल्याः कुलटायाः प्रतिवेशिनी । अत्र चत्वरगृहिणीत्वादे शीलखण्डनकारणस्य सत्त्वेऽपि तदभावाद्दिशेषो-  
क्तिरलकारः—‘विशेषोक्तिरसण्डेषु कारणेषु फलावचः’ इति तद्वक्षणात् ॥

नदीतटकदम्बनिकुञ्जदत्तसंकेतेन कान्तेन विप्रलब्धा नायिका ‘तत्राहं गता, खं तु नागतः’ इति तं श्रावयन्ती सखीजनमाह—

ताद्धरभमाउलखुडिअकेसरो गिरिणईएँ पूरेण ।

दरबुडुउबुडुणिबुडुमहुअरो हीरइ कलम्बो ॥ ३७ ॥

[जलावर्तभ्रमाकुलखण्डितकेसरो गिरिनद्याः पूरेण ।

दरममोन्ममनिमममधुको हियते कदम्बः ॥]

ताद्धरेति । ताद्धरो जलावर्त इति देशी । जलावर्तानां भ्रमो भ्रमणं तेनाकुलः । अत एव खण्डितकेसरः । अत्र भ्रटकेसरतया गलितमकरन्देऽपि कदम्बे भ्रमरह्येयमीदृशी दृष्टोद्भवा । तव तु अस्तु तावत्प्रेम्णधिरानुबन्धः, संप्रत्येवाहं त्वया उल्लितेति सरोव उपालम्भः ॥

दूती कामुकं प्रति कस्याधिपतिप्रताया धनायसाध्यतां प्रतिपादयन्ती आह—

अहिआअमाणिणो दुग्गअस्स छाहिँ पँअस्स रक्खन्ती ।

णिअबन्धवाणँ जूरइ घरिणी विह्वेण एत्ताणम् ॥ ३८ ॥

१. ‘घरणी’ इति क-पाठः. २. ‘सहज्जिआ’ इति क-पुस्तके, ‘सअज्जिआ’ इति च ख-पुस्तके पाठः. ३. ‘सहवासिनी’ इति ग-पाठः. ४. ‘भ्रमात्खण्डित’ इति ग-पाठः. ५. ‘स्फुटितकेसरो’ इति घ-पाठः. ६. ‘दरमममोन्ममम-’ इति ग-पुस्तके, ‘दरममोन्ममनिमममधुको’ इति च घ-पुस्तके पाठः. ७. ‘पइअस्स’ इति क-पुस्तके, ‘पिअस्स’ इति च ग-पुस्तके पाठः.

[आभिजात्यमानिनो दुर्गतस्य छायां पत्यु रक्षन्ती ।

निजैवान्धवेभ्यः कुञ्च्यति गृहिणी विभवेनौगच्छन्ः ॥]

अहिआएति । 'पत्तानम्' इति पाठे प्राप्तेभ्य इत्यर्थः । छायां महत्त्वम् । पति-  
वित्तानुदत्त्यर्थं बन्धुजनस्याप्युपहारे न बहु मन्यते । किं पुनः कामिजनस्येति भावः ॥

कामुकजनाभियोगनिरासार्थं दूती स्वाधीनपतिक्रियाः सुवरितमाह—

साहीणे वि पिअअमे पत्ते वि रणे ण मण्डिओ अप्पा ।

दुग्गअपउत्थवइअं सअडिअं सण्ठवन्तीए ॥ ३९ ॥

[स्वाधीनेऽपि प्रियतमे प्राप्तेऽपि क्षुण्णे न मण्डित आत्मा ।

दुर्गतप्रोषितपतिकां प्रतिवेशिनीं संस्थापयन्त्या ॥]

साहीण इति । क्षुणे मदनमहोत्सवादी प्राप्तेऽपि प्रतिवेशिनीं संस्थापयन्त्या अनुद्विमां  
कुर्वन्त्या । कदाचित्कृतमण्डनां मामवलोकयेयमुद्विमा खण्डितचरित्रा स्यात् इत्याशङ्क्या  
या आत्मानं न मण्डयति तस्या दूरे स्थूलखण्डनसाहस इति भावः । अथवा प्रतिवे-  
शिनीस्थापनार्थमनया मण्डनं न कृतम्, न तु कामुकान्तरविरहविषययेति सपीदोप-  
च्छादनार्थं सख्या वचनमिदमिति ॥

नायिकानुरागकथनेन दूती नायकमनुकूलयितुमाह—

तुग्ग थँसइ त्ति हिअअं इमेहिँ दिट्ठो तुमं ति अँच्छीहिँ ।

तुह विरहे किर्सिआँइ तिए अङ्गाँइ वि पिआँइ ॥ ४० ॥

[तत्र वसतिरिति हृदयमाभ्यां दृष्टस्त्वमित्यक्षिणी ।

तव विरहे केशितानीति तस्या अङ्गान्यपि प्रियाणि ॥]

काचित्खण्डिता बहुधा कृतञ्चलौकमनुनयन्तं नायकमाह—

सव्भावणेहभरिए रत्ते रज्जिअइ त्ति जुत्तमिणम् ।

अणहिअए उण हिअअं जं दिज्जइ तं जणो असह ॥ ४१ ॥

१. 'अभिजाति' इति ग-घ-पाठः. २. 'निजवान्धवाग्निन्दति' इति ग-पाठः.  
३. 'आगच्छतः' इति ग-पुस्तके, 'गच्छन्ः' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'उत्सवे'  
इति ग-पाठः. ५. 'स्थापयन्त्या' इति घ-पाठः. ६. 'वसतिरिति' इति क-पाठः.  
७. 'अच्छिणी' इति ख-पाठः. ८. 'किर्सिआँइ' इति क-पाठः. ९. 'केशितानीति'  
इति ग-पुस्तके, 'केशानीति' इति घ-पुस्तके पाठः.

रहस्यमुपायं पृच्छन्ती । अनेन अस्तु तावद्विरहः, तव गमनसमय एव मुग्धाया जीवि-  
तांशा सद्विधेति ध्वनितम् ॥

वाचित्स्वाधीनभर्तृणा पत्युरनन्यपरताकथनेनान्यकामिन्यवकाशनिरासाय स्वसौमा-  
ग्यमाह—

अण्णमहिलाप्रसङ्गं दे देवं करेसु अम्ह दइअस्स ।

पुरिसा एकन्तरसा ण हु दोसगुणे विआणन्ति ॥ ४८ ॥

[अन्यमहिलाप्रसङ्गं हे देव कुर्वन्स्माकं दधितस ।

पुरुषा एकान्तरसा न खलु दोषगुणौ विजानन्ति ॥]

अण्णेति । देशब्दः सानुनयसंबोधने । हे देव, अस्माकं दधितस्यान्यमहिलाप्रसङ्गं  
कुरु । खलु यस्मात् पुरुषा एकान्तरसा गुणदोषौ न जानन्ति । अन्तश्चन्द. स्वरूपवाची ।  
एकरसा इत्यर्थः । यद्वा पत्युरनन्यासङ्गप्रार्थनेनावसरमिच्छन्त्या प्रच्छन्नरताभिलाषो जारं  
प्रति सूच्यते ॥

स्वयं दूती पचिकमाह—

थोअं पि ण पीसरई मज्झण्णे उइ सरीरतल्लुक्का ।

आअवभएण छाही वि पाहिअ ता किं ण वीत्तमसि ॥ ४९ ॥

[स्तोकमपि न नि सरति मध्याह्ने पश्य शरीरतल्लीना ।

आतपभयेन छायापि पथिक तत्किं न विश्राम्यसि ॥]

थोअमिति । आतपखिन्नाः पथिका यस्यां छायायां विश्राम्यन्ति, सा अचेतना  
छायाप्यातपभयेन बहिर्न निष्कामति, किं पुनश्चेतन इति । ततश्च मध्याह्ने कोऽपि  
बहिर्न निर्यातीति विविक्तनिरपायमध्याह्नाभिसारसुखमनुभवाव इत्याशयः ॥  
विरहोत्कण्ठिता ज्वरश्चाद्याच्छलेन चिरागतकान्तोपालम्भमाह—

सुहउच्छअं जणं दुहहं पि दूरादि अम्ह आणन्त ।

उअआरअ जर जीअं पि णेन्त ण कआवराहोऽसि ॥ ५० ॥

[सुखपृच्छकं जनं दुर्लभमपि दूरादस्माकमानयन् ।

उपकारक ज्वर जीवमपि नैवेन्न कृतापराधोऽसि ॥]

१. 'देव्य' इति क-ख-पाठः. २. 'विजानन्ति' इति क-पाठः. ३. 'अन्यस्त्रीप्रसङ्गं'  
इति ग-पाठः. ४. 'कुठ्वास्माकं' इति घ-पुस्तके, 'कुठ्वास्माद्' इति च ग-पुस्तके  
पाठः. ५. 'एकरसा' इति ग-पाठः. ६. 'उव सरीरतल' इति क-पाठः. ७.  
'आणेत' इति ग-पाठः. ८. 'उवभारअ' इति क-पाठः. ९. 'दूरान्मम इते' इति  
ग-पाठः. १०. 'एरुण' इति ग-पाठः.



सुहेति । सुहृत्च्छब्दशब्दोऽस्वास्थ्यवार्ताकारके । तेन लोकभयादागतम्, न तु  
 ज्ञेहादिति भावः । अस्माकं दुर्लभमपि दूरादानयन् । अत एव दुर्लभप्रियानयनादुप-  
 कारकं ज्वर, जीवमपि नयन्न कृतापराधोऽस्ति । एवं मां प्रत्यक्षेहे त्वयि मम, मरणमेव  
 श्रेयः । तच्च त्वदर्शनपूर्वकं साध्यता ज्वरेण ममोपकार एव कृतो न त्वपकार इति भावः ॥

सगिडता काचित्सुखप्रश्रयमानत कान्तं प्रति सेष्यमाह—

आमजरो मे मन्दो अह्व ण मन्दो जणस्स का तन्ती ।

सुहृत्च्छब्दं सुहृत् सुअन्धअन्ध मा अन्धिअं छिवसु ॥ ५१ ॥

[आमज्वरो मे मन्दोऽथवा न मन्दो जनस्य का चिन्ता ।

सुखपृच्छकं सुभगं सुगन्धगन्धं मा गन्धितां स्पृश ॥]

आमेति । अजीर्णोत्पन्नो ज्वर आमज्वरः । त्वयि क्रोधेन रात्रौ जागरणादिति  
 भावः । आमशब्दः सेष्यानुमताविति केचित् । जनस्योदासीनस्य महुःखादु लितस्य  
 भवतः किमनेन प्रधेनेति भावः । हे सुखपृच्छक अस्वास्थ्यवार्ताकारक, बहुवह्मत्वा-  
 त्सुभग, प्रियाङ्गसङ्गसकान्तपरिमलत्वात्सुगन्धगन्ध, गन्धितां संजातज्वरगन्धां मां मा  
 स्पृश । मदङ्गस्पर्शसंकान्तज्वरगन्धः सन् प्रेयस्याः कृतापराधो भा भूरित्याशयः ॥

रतिरभसात्कान्तमाक्षिप्यारब्धपुरवायितां सौकुमार्यादल्पयासेनैव श्रान्तां कान्तः  
 सहासमाह—

सिद्धिपिच्छलुलिकेसे वेवन्तेरु विणिमीलिअद्धच्छि ।

दरपुरिस्ताइरि विसुमरि जाणसु पुरिसाणं जं दुःखम् ॥ ५२ ॥

[सिद्धिपिच्छलुलितकेसे वेपमानोरु विनिमीलितार्धाक्षि ।

ईपैत्पुरुषायिते विश्रामशीले जानीहि पुरुषाणां यद्दुःखम् ॥]

पूर्वं निष्कासितस्य पुनरुपाजितवैभयस्य भुजंगस्य समागमाय प्रेरयन्तीं जननीं प्रति  
 वेश्याह—

पेम्मस्स विरोहिअसंधिअस्स पच्चकस्सदिट्ठविल्लिअस्स ।

उअअस्स वै ताविअसीअलस्स विरसो रसो होइ ॥ ५३ ॥

[प्रेम्णो विरोधितसंधितस्य प्रत्यक्षदृष्टव्यलीकस्य ।

उदकस्यैव तापितशीतलस्य विरसो रसो भवति ॥]

१. 'गन्धिते' इति क-ख-पाठः. २. 'गन्धशीला' इति घ-पाठः. ३. 'दरपुरवा-  
 यिते' इति ग-पुस्तके, 'दरपुरवायितशीले' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'विल्लिअस्स'  
 इति क-पाठः. ५. 'वि' इति क-पाठः. ६. 'संधितस्य' इति ग-पाठः.

पेम्मस्सेति । प्रत्यक्षेति श्रुतेऽनुमिते च विप्रिये प्रतीकार सभवति । ह्ये तु नारतीति भावः । पर्युपास्यमानोऽप्यसौ नानुरक्तो भविष्यति किमिलस्थाने मां प्रेरयतीति भावः ॥ बहुशोऽनुभूतेऽयं भविष्यत्यपि भूतवत्प्रत्ययो भवतीति निर्दर्शयन्कथिद्वन्द्या पतिशौर्यबहुमानमाह—

वज्रपट्टणाश्चिरं पट्टणो सोऊण सिञ्जिणीघोसम् ।

पुसिआइ करिमरिणें सरिसवन्दीण पि णअण्णइ ॥ ५४ ॥

[वज्रपतनातिरिक्त पशु श्रुत्या सिञ्जिनीघोसम् ।

प्रोञ्जितानि वद्या सहस्रवन्दीनामपि नयनानि ॥]

वज्रति इकरिमरी वदी । अतिचमत्कारकारित्वाद्ब्रजपतनातिरिक्तम् । 'मौर्वी ज्या सिञ्जिनी गुण' इत्यमरः । आगतो मे भर्ता भवतीरपि मोचयिष्यति । तत्किमयापि खेनेति भावः ॥

वन्द्या ताताभिलाषधोरयुवा पतिशौर्याभिमानिन्यास्तस्या उच्चाहमहार्पमाह—

करिमरि अआलगज्जिरजलआसणिपडनपडिरवो एसो ।

पट्टणो धणुरवकङ्किरि रोमञ्च किं सुहा वहसि ॥ ५५ ॥

[वेदि अकालगर्जनशीलचलदाशनिपतनप्रतिरव एष ।

पत्युर्धनूरवाकौङ्कणशीले रोमाञ्च किं सुधा वहसि ॥]

भुजगात्तरप्ररोचनाय दुहितुः सौकुमार्यातिशय सुरतक्षमत्वं च ह्यापयन्ती वेद्या-  
माता भुजगनिदाहलेनाह—

सहइ सहइ त्ति तह तेण रमिआ सुरअट्टुव्विअट्टेण ।

पम्माअसिरीसाइ व जह से जाआइँ अट्टाइ ॥ ५६ ॥

[सहते सहत इति तथा तेन रमिता सुरतदुर्विदग्धेन ।

प्रम्लानशिरीषाणीव यथास्या जातायद्गानि ॥]

सहइति । सुरतदुर्विदग्धेन सुरतावसानानभिज्ञेन ॥

नायक प्रति कस्याश्चिदतुरागातिशय प्रतिपादयन्ती द्वितीयाह—

अगणिअसेसजुआणा धालअ वोलीणलोअसज्जाआ ।

अह सा भमइ दिसामुहपसारिअच्छी तुह कएण ॥ ५७ ॥

१ अच्छीहिं इति ख-पाठ, 'अस्मूहिं इति च क-पाठ २ 'ज्याशब्दम्' इति ग-पाठ ३ 'सहस्रवन्दीना' इति घ-पाठ ४ 'करमर्यकालगर्जितजलदा' इति ग-पाठ ५ काङ्कणि इति ग-पाठ ६ 'रमिआ' इति क-पाठ ७ 'दुर्विदग्धेन' इति क-पाठ ८ 'पम्माअ' इति क-पाठ ९ 'यथा तस्या' इति घ-पाठ

[अगणिताशेषयुवा वालक व्यतिक्रान्तलोकमर्यादा ।

अथ सा भ्रमति दिशामुखप्रसारिताक्षी तव कृतेन ॥]

अगणिएति । हे वालक, स्त्रीरत्नपरिहारात् स्त्रीवधपातकाचिन्तनाच्च हिताहितान-  
भिन्न, न गणिताः शेषास्त्वदन्ये युवानो यया सा, सज्जाल्यागात्प्रचलोकमर्यादा, सा पू-  
र्वोक्तसौन्दर्याद्यनेकगुणा तव कृतेन त्वदर्शनेच्छया दिक्षुष्वेयु प्रसारिताक्षी सती भ्रमति ।  
यावद्दशमीभवस्था गच्छति तावदेनामनुकम्पस्त्वेति भावः ।

बहुबलमस्य साध्वी काचिन्नायिका श्वभ्रूं प्रति भर्तृशौर्यं प्रकाशयन्ती असतीसपत्नी-  
नामभिसारसज्जता सूचयति—

अज्ज ङ्वेअ पउत्थो उज्जाअरओ जणस्स अज्जे अ । ५८ ।

अज्जे अ हलिहापिअराइँ गोलाणइतडाइँ ॥ ५८ ॥

[अद्यैव प्रोषित उज्जागरको जनस्याद्यैव ।

अद्यैव हरिद्रापिञ्जराणि गोर्दानदीतटानि ॥]

अज्जेति । मम पतिरद्यैव प्रोषितः । अर्थात्सद्भ्रामप्रसङ्गेति लभ्यते । जनस्योज्जाग-  
रोऽद्यैव । चोरादिभयात् अभिसरणाभियोगश्चेति भावः । गोदावरीतीराण्यद्यैव हरिद्रा-  
पिञ्जराणि । हरिद्रोद्धर्तिताङ्गप्रक्षालनेनासतीनामङ्गरागप्रदृणादिति भावः ॥

बन्धुवधू कुलवधूशिक्षार्थं सतीवृत्तमाह—

असरिसचित्ते दिअरे सुद्धमणा पिअअमे विसमसीले ।

ण कहइ कुट्टुम्बविहडणमएण तणुआअए सोहा ॥ ५९ ॥

[असदृशचित्ते देवरे शुद्धमनाः प्रियतमे विषमशीले ।

न कथयति कुट्टुम्बविघटनमयेन तनुकायते सुषा ॥]

असरिसेति । असदृशचित्ते दुष्टचित्ते । प्रकाश्यमानं यद्गोपावहं तद्रोष्यमिति भावः ॥  
कलहान्तरितायाः सखी तत्कान्तेन तद्भावजिज्ञासार्थं पृष्ट्वा तमाह—

चित्तानिअदइअसमागमम्मि कअमण्णुआइँ भरिऊण ।

सुण्णं कलहाअन्ती सहीहिँ रुण्णा ण ओहसिआ ॥ ६० ॥

१. 'अगणिताशेषयुवका' इति ग-घ-पाठः. २. 'गोलाणइअ तद्दाइँ' इति क-पु-  
स्तके, 'गोलाए तद्दाइँ' इति च ख-पुस्तके पाठः. ३. 'उज्जागरणमपि' इति ग-पाठः.  
४. 'गोदावरीनया- क्षेतावि' इति ग-पुस्तके, 'गोदावर्यास्तीराणि' इति घ-पुस्तके,  
'गोदायाः कूलानि' इति च ख-पुस्तके, पाठः; ५. 'शुद्धमनस्का' इति ग-पाठः.  
६. 'चिन्ताणिइअ' इति क-पाठः.

[चित्तानीतदयितसमागमे कृतमन्युकानि स्मृत्वा ।

शून्य कैलहायमाना सखीमी रुदिता नोर्हसिता ॥]

चिन्तेति । कृतो मन्युर्यैस्तानि कृतमन्युकानि । मन्युकारणानीत्यर्थं । सखीमी रु-  
दिता शोचितेत्यर्थं । कार्येण रोदनेन स्वकारणीभूतस्य शोकस्य लक्षणात् 'रुदि' धातोर-  
कर्मकृत्वाद्यथाश्रुतस्यासंगते त्वदनुयानपरायास्तस्यास्तथाविध मन्मथोन्मादमचैत्य  
सखीभिस्ता प्रति शोक कृत , न पुनरुपहासकारणे सत्यप्युपहास इति भाव ॥

प्रच्छन्नरताभिलाषिण नागरिक प्रति कुलजाभिसारिका सवैदग्ध्यमाह—

हिअभण्णएहिं समअ असमत्ताइ पि जह सुहावन्ति ।

कञ्जाइ मणे ण तद्वा इअरेहिं समाविआइ पि ॥ ६१ ॥

[हृदयज्ञै सममसमाप्तान्यपि यथा सुखयन्ति ।

कार्याणि मन्ये न तथा इतरै र्समापितान्यपि ॥]

द्विअण्ति । हृदयज्ञैरिहितज्ञै । इतरैरनिहितज्ञैरगूढाकारैश्च । एतेन त्वद्विधविदग्धेन  
सम संकल्पसमागमोऽपि वरम्, न पुन पामरसमागम इति सूचितम् । यद्वा स्वर्ग-  
पस्य पामरताप्रकाशनेन तद्विषयज्ञो विरागो जायते प्रत्यनुरागश्च सूचित । अथमानुरागो  
प्रति सखीवचन वा ॥

कोमलाम्राङ्गुरप्रदर्शनेन घनागम सूचयती काता कान्तस्य गमनाक्षेपार्थमाह—

दरपुडिअसिप्पिसपुडणिलुकहालाहलग्गछेप्पणिहम् ।

पैकम्बट्टिविणिग्गअकोमलमम्बङ्गुर उअह ॥ ६२ ॥

[ईषत्स्फुटितशुक्तिसपुटर्निलीनहालाहलाम्पुच्छनिमम् ।

पद्माम्रासिबिनिर्गतकोमलाम्राङ्गुर पश्यत ॥]

दरेति । हालाहलो 'बेङ्गनिया' इति प्रसिद्धो जन्तुविशेष । 'हालाहलो मद्गतसर्वे'  
इति मेदिनीशेष । निन्दीनान्त हालाहलविशेषणम् ॥

१ 'कृतमन्यु' संस्मृत्य' इति ग पाठ २ 'कलहाय'ती' इति ग पाठ

३ 'न पुनर्हसिता' इति घ-पाठ ४. 'हिअअभण्णएहिं' इति क-पाठ ५. 'सु-  
हावेति' इति ख-ग-पाठ . ६ 'समाप्तान्यपि' ग घ पाठ ७ 'विङ्गम्बट्टि' इति

क-ख-पाठ ८ 'निदस' इति ग-पाठ ९ 'भोदनीति प्रसिद्धो जन्तु' इति  
कुलबालदेव

धर्मत्वरतरतप्रवृत्तये गृहस्य जनसन्चारशून्यता सूचयितुं जारं वान्यमनस्कं कर्तुं  
काचिदाह—

उअह पडलन्तरोइण्णणिअअतन्तुद्धपाअपडिलग्गाम् ।

दुल्लवखसुत्तगुत्थेक्कवउलकुसुम व मक्कडअम् ॥ ६३ ॥

[पश्यत पटलान्तरावतीर्णनिजकतन्तूर्वपादप्रैतिलमम् ।

दुर्लक्ष्यसूनमथितैक्ककुलकुसुममिव मर्कटकम् ॥]

उअहेति । पटलान्तरावतीर्णं निजकतन्तौ ऊर्ध्वपादैः प्रतिलम मर्कटक लतां प-  
श्यत । 'अथ मर्कटक सस्यभेदे वानरलतयो' इति मेदिनी ॥

पुराणदेवकुलस्य निर्जनतां सूचयन्ती कुलटा जारमाह—

उअरि दरदिट्ठथैण्णुअणिलुक्कपारावआणं विरुण्हिं ।

णित्यणह जाअवेअणं सूलाहिण्ण व देवैलअम् ॥ ६४ ॥

[उपरीपट्टशङ्कुनिनीनपारावतानां विरुते ।

निस्तनति जातवेदन श्लामिन्नमिव देवैकुलम् ॥]

उअरीति । इषदिति कलशस्य भग्नत्वात्किञ्चिद्वशिष्टकीटक देवकुल निनीनानां  
पारावतानां विरुते स्तनति । एतेन रतिसमये पारावतवतानुकारि कण्ठकूजितमयज्ञ-  
सिद्धम्, क्रियमाणमप्यनुपलक्ष्यत्वादविद्वदिति सूचितम् । नायकस्य दीर्घरमणार्थं  
चमत्कारमुत्पादयितुं श्लामिन्नमिवेत्युत्प्रेक्षणम् । तथा च कामशास्त्रम्—'कलोलिनीका-  
ननकदरादौ दुःखाश्रये चार्पितचित्तवृत्ति । गृधुद्गतारम्भमभिनयैर्ये श्योऽपि दीर्घ-  
रमये रतेषु ॥' इति ॥

'निजमर्तुरेवाश्रियासि, तर्किं तव मया दुर्भगया' इति निरसन्ती नायिकां प्रति  
साभिलाष कविदाह—

जइ ह्योसि ण तस्स पिआ अणुदिअह णीसहेहिं अङ्गेहिं ।

णवसूअपीअपेऊसमत्तर्पाडिठ्व किं सुवसि ॥ ६५ ॥

[यदि भवसि न तस्य प्रियानुदिवस नि सहैरङ्गैः ।

नवसूतपीतपीयूषमत्तमहिपीवत्सेन किं स्वपिषि ॥]

१ 'गुच्छेक' इति क-ख पाठ २ 'परिलमम्' इति ग पाठ ३ 'खण्णुअणि  
लीण' इति क पाठ ४ 'दिअउलम्' इति ग पाठ ५ 'उपरि दरदृष्टथाणुकनिनीन'  
इति ग पाठ ६ 'दिवलकम्' इति क-पाठ ७ 'ता दिअह' इति ग-पाठ ८ 'प-  
डिव्व' इति ग पाठ ९ 'प्रिया तदिवस' इति ग पाठ

जईति । यदि तस्य प्रिया न भवति तर्हि निःसहैः सुरतभ्रमस्त्रिभैरजैरुपलक्षिता त्व  
नवप्रसूतायाः पीतेन पीयूषेणाभिनवदुग्धेन मत्ता महिषीवत्सेव किं स्वपिपि । 'पीयूषं  
सप्तदिवसावधिक्षीरे तथा मृते' इति मेदिनीकोषः । 'पीयूषममृते नव्यसूतधेनोः पयस्यपि'  
इति तु हैम । सभ्रमः सुरतजागर एव ते सौभाग्यं व्यनक्षीति भावः । पाठी महिष-  
पोत इति देशी ॥

जनापवादमोता बन्धुवधू प्रोषितपतिकं कुलशामाह—

हेमन्तिआसु अइदीहरासु राईसु तं सि अविणिहा ।

चिरअरपउत्थवइए ण सुन्दरं जं दिआ सुवसि ॥ ६६ ॥

[हेमन्तिकास्त्रैतिदीर्घासु रात्रिषु त्वमस्त्रिनिद्रा ।

चिरतरप्रोषितपतिके न सुन्दरं यदिवा स्वपिपि ॥]

हेमन्तीति । अविनिदेति जागरहेतोः प्रियसंभोगस्याभावाविद्राविच्छेदशून्येत्पर्यः ।  
न सुन्दरम् । असतीशहाहेतुत्वादयुक्तमित्यर्थः ॥

कर्ममयादुःखल सम पदस्थाने तथा पदं ग्यस्तं न त्वनुरागादिति प्रिया निह्वानं  
काचिदाह—

जइ चिकरत्तमउत्थअपअभिणमलसाइ तुह पए दिण्णम् ।

ता सुहअ कण्टइज्जन्तमङ्गमेहिं किणो वहसि ॥ ६७ ॥

[यदि कर्ममथोत्पुतपदमिदमलसया तव पदे दत्तम् ।

तरसुभग कण्टकितमङ्गमिदानीं किमिति वहसि ॥]

जईति । अलसया मन्दगमनया । यदीयं तव प्रिया न भवति तदा कथमनया तव  
पदस्थाने स्पृष्टे रोमाश्चस्ते जात इति भावः ॥

अलन्तमनुरक्तस्यापि दानविमुखस्य भुजगस्योपालम्भार्थं दुहितृशिक्षार्थं च वे-  
श्यामाताह—

पत्तो छिणो ण सोहइ अइप्पहाअम्मि पुण्णिमाअन्दो ।

अन्त विरसो अ कामो असंपआणो अ परिओसो ॥ ६८ ॥

[प्राप्तः क्षणो न शोभते अतिप्रभात इव पूर्णिमाचन्द्रः ।

अन्तविरस इव कामो असंप्रदानश्च परितोषः ॥]

१. 'अइदीहरासु' इति क-पाठः. २. 'हेमनीषु' इति ग पाठः. ३. 'अतिदीर्घ-  
तरायु' इति क ख-पाठः. ४. 'त्वमसि विनिद्रा' इति ग-पाठः. ५. 'भयद्रुत' इति  
घ-पाठः. ६. 'कण्टकायमानं' इति घ-पाठः. ७. 'किं वहसि' इति घ पाठः.  
८. 'खणो' इति ख-पाठः. ९. 'प्राप्त उत्सवो' इति ग पाठः. १०. 'प्रभाते पूर्णिमा'  
इति ग पाठः. ११. 'अन्तविरसश्च' इति ग-पाठः.

पत्तो इति । प्राप्तोऽतिक्रान्त क्षण उत्सवो न शोभते । अत्र दृष्टात् — अतिप्रभाते पूर्णिमाचन्द्र इव । सप्रदानरहितश्च परितोषो न शोभते । अत्र दृष्टात् — अन्तविरस काम इव । एव च 'अङ्गपहाअव्व पुण्णिमाअदो । अतविरसोअव्व कामो इत्येव युक्त पाठ ॥

विज्ञा उपक्रम एव भद्र विरुद्ध च जानतीति दर्शयन्विदाह—

पाणिग्रहणे विवअ पव्वइँँँ णाअ सहीहिँँँ सोहग्गम् ।

पसुवइणा वासुइकङ्कणम्मि ओसारिए दूरम् ॥ ६९ ॥

[पाणिग्रहण एव पार्वत्या ज्ञात सखीभि सौभाग्यम् ।

पशुपतिना वासुकिकङ्कणेऽपसारिते दूरम् ॥]

पाणीति । पार्वत्या भयपरिहारार्थं वासुकेरपसारणं दृष्ट्वा तस्यामनुरागातिशयरूपं सौभाग्यं जातमिति भावः ॥

नवमेघोदयदर्शनाद्ग्रीष्मात्तस्यावधेर्लङ्घनं भावा दधितस्यान्ववतिताप्रसक्तिं सभाव्योद्दिष्टाया प्रोषितपतिभ्यां समाश्वासनार्थं सखी आह—

गिन्हे दवग्गिमसिमइलिआई दीसन्ति विज्झसिहराइ ।

आसमु पउत्थवइए ण ह्योन्ति णवपाउसव्वाइ ॥ ७० ॥

[ग्रीष्मे दवाग्निमघीमलितानि दृश्यन्ते विज्यशिखराणि ।

आश्वसिहि प्रोषितपतिके न भयति नवप्रावृड्भ्राणि ॥]

कापि प्रथमस्रग्मेऽनुरागातिशयं दर्शयन्त बहुवचनं कात्तमादिमध्यावसानेष्वेकैरुपप्रणयानुत्तर्यमाह—

जेत्तिअमेत्त तीरई णिवोहुँँँ देसु तेत्तिअ पणअम् ।

ण अणो विणिअत्तपसाअदुँँँँँसहणकरमो सव्वो ॥ ७१ ॥

[यावन्मानं शक्यते निर्वाहुं देहि तैरितं प्रणयम् ।

न जनो विनिवृत्तप्रसाददुःखसहनक्षयं सर्वं ॥]

जेत्तिएति । विनिवृत्तो अ प्रसादं प्रणयस्त्रयं जातं यदु यत्तत्सहनक्षयं इत्यर्थः । एतन्नानुभूतप्रणयस्त्रयं त्वदनुरक्ताह त्वया प्रणयस्त्रयं कृते न जीवामीति सूचितम् ॥

१ 'णण' इति ख पाठ २ 'दु र' इति ग पाठ ३ 'निर्वाहयितुं ददस्व' इति ग पाठ ४ 'तावन्मानं' इति घ पाठ

‘प्रिये, त्रिवेणमद्यादि प्रणयवैमुह्यं तव’ इति प्रियेणोक्ता मानिनी तस्याः स्थिरभ्रेश-  
तामात्मनश्चानुरागमाविष्कुर्वन्ती तमाह—

यहुवल्लहस्स जा होइ बल्लहा कद्ध वि पञ्चदिअहाइ ।

सा किं छट्ठं मग्गइ कत्तो मिट्ठं अ वैहुअं अ ॥ ७२ ॥

[यहुवल्लहस्स या भवति बल्लहा कथमपि पञ्च दिवसानि ।

सा किं पष्ठं मृगयते कुतो मेट्ठं च बहुकं च ॥]

यहु इति । बल्लहो यज्जभा यस्य स बहुवल्लहस्सस्य या बल्लहा भवति सा कथंचित्पञ्च-  
दिवसानि मृगयते । सा विदितकान्ताभिप्राया पष्ठं दिवसं किं मृगयते । नैव मृगयत  
इत्यर्थः । कुतो न मृगयत इत्याशङ्क्याह—कुतो मृष्टं च बहुकं चेति । सुदृतातिशयल-  
भ्यमेतत् कुतो मे मन्दभाग्याया इत्याशयः । ‘वा तु ऋषिर्दिवसवासरो’ इत्यमरः । यद्वा  
अभिनतप्रियस्य सदा संभोगालाभारिख्यमाना नायिका बोधयन्त्याः सख्या इयमु-  
क्तिरिति ध्येयम् ॥

कापि पलावन्ययोपावकाशनिरासार्थं स्वसौभाग्यमात्मनश्च पलावनुरागमाह—

जं जं सो णिज्जाअइ अइओआसं महं अणिमिसच्छो ।

पच्छाएमि अ तं तं इच्छामि अ तेण दीसन्तम् ॥ ७३ ॥

[यद्यत्स निर्व्यायत्यद्वावनाशं ममानिमिषाक्षः ।

प्रच्छादयामि च तं तमिच्छामि च तेन दृश्यमानम् ॥]

ज जमिति । निर्व्यायति पश्यति ॥

बल्लहान्तरितायाः सखी तत्कान्तमनुनयाय प्रोत्साहयितुमाह—

दिढमण्णुदूमिआएँ वि गहिओ दइअम्मि पेच्छह इमाए ।

ओसरइ बालुआमुट्ठि उँव्व माणो सुरसुरन्तो ॥ ७४ ॥

[दृढमण्युद्धनयोपि गृहीतो दयिते पश्यतानया ।

अपसरति बालुकामुष्टिरिव मानः सुरसुरयमाणः ॥]

दिदेति । दृढमण्युद्धनयाप्यनया दयितया दयिते गृहीतो मानः सुरसुरयमाणो बालु-  
कामुष्टिरिवापसरतीत्यन्वयः ॥

१. ‘मग्गइ छट्ठ’ इति ग-पाठः २. ‘बहुल’ इति ख-पाठः. ३. ‘मार्गयति’ इति  
ग-पाठः. ४. ‘मिष्ट’ इति क ख-पाठः. ५. ‘अजं आसम्मि मह’ इति ग-पाठ. ६. ‘अह  
पार्थे मम’ इति ग पाठः. ७. ‘दुम्मिआए’ इति ग-पुस्तके, ‘दूणआइ’ इति च ख-पु-  
स्तके पाठः. ८. ‘इँव्व’ इति ग पुस्तके, ‘ओँव्व’ इति च ख पुस्तके पाठः. ९. ‘दुमैत-  
रक्या’ इति ग-पाठः. १०. ‘प्रेक्षस्’ इति ग-पुस्तके, ‘प्रेक्षम्’ इति च घ-पुस्तके पाठः.



सुरतासक्का काचिचिरमणार्थं कान्तमन्यमनस्कं कर्तुमाह—

उअ पोम्मराअमरगअसंवलिआ ण्हअल्लोओ ओअरइ ।

ण्हंसिरिकण्ठम्मट्ट व्व कण्ठिआ कीररिञ्छोली ॥ ७५ ॥

[पश्य पद्मरागमरकतसजलिता नभस्तलादवतरति ।

• नमःश्रीकण्ठम्रष्टेव कण्ठिका कीरपङ्क्तिः ॥]

एति । कीरपङ्क्तिर्नभस्तलादवतरतीति सवन्धः । नमः प्रियः कण्ठाद्गता कण्ठिके-  
वेत्युत्प्रेक्षा । कण्ठिका 'कण्ठा' इति ख्याता आभरणविशेषः । पद्मरागैर्मरकतैश्च सवलिते-  
तेति कण्ठिकाविशेषणम् । शुक्राना हरितवर्णत्वान्मरकतसाम्बन्धम्, तत्तुण्डानां च लोहित-  
त्वात्पद्मरागसाम्यं द्रष्टव्यम् ॥

काचि विदितदुश्चरितेन पत्या दुर्गस्थानाभिहृद्वा आरप्रहिता दूतीमन्यापदेशेनाह—

ण वि तह विएसवासो दौर्गच्चं मह जणेइ संतावम् ।

आसंसिअत्यविमणो जह पणइजणो णिअत्तन्तो ॥ ७६ ॥

[नापि तथा विदेशवासो दौर्गल्यं मम जनयति संतापम् ।

आशंसितार्थविमनो यथा प्रणयिजनो निवर्तमानः ॥]

णवीति । विदेशे कुप्रामे बन्धनस्थाने च वासोऽवस्थानम्, दौर्गल्यं दारिद्र्यं गतिनिरो-  
धश्च मम तथा संतापनं जनयति यथा आशंसिते आशयेत्युक्ते अर्थे धने प्रियसङ्गमे च  
विमना निष्प्रत्याशा सन्निवर्तमानः प्रणयिजनः सप्रथयो बन्धुजनः कान्तप्रहितदूतीजनश्च ।  
इदानीं नाभिसर्तुं समयस्तेन निवर्तस्वेति जार प्रत्युक्तिर्वा ॥

पथिकच्छलेनालिन्दकोपितस्य चारस्य रताभिलाषं सूचयन्ती दूती कुलटामाह—

खन्धग्गिणा वणेसुं तणोहिं गामम्मि रक्किरओ पहिओ ।

णअरवसिओ णँडिज्जइ साणुसएण व्व सीएण ॥ ७७ ॥

[स्कन्धामिना वनेषु तृणैर्ग्रामे रक्षितः पथिकः ।

नगरोपितः खेर्षते सानुशयेनेव शीतेन ॥]

खन्धेति । स्कन्धामिना वृहत्काष्ठाग्निना । 'स्कन्धामिः स्थूलकाष्ठाग्निः' इति हारावली ।  
खेयते इत्यर्थे णडिज्जइ इति देशो । अस्या शिशिरनिशावामनन्यगतिकस्यास्य पथिव्वरा-  
कस्य स्वमेव शरणमिति भावः । यद्वा नगरे तृणकाष्ठादेर्दुर्लभत्वात्नगरिकाणां च निर्द-

१. 'णहअलाहि' इति घ-पुस्तके, 'णहअलाउ' इति च ग-पुस्तके पाठः. २. 'ओस-  
रइ' इति क-पाठः. ३. 'विदेस' इति क-पाठः. ४. 'दोगच्च व्व' इति ग-पाठः. ५. 'वि-  
सुहो' इति क-ख-पाठः. ६. 'दौर्गल्यं वा' इति ग-पाठः. ७. 'णणिज्जइ' इति ग-पाठः.  
८. 'न नीयते' इति ग-पुस्तके, 'न खेयते' इति च घ-पुस्तके पाठः.

यत्वाच्छीतभीतस्य तव मत्सनिधौ स्वाप एव शरणमिति स्वयदृशा पथिकं प्रति स्वाश-  
याविष्करणमेतत् ॥

नागरिक कामिन्यन्तरप्रलोभनार्थमात्मनो विदग्धकामुकता दृढोदता च प्रकाश-  
यन्माह—

भरिमो से गहिआहरधुअसीसर्पहोलिरालआउलिअम् ।

वअण परिमलतरलिअभमरालिपइण्णकमल व ॥ ७८ ॥

[सरामस्तैस्या गृहीताधरधुतशीर्षेप्रधूर्णनशीलालकाकुलितम् ।

वदन परिमलतरलितअमरालिप्रकीर्णकमलमिव ॥]

भरिमो इति । दशनक्षतार्थं गृहीतेऽधरे ध्रुते शीर्षे प्रधूर्णनशीलैरलकैराकुलित परिमलेन  
तरलिता इतस्ततो भ्रमती था भ्रमरणामालि पङ्क्तिव्याप्य प्रकीर्णं व्याप्त कमलमिव स्थित  
तस्या वदन सराम इति स्वयं ॥

सहचरप्रलोभनार्थं विट कस्याचित्सौभाग्यगर्वतुचक विब्वोकमाह—

हइफलहाणपसाहिआणं छणवासरे सवत्तीणम् ।

अज्जायं मज्जणाणाअरेण कहिअ व सोहग्गम् ॥ ७९ ॥

[उत्साहतरलत्नस्नानप्रसाधिताना क्षणवासरे सपत्नीनाम् ।

आर्यया मज्जनानादरेण कथितमिव सौभाग्यम् ॥]

इति । हइफलमुत्साहतरलत्वम् । तेन स्नानप्रसाधिताना क्षणवासरे उत्सवदिवसे  
सपत्नीना मध्ये आर्यया श्रेष्ठयुवला मज्जनानादरेण स्नानावश्या सौभाग्य कथितमिव ।  
विब्वोकाख्येनालकारेण सौभाग्यप्रकटनादिति भाव । तलक्षणं च साहित्यदर्पणे—  
'विब्वोकरवतिसर्वण वस्तुनीडेऽप्यनादर' इति । हइफलशब्द कदुष्णजलवाचक इति  
केचित् । पागन्तरे तु मार्जनं प्रसाधनं तत्रानादरेणावश्येति व्याख्येयम् ॥

काचिद्विरादिना स्नानीयद्रव्येण कृतस्नाना केशमार्जनेन प्रकटितकुचबाहुमूर्धं कम-  
नीयदर्शनामुद्दिश्य कथितस्तद्विदमाह—

हाणहलिइअभरिअन्तराईं जालाईं जालवलअस्स ।

सोहन्ति किलिच्चिअकण्टएण क काहिसी वअत्यम् ॥ ८० ॥

१ 'पहुष्णआलआ' इति क पाठ २ 'अस्या' इति ग पाठ ३ 'धूत' इति घ.  
पाठ ४ 'प्रधूर्णमान' इति ग पाठ ५ 'अज्जाइ' इति क ख पाठ ६ 'विब्विदुष्णमु-  
ग्धिचिकणजलस्नान' इति ग पुस्तके, 'हारिद्वजलस्नान' इति च घ पुस्तके पाठ ७  
'उत्सववासरे' इति ग पाठ ८ 'इश्वरमुतया' इति ग पाठ 'हइफलशब्द कोष्णयिक-  
णमुग्धिजले, अज्जाशब्ददेशी इश्वरमुतायां वर्तते' इति कुलबालदेवव्याख्यानम् ९  
'मज्जनानादरेण मार्जनानादरेण वा' इति ख पाठ १०. 'किलिच्चिअ' इति क पाठ—

[उदरपतिताभ्या दुःखं स्वीयत उन्नताभ्या भूत्वा ।

इति चित्तयतोर्मन्ये स्तनयो कृष्ण मुख जातम् ॥]

षोडशति । लाकेऽपि यं प्रथमं प्रणयमद्दुमानादिना उन्नतो भूत्वा दैवशाहुर्गतं सनु  
दरभरणव्यग्रो भवति तस्यापि चित्तया मुखं दयानं भवतीति ध्वनिः ॥

अभिधोऽन्नामभियोगं प्राहयितुं दूती नायकस्यानुसारातिशयमाह—

सो ह्युज्ज्वल कण मुन्दरि तद्दृष्ट्वा स्त्रीणो मुमहिलो हृत्विभउत्तो ।

जह से मच्छरिणीएँ वि दोष जाआएँ पदिवण्णम् ॥ ८४ ॥

[स तत्र कृते मुन्दरि तथा स्त्रीणं मुमहिलो हृत्विभउत्तम् ।

यथा तस्य मत्सरिण्यापि दूत्यं जायया प्रतिपन्नम् ॥]

सो इति । मुमहिल इत्यनेन रूपवद्भार्योऽपि त्वप्यनुरक्त इति नायिकाकृतित्वेन्यते ।  
हृत्विभउत्त इत्यनेनानेन धनिकत्वं च प्रवृत्त्यङ्गं दशयति । मत्सरिण्यापि दूत्यं प्रतिपन्न  
पतिमरणभयादिति भावः । तद्यदि नानुमन्यसे तदा पुण्यवधपातकं ते भविष्यती  
त्याशयः ॥

कलहात्तरिता विसर्गते कांते सखहोपालम्भमाह—

दक्षिण्णोण वि एत्तो सुहज सुहावेसि अम्ह हिअआइ ।

णिकइअवेण जाण गओ सि का णिब्बुदी ताणम् ॥ ८५ ॥

[दाक्षिण्येनाप्यागच्छ सुमगं मुखयस्समाकं हृदयानि ।

निष्कैतवेन यासा गतोऽसि का निर्धृतिस्तासाम् ॥]

दक्षिण्णोणेति । यासा समीपमिति शेषः ॥

पतिं प्रत्यन्वयोपायकाग्निरासार्यं साधोऽनभन्तुः ताडितस्यापि प्रियस्योपचाराति  
शयं प्रथयन्ती स्वर्गीभाग्यमाह—

एकं पहरुत्विण्णं हत्थं मुहमारुएणं धीअन्तो ।

सो वि हसन्तीएँ मए गद्धिओ धीएणं कण्ठम्मि ॥ ८६ ॥

[एकं प्रहारोद्धिभं हस्तं मुखमारुतेन धीजयन् ।

सोऽपि हसन्त्या मया गृहीतो द्वितीयेन कण्ठे ॥]

एकमिति । प्रहारेणोद्धिभमेकं मदीयं हस्तं मुखमारुतेन धीजयन्त्या मयापि द्वितीयेन  
हस्तन कण्ठे गृहीत इति संबन्धः ॥

१ 'आस्यते उन्नतेभूत्वा' इति घ-पाठः २ 'तुद्द कण्ण' इति न-पाठः ३ 'स्त्रीणो'  
इति क-पुस्तके, 'क्षिण्णो' इति च ख-पुस्तके पाठः ४ 'तत्र कृतेन' इति ग-पाठः  
५ 'प्रहारयात' इति घ-पाठः

केलिकलहनिष्कान्तां कान्तानुगम्यमाना नायिकां निवर्तयितुं तत्सखी आह—

अवलम्बितमाणपरम्मुद्गीर्णं एन्तस्स माणिणि पिअस्स ।

पुट्टपुलउग्गमो तुह कहेइ संमुहट्ठिअं हिअअम् ॥ ८७ ॥

[अवलम्बितमानपराङ्मुख्या आगच्छतो मानिनि प्रियस ।

• पृष्ठपुलकोद्गमस्तथ कथयति संमुखस्थितं हृदयम् ॥]

अथेति । अवलम्बितेन मानेन पराङ्मुखा. न तु पारमार्थिकेनेति भावः । तत्र पृ-  
ष्ठपुलकोद्गमः समुत्थितं हृदयमागच्छते प्रियाथ कथयतीति सन्धः । तदलीकरोपमिं  
रञ्जिताशयः ॥

दीर्घोद्भटरोपा मानिनीं शिक्षयितुं सखी मानिन्यन्तरलुतिमाह—

जाणइ जाणावेउं अणुणअविह्विअमाणपरिसेसम् ।

अँइरिक्कम्मि वि विणआवलम्भणं सच्चिअ कुणन्ती ॥ ८८ ॥

[जानाति ज्ञापयितुमनुनयविद्रावितमानपरिशेषम् ।

विर्जनेऽपि विनयावलम्बनं सैर्धं कुर्वती ॥]

जाणइति । विजनेऽपि एकान्तेऽपि रतिसमये इति यावत् । विनयावलम्बनं कटा-  
धभुजप्रक्षेपायकरणात् धार्ष्ट्यपरिहारं कुर्वती सैव अनुनयेन विद्रावितस्य दूरीकृतस्य  
मानस्य परिशेषमवशेषं ज्ञापयितुं जानाति । नान्वेत्यर्थः । मानिनी मानावस्थायामपि  
प्रियमेवानुवर्तते न तु स्वमिव पारभवतीति भावः ॥

एकस्यामेवानुरक्तं बहुबलमं नायकमुद्दिय कापि कृष्णव्याजेनाह—

मुहमारुएण तं कह्व गोरअं राहिआएँ अवणेन्तो ।

एताणँ बह्ववीणं अण्णाणँ वि गोरअं हरसि ॥ ८९ ॥

[मुखमारुतेन त्वं कृष्ण गोरजो राधिकाया अपनयन् ।

एतासां बह्ववीनामन्यासामपि गौरवं हरसि ॥]

मुहेति । हे कृष्ण, त्वं मुखमारुतेन राधिकाया गोरजश्वरजोऽपनयन् । चक्षु-प्र-  
विष्टरजोऽपनयनच्छलेन चुम्बन्मित्यर्थः । एतासां पुरोवर्तिनीनामन्यासामपि बह्ववीना

१. 'पुट्टि' इति ख-पाठः. २. 'उग्गमो' इति क-पाठः. ३. 'समुहट्ठिअं' इति  
क-पुस्तके, 'समुहट्ठिअं' इति च ख-पुस्तके पाठः. ४. 'विह्विह्वि' इति क-पाठः.  
५. 'धीरेकामे वि' इति ख-पुस्तके, 'पइ रिक्कम्बिअ' इति च ग-पुस्तके पाठः. ६. 'अ-  
तिरिक्कमेय' इति ग-पाठः. 'पइरिक्कशब्दोऽतिरिक्के । पइरिक्केति विजने देशइति केचित् ।  
तदा पइरिक्कम्मि वि इति पाठः । विजनेऽपीत्यर्थः । इति कुलवालेदेव.. ७. 'सत्स' इति  
घ-पाठः. ८. 'एआणं' इति ख-ग-पाठः. ९. 'राधाया' इति ग-पाठः.

गौरव हरति । सौभाग्यगर्वेभ्यण्डनादिति भावः । यद्वा गौरवं गौरतां हरति । अपमानेन कृष्णीकरणादिति भावः ॥

खण्डिता बहुशः कृतापराधं क्षमस्वेति वदन्तं कान्तमाह—

किं दाव कआ अहवा करेसि कैरिसि सुहअ एत्ताहे ।

अवराहाणँ अलज्जिर साहसु कअए रमिज्जन्तु ॥ ९० ॥

[किं तावत्कृता अथवा करोषि कैरिष्यसि सुभगेदानीम् ।

अपराधानोमलज्जारील कथय कतरे क्षम्यन्ताम् ॥]

द्विमिति । ये पूर्वं कृता यानिदानीं करोषि करिष्यसि वा एतेषां भूतवर्तमानभविष्यतां मध्ये कतरे अपराधाः क्षम्यन्ताम् । न केऽपि क्षन्तु क्षम्यन्त इति निषेधमुखेन के वा न सोडास्ववापराधा इति ध्वनितम् ॥

दूती दुर्विदग्धं नायकं शिक्षयितुमाह—

पूमेन्ति जे पहुत्तं कुविअं दासा व्व जे पसाअन्ति ।

ते व्विअ महिलानँ पिआ सेसा सामि व्विअ अराजा ॥ ९१ ॥

[गोषायन्ति ये प्रमुत्तं कुपितां दासा इव ये प्रसादयन्ति ।

त एव महिलानां प्रियाः शेषाः स्वामिनं एव वराकाः ॥]

पूमेन्तीति । ये स्वकीयं प्रमुखं कान्तानिपये गोषायन्ति न प्रकटयन्ति । दण्डादिकं न प्रवृजत इत्यर्थः । ये च कुपितां नायिकामनुनयपूर्वकं प्रसादयन्ति त एव महिलानां प्रिया वल्लभाः । शेषाः ततोऽन्ये दण्डप्रयोच्छारोऽनुनयपरास्तुत्याश्च महिलानां स्वामिन एव । न तु वल्लभा इत्यर्थः । वराकाः प्रेमवत्प्रजाप्राप्त्या शोच्या इत्यर्थः ॥

पूर्वमादरेण प्रवृत्त पश्चाद्भेदशायासु दागीन नायकमुपालब्धुं दूती भ्रमरापदेशेनाह—

तइजा कअग्घ महुअर ण रमसि अण्णासु पुँप्फजाईसु ।

यदफलमारगुहँ मालहँ एहिँ परियअसि ॥ ९२ ॥

[तेऽं कृतापं मधुकर न रमसेऽन्यासु पुष्पजातिषु ।

यदफलमारगुणी मालनीभिदानीं परित्यजति ॥]

१. 'कारिसि' इति क-ग-पाठः. २. 'करेयु' इति ग-पाठः. ३. 'करिष्यसि वा सुभगे एतापराधे' इति ग-पाठः. ४. 'नितंम' इति ग-पुन्यके, 'मलज्जारीणां च कतरे' इति च घ-पुन्यके पाठः. ५. 'न कुर्वन्ति' इति ग-पाठः. ६. 'वसुरथं' इति ख-पाठः. ७. 'दागप्य' इति ख-ग-पाठः. ८. 'न कुर्वन्ति' इति ग घ-पाठः. ९. 'दागपय' इति ग-पाठः. १०. 'पुष्पजादु' इति ग-पाठः. ११. 'तदा कृतम' इति ग-पुन्यके, 'तया कृतापं' इति च घ-पुन्यके पाठः.

तद्वा इति । कृतोऽर्घः पूजाविधियेन । कृतादरेति यावत् । 'मूत्ये पूजाविधावर्घे' इत्यमरः । 'किंभघ' इति पाठे कृतत्रैल्यर्थे । वक्षेन फलभारेण श्रुताभिलेनेन लताया मकरन्दराहिलं नायिकायाश्च विपरीतरताक्षमस्य व्यज्यते । तेन प्रथम तथा चाटुसत-प्रपद्यितप्रणयस्य तवेद स्वार्थपरतामात्रमनुचितमित्युपालम्भो व्यक्तः । संप्रति नोपभोग्योग्मेति जारं प्रति दूत्या उक्त्तिरिति कथित् ॥

नागरिकानुरोधेन प्रतिपन्नदूतीभावया मातुलान्या कथितसौन्दर्ये तं प्रत्यनुरक्षा नायिका तामाह—

अविभ्रष्टपेर्व्यखण्डिजेण तत्करणं मामि तेण दिदृष्टेण ।

सिविणअपीएण व पाणिएण तह्व विवअ ण फिट्ठा ॥ ९३ ॥

[अवितृष्णप्रेक्षणीयेन तत्क्षणं मातुलानि तेन दृष्टेन ।

स्वप्रपीतेनेव पानीयेन तृष्णैव नै भ्रष्टा ॥]

अवीति । अथ वा तत्रैव स्थितं जारं प्रत्यन्यापदेशेन त्वदर्शनाभिलाषो मम न गत इति व्यज्यते ॥

सकेतस्थानान्तरानुसरणाय जारं प्रति प्रथमसकेतभङ्गं धावयन्ती कुलटा मुजनप्रशं-साछलेनाह—

सुंअणो जं देसमलंकरेइ सं विअ करेइ पवसन्तो ।

गामासण्णुम्मूलिअमहावड्ढाणसारिच्छम् ॥ ९४ ॥

[सुजनो य देशमलं करोति तमेव करोति भवसन् ।

ग्रामासन्नोन्मूलितमहानटस्थानसंदक्षम् ॥]

सुअणो इति । सुजनो यं देशं निवासेनालं करोति तमेव देशं प्रवसन्तान् ग्रामासन्न उन्मूलितो यो महावटस्तत्स्थानसदृशं करोतीत्यर्थः । यथा प्रोषितसुजनो देशो रक्षोवृत्ति-विधायाद्यभावाद्द्विदग्धान्दु खयति तथा उन्मूलितवटस्थानमपि दु खयतीत्यर्थः ॥

स्वर्तव्योऽहमिति गगनसमये वदन्त भविष्यत्पथिक प्रति आह—

सो णाम संभरिज्जइ पच्चसिओ जो र्खणं पि हिअआहि ।

संभरिअठवं च कअं गअं च पेम्मं गिरालम्बम् ॥ ९५ ॥

[स नाम संखर्यते प्रप्रथो यः क्षणमपि हृदयात् ।

संखर्यं च कृतं गतं च प्रेम निरालम्बम् ॥]

१. 'पेछणिज्वेण' इति ख ग-पाठः. २. 'भगिनि' इति ग-पुस्तके, 'अटुलितेन' इति च घ पुस्तके पाठः. ३. 'नापगता' इति ग घ-पाठः. ४. 'सुजनो' इति क-पाठः. ५. 'सदृशम्' इति ग घ पाठः. ६. 'खणम्मि हिअआहि' इति ग-पाठः. ७. 'स्वर्णीयं च' इति ग-पुस्तके, 'संख्यं च कृतं' इति च घ पुस्तके पाठः.

तो इति । प्रेम यैव स्तौत्र्यमर्थात्प्रियस्मरणाई वृत्त तदैव निरालम्ब सद्गतम् । निराश्रयत्वानश्रमिति भाव ॥

दूती मन्दब्रेह विरलदर्शन नायक नायिकानुरागवचनेनानुकूलयितुमाह—

पास व सा कचोले अज्व चि तुह दन्तमण्डल बाला ।

उन्मिष्णपुलकवद्वेदपरिगर्भं रक्वइ वराई ॥ ९६ ॥

[न्यासमिदं सा कपोलेऽद्यापि तय दन्तमण्डल बाला ।

उन्मिष्णपुलकवृत्तिवेदपरिगत रक्षति वराकी ॥]

णसमिति । बाधा प्रथम त्वकृतशीलसण्डना सा वराकी उन्मिष्णपुलकवृत्तिमण्ड-  
लेन परिगत सर्वतो धेष्टित तव दन्तमण्डल मण्डलाकार दन्तक्षत न्यासनिक्षेपामवा-  
द्यापि रक्षति । शटे त्वयि तस्यास्त्रादशोऽनुरागो न युक्त इति वराकीपदेन ध्वन्यते ।  
तदेवमनुरक्षामनुकम्पाहामनुवतसेति भाव ॥

कार्यगौरवग्रहितावधिले बह्मभक्तसमाप्त्यनन्तरमेवागमिष्यतीत्याश्वारायन्तीं मातु-  
स्त्वानीं प्रोषितभर्तृका सनिर्वेद सामूय चाह—

दिट्ठा चैआ अग्घाइआ सुरा दक्षिणाणिलो सहिओ ।

कज्जाइँ ठिवअ गरुआइँ यामि फो बह्हो कस्स ॥ ९७ ॥

[दृष्टाश्रैता आघ्राता सुरा दक्षिणाणिल सोढ ।

कार्याण्येन गुरुकाणि मातुलानि को बह्म कस्स ॥]

दिट्ठेति । मन्मथोन्मादहेतव आघ्रातुरा दृष्टा । वसन्ते घ्रातेन सह पानकेडिशी-  
लनार्य परिष्कृताया सुराया गन्धोऽनुभूत । मलयानिल सोढ । अत कार्याण्येव  
गुरुकाणि । दु रैकभागिन्या मम जीवितस्य एतान्येव महान्ति प्रयोजनानि । एतदनु-  
भवाधनेव हतजीवित न त्यजामि । तथा च क कस्य वग्भ । येनाद्यापि तद्विरहे  
जीवामीत्यात्मानं प्रति निर्वेदो व्यज्यते । यद्वा कार्याण्येव गुरुकाणीति युवत्यन्तरसमा-  
गम सूचयत्या स्वयदूया उक्तिरिति कथित् । कार्याण्येव तस्य बहुमतानि कथमन्यथा  
वसन्तेऽपि नागत इति भाव । किं च बाह्यमपि कार्यनिबन्धनं न तु सभावगिद्धमि-  
त्यभिप्रेत्याह—को बह्म कस्येति । तथैव सनिहितया तस्य प्रयोजनं न तु व्यवहितया  
मयेति बह्म प्रत्यसूया व्यच्यते । नायकान्तरविमोहनाय स्वनायके वराग्य सूचयत्या  
स्वमहत्त्वा उक्तिरिति कथित् ॥

१ 'वेदन' इति क-ख पाठः. २ 'सूआ' इति ग-पाठ ३ 'नूता' इति

घ पाठः. ४ 'मणिनि' इति ग-सुम्भके, 'मातुडि' इति च घ-सुम्भके पठ

सदा सनिहितपतिके न त्वमभिज्ञासि प्रवासगतप्रियप्रेमनिर्भरमुरतविलसितानामिति  
सहयोक्ता स्वाधीनभर्तृका तामाह—

रमिऊण पअं पि गओ जाहे उँवऊह्णिउं पडिणिउत्तो ।

अह अं पैउत्थपइआ व्व तक्कणं सो पवासि व्व ॥ ९८ ॥

• [रन्त्या पदमपि गतो यदोर्षेगूहितु प्रीतिनिवृत्त ।

अह प्रोषितपतिकेन तत्क्षणं स प्रयासीव ॥]

रमिऊणेति । मान वत्स्वेति बोधयन्तीं सरसीं प्रति स्वस्य मानासामर्थ्यं प्रकाशयन्त्या  
नायिकाया उक्तिरिति कथित ॥

वस्मिन्नपि यूनि जातामिलापा कुलटा निचपतिं प्रति वैराग्य व्यञ्जयन्ती तमाह—

अँविइहूपेच्छणिज्जं समसुहदुःखं विइण्णसवभावम् ।

अण्णोष्णहिअअलमं पुण्णेहिँ जणो जण लहइ ॥ ९९ ॥

[अवितृष्णप्रेक्षणीय समसुखदुःख वितीर्णसद्भावम् ।

अन्योन्यहृदयलग्न पुण्यैर्जनो जन लभते ॥]

अवीति । मम त्वकृतपुण्याया कुत एवविधप्रियप्राप्तिरिलाशय । मन्दभेदस्य पत्यु-  
श्चित्तमनुकूलयितु पतिव्रताया इयमुक्तिरिति कथित ॥

कथ दुःखप्रदेऽपि पत्यौ न विरकासीति भेदयतीं दूतीं प्रत्यात्प्राप्तु पतिव्रता पत्वा-  
ननुरागातिशयमाह—

दु ख देन्तो वि मुह जणेइ जो जस्स वइहो होइ ।

दइअणहर्दूणिआण वि वहुइ थेणाणँ रोमच्चो ॥ १०० ॥

[दुःख दददपि सुख जनयति यो यस्य बलमो भवति ।

दयितनखर्दूनयोरपि वर्धते स्तनयो रोमाश्च ॥]

१ 'अवउह्णिउ पडिणिउत्तो' इति ग पाठ २ 'पडल्लवइअव्व' इति ग पाठ .  
३ 'रमित्वा' इति ग पुस्तके, 'रमयित्वा' इति च घ पुस्तके पाठ ४ 'अवगूहितु' इति  
ग घ पाठ ५. 'प्रीतिनिवर्तमान' इति ग पाठ ६ 'अथाह' इति ग पाठ ७ कुल  
बालदेवस्त्वस्या गाथाया प्राक् 'धण्या वधिरा अन्धा से भिअ नीअत्ति माणुसे सोए ।  
ण मुणन्ति विमुणवअण राळण ऋद्धि ण पेक्कन्ति ॥' [धण्या वधिरा अन्धास्त एव  
जीवन्ति मानुषे लोके । न भृश्वन्ति पिशुनवचन खलानामृद्धि न प्रेक्षन्ते ॥] इत्येका  
गायामधिका पठति । घ पुस्तकेऽप्यस्या गाथाया 'धण्या वधिरा—' इत्यादिच्छया  
वर्तते ८ 'दुम्मिआण' इति ग पाठ ९ 'थणआण' इति ग पाठ १० 'दुम्मनस्क-  
योरपि' इति ग पाठ . घ पुस्तके 'दुःख दददपि—' इत्यादिगाथाछाया द्वितीयशतकप्रा-  
रम्भे लिखितास्ति



रसिअजणहिअदइए वइवच्छल्पमुहसुकइणिम्मविए ।  
सत्तसअम्मि समत्त पढम गाहासअ एअ ॥ १०१ ॥

[रसिकचनहृदयदयिते कविवत्सलप्रमुखसुकविनिर्मिते ।  
सप्तशतके समाप्त प्रथम गाथाशतकमेतत् ॥]

द्वितीय शतकम् ।

मानमवलम्ब्य पयुरनुनयसुख तावदनुभवेति स्वसखीं शिक्षयेति वदतीं कामयि  
सखी सपरिहासमाह—

धेरिओ धरिओ प्रिअलइ उअएसो पिहसहीहिं दिजन्तो ।

मअरद्धवाणपहारजैजरे तीएँ हिअअम्मि ॥ १ ॥

[धृतो धृतो विगलस्युपदेश प्रियसखीभिर्दीयमान ।

मकरध्वजवाणप्रहारजैजरे तस्या हृदये ॥]

धृतो धृत पुन पुनधृत । विगलति नावतिष्ठते ॥

नदीतटनिकुञ्जे दत्तसंकेतेन कात्तेन विप्रलब्धा नायिका तत्राभ्यगमन नदीपूरेण सखे  
तस्थानमत्र स्त्रीचातथ प्रेमानुबन्धदात्री चारं प्रति आवयती स्वसखीमाह—

तडसठिअणीढेक्खन्तपीलुआरक्खणेक्कदिण्णमणा ।

अगणितप्रिणिपातमया पूरेण सम वइइ काई ॥ २ ॥

[तटस्थितस्य नीहस्येनात्ते विद्यमाना ये शावकास्तेषां रक्षणे दत्त मनीषया एता

अगणितप्रिनिपातमया पूरेण सम वइइति कात्री ॥]

तटस्थितस्य नीहस्येनात्ते विद्यमाना ये शावकास्तेषां रक्षणे दत्त मनीषया एता  
एषो कात्री अगणितप्रिनिपातमया तस्या सहैवान्तरमापि स्वस्य मञ्जनमगणयती सती  
पूरेण नवपत्नीधेन सम वइइति ॥

१ कुलबालदेवस्तु अग्निप्रय शतक वर्तमानामरकपद्यसहयाद्यम् 'त णमइ जस्य  
दच्छ—' इत्यादिगायामत्र द्वितीयशतककारम्भे मञ्जुशकरणत्वेन पठति २ 'धरिअ धरि  
ओ वि' इति क्व पुस्तके, 'धिरिअ धिरिअ इति च न पुस्तके पाठ ३ 'वज्जरिए' इति  
क्व पाठ ४ घ पुस्तके 'धृतो धृतो—' इत्यादिगाथाच्छायान्तरं 'करयुगगृहीतयो  
दास्त्वभरनिवगितापरदस्स । सस्मृतपागजन्मस्य नमत्त इण्णस्य रोमायम् ॥' इय  
गाथाच्छायाधिकास्ति ५ 'पीलुहररक्षणेक्' इति मन्थाट, 'पीलुक्क शावरु' इति  
पुञ्जालदव ६ 'विनिपातमया' इति घ पुस्तकपाठ

मधूकपुष्पावचयव्याजेन कृताभिसारा कुलटा जारं प्रत्यात्मनधिररताभिलापं सूचय-  
न्ती मधूकतस्माद्—

बहुपुष्पभरोणामिभूमीगअसाह सुणसुं विण्णत्तिम् ।

गोलातडविअडकुडङ्गमहुअ सणिअं गलिञ्जासु ॥ ३ ॥

\* [बहुपुष्पभरावनामितभूमीगतशाख शृणु विशसिम् ।

गोदातटविकटनिकुञ्जमधूक शनैर्गलिष्यसि ॥]

बहुपुष्पभरेणावनमिता भूमिगताः शाखा यस्येति मधूकविशेषणम् । शनैः क्रमेण ग-  
लिष्यतीत्यनेन चिरं मया ते संगमो भविष्यतीति सूचितम् ॥

धस्याधिन्मधूककुसुमावचयप्रसङ्गेन मधूकतटसमीपनिकुञ्ज सकेतस्थानमासीत् । स  
च क्रमेण कुसुमापगमे शक्ति भ्रम इति परिशिष्टकुसुमावचय कुर्वती रुदती दृष्टा नाग-  
रिव सहचरमाह—

णिप्पच्छिमाई असई दुःखालोआई महुअपुंफाई ।

चीए वन्धुस्त व अट्टिआई रुअई समुच्चिणइ ॥ ४ ॥

[निष्पथिमान्यसती दुःखालोकानि मधूकपुष्पाणि ।

चिताया बन्धोरिवासीनि रोदैनशीला समुच्चिनोति ॥]

निष्पथिमानि परिशिष्टानि । दुःखालोकानि तदवचयव्याजलभ्यजारसामागमस्य  
तदपाये दुर्लभत्वादिति भावः ॥

\* नायकस्यास्थिरप्रेमतया तद्वचनमस्वीकुर्वती नायिकामभिमुखीकर्तुं वक्षिद्विदग्ध  
आह—

ओ द्विअज मडहसरिआजलरअहीरन्तदीहदारु व्व ।

ठाणे ठाणे व्विअ लग्गमाण केणावि डञ्जिइहसि ॥ ५ ॥

[हे हृदय स्वल्पसरिज्जलरयद्वियमाणदीर्घदारुवत् ।

स्थाने स्थाने एव लगत्केनापि धस्यसे ॥]

स्वल्पसरितो जलरयेण द्वियमाण काष्ठ यथा स्थले स्थले लगत्केनापि दह्यते तथा  
त्वमपि कस्यामपि सुभगायां लभं सत्तया क्षणधिरहेणापि लक्ष्यस इत्यर्थः । एतेना-  
भिमतजनाप्राप्त्या ममास्थिरलोहत्वम्, न तु दुर्विदग्धत्वादिति ध्वनितम् । मडहशब्दः  
स्वल्पवाचकः ॥

१. 'शनैर्न गलिष्यसि' इति घ-पाठ . २. 'उप्पाइ' इति क-ख पाठ . ३. 'रुदती'  
इति ग-पाठ.. ४. 'हा हृदय' इति घ-पाठः. ५. 'धुदनदी' इति ग-पाठः.

बन्धुजनं प्रति सहयाः सौभाग्यं काचिदाह—

जो 'तीएँ अहरराओ रत्ति उव्वासिओ पिअअमेण ।

सो विवअ दीसइ गोसे सवत्तिणअणेषु संकन्तो ॥ ६ ॥

[यस्तस्या अधररागो रात्राबुद्धामित. प्रियतमेन ।

स एव दृश्यते प्रात. सपत्नीनयनेषु संक्रान्तः ॥]

गोसे गत । तथाविधाधरदर्शनज नितेर्ध्याया सपत्नीनयनेष्वहणिमोदयादिति भावः । ए-  
कस्या सौभाग्यवर्णनेन तत्सपत्नीनां सुखसाध्यत्वं सूचयन्त्या दृष्ट्वा इयमुक्तिरिति वक्षित् ॥  
हलिकवच्चा. पतिश्रेष्ठपरीक्षोपायं दर्शयन्ती काचित्साखी शिक्षयितुमाह—

गोलाअडट्टिअं पेछिऊण गहवइसुअं हलिअसोहा ।

आरहत्ता उत्तरिउं दुःखुत्ताराएँ पअवीए ॥ ७ ॥

[गोदावरीतटस्थितं प्रेक्ष्य गृहपतिमुतं हलिकस्रुषा ।

आरब्धा उत्तरीतु दुःखोत्तारया पदव्या ॥]

विमय मामवलम्बते न वेति जिज्ञासया विपममार्गेणावतरीतुमारब्धेत्यर्थ. ॥

अभिलषितनायकं प्रलोमयितु तं प्रलात्मसौभाग्यं धावयन्ती कापि सखीमाह—

चलणोआसणिसण्णस्स तस्स भरिमो अणालवन्तस्स ।

पाअहुट्ठावेट्टिअकेसदिढाअड्डणसुँहेल्लिम् ॥ ८ ॥

[चरणावकाशनिषण्णस्य तस्य स्वरामोऽनालपत ।

पादाङ्गुष्ठावेष्टितवेशदृढाकर्षणसुखम् ॥]

प्रणयकोपेमानुनयमगृह्णन्त्या मम चरणावकाशे निषण्णस्य तस्य मदीयपादाङ्गुष्ठेना-  
वेष्टितानां केशाना दृढाकर्षणेन जातं यत्सुखं तस्वराम इत्यर्थ ॥

सकेतस्थाने जारं प्रति पवित्रस्यावस्थितिं धावयन्ती कुलटा सखीमाह—

फालेइ अन्छभहं व उअह लुग्गामदेउलदारे ।

हेमन्तआलपहिओ विञ्ज्ञाअन्तं पलालग्गिम् ॥ ९ ॥

[पाटयत्यच्छमलमिद पश्यत कुग्रामदेवकुलद्वारे ।

हेमन्तकालपधिको विधीयमान पलालमिम् ॥]

१. 'तीअ' इति ख-ग पाठः. २. 'प्रभाते दृश्यते' इति घ-पाठः. ३. 'आरहत्' इति ग पाठः. ४. 'दुखउत्ताराद' इति ख-ग-पाठः. ५. 'अवतरितु' इति घ-पुस्तके, 'उत्तरितु' इति च ग पुस्तके पाठः. ६. 'दु.खोत्तारायाः पदव्या.' इति घ-पाठः. ७. 'सुखम्' इति क पाठः. ८. 'सुखकेलिम्' इति ग-पाठः. ९. 'युञ्ज्ञाअन्तं' इति ग-पाठः. १०. 'विधीयमानं' इति ग पुस्तके, 'निर्वातं' इति च घ-पुस्तके पाठः.

अच्छमज्ञो भद्रक । पाठ्यमानस्य पलाशक्षारवृटस्य यदि श्यामत्वात् अन्तर्ध  
लोहिताकारवदिसंबन्धाद्भद्रकसाम्य बोध्यम् ॥

ग्रामतडागसमीपनिगृह्यदेशे दत्तसकेतेन जारेण विप्रलब्धा विमलजलानयनच्छलेना-  
तिप्रभाते तत्रात्मगमन त प्रति धावयन्ती तत्र दृष्टाद्भुतस्थनच्छलेन पितृभगिनीमाह—

कमलाअरा ण मलिआ हसा उद्गाविआ ण अ पिउच्छा ।

केणोवि गामतडाए अज्म उत्ताणअ व्यूढम् ॥ १० ॥ ५

[कमलाकरा न मृदिता हसा उद्गायिता न च पितृष्वस ।

केनापि ग्रामतडागे अग्रमुत्तानित क्षिप्तम् ॥]

विमलजलप्रतिबिम्बितम्याकाशस्योत्तानतया भानादियमुत्प्रेक्षा ॥

जारप्रवासं श्रुत्वा विमनस्कां गृहदृष्ट्यपराब्जुर्ही वधूं प्रति श्वधूरुपालम्बच्छलेनाह—

केण मणे भग्मणोरेहेण सलाविअ पवासो त्ति ।

सविसाइँ व अलसाअन्ति जेण बहुआएँ अद्गाइँ ॥ ११ ॥

[किन मन्ये भग्मणोरधेन सलापित प्रवास इति ।

सविपाणीवालसायन्ते येनं वध्वा अद्गानि ॥]

यद्वा पतिप्रवासवार्ताश्रवणेन विमनस्काया प्रोध्यत्यतिकाया पत्याचनुरागातिशय  
प्रतिपादयन्ती दृष्टी तस्या असाध्यतां जार प्रति सूचयतीति बोध्यम् ॥

कापि सर्वाभिक्षितावारगोपन शिक्षयितु गोपीना कृष्णतादृष्यानुभवामिष्यञ्जकदृष्टि  
तगुप्तिमाह—

अजाधि बालो दामोअरो त्ति इअ जन्पिए जसोआए ।

कह्मुहपेसिअच्छ णिहुण हसिणं वअवहूहिँ ॥ १२ ॥

[अद्यापि बालो दामोदर ईति इति जल्प्यते यशोदाया ।

कृष्णमुखेप्रेपिताक्ष निभृत हसित ब्रजवधूमि ॥]

अनुभूतविबिधनुरतविमर्दे कृष्णे अस्य वचनस्यासद्यद्वापत्वेन हास्यहेतुत्वाच्चातोऽपि  
हासो वैदग्ध्यान प्रकाशित इति भाव ॥

१ 'तलाए अज्म उत्ताणिअ' इति ख पाठ २ 'उत्तानक' इति ग पाठ  
३. 'उद्गाविअ इति ग पाठ ४ 'मणे प्रवासीति' इति घ पाठ ५ 'येन' इति घ पु  
स्तके नास्ति ६ 'इति किल जल्पित यशोदायै' इति घ पाठ. ७ 'प्रक्षिताक्ष' इति  
ग-पाठ .

कापि सन्नसुतिव्याजेन दृढस्नेहानुपत्यर्थं नायकमाह—

ते विरला सप्पुरिसा जाण सिणेहो अहिण्णमुहराओ ।

अणुदिअह्वड्डुमाणो रिणं व पुत्तेसु संकमइ ॥ १३ ॥

[ते विरला सत्पुरुषा येषा स्नेहोऽभिन्नमुखरागः ।

अनुदिवसवर्धमानो ऋणमित्र पुत्रेषु संक्रामति ॥]

अभिन्नेति । आदिमध्यान्वेषु तुल्यमुखप्रसाद इत्यर्थं ॥

कापि जनसमक्षमुद्भटभावा सखीं शिष्ययितुं कृष्णानुरक्तगोप्या वैदग्ध्यमाह—

णञ्चणसलाहणणिहेण पासपरिसंठिआ णिउणगोवी ।

सँरिसगोविआणं चुम्बइ कपोलपडिमागअं कहम् ॥ १४ ॥

[नर्तनश्चाघननिर्भेनं पार्श्वपरिसंस्थिता निपुणगोपी ।

सैदृशगोपीना चुम्बति कपोलप्रतिमागत कृष्णम् ॥]

नर्तनेति सम्यद्दृत्वतीति कणे कथनव्याजेनेत्यर्थः ॥

कापि वान्तगमनाक्षेपार्थं वर्षागममाह—

सव्वत्थ दिँसामुहपसोरिपाहिँ अण्णोण्णकडअलग्गेहिँ ।

छल्लिँ व्व मुअइ विञ्जो मेहेहिँ विसंघडन्तेहिँ ॥ १५ ॥

[सर्वत्र दिशामुखप्रसृतैरन्योन्यकटकलमै ।

छल्लीमिव मुचति विन्ध्यो मेघैरिसघटमानैः ॥]

अन्योन्य कटके पर्वतनितम्बे लप्रविसघटमानैर्विन्ध्यदि । छल्ली वल्कलम् । स्वव-  
मिति यावत् । 'छल्ली वीरधि सताने वल्कले कुमुमान्तरे' इति मेदिनीकोपः ॥

तथैवापरगाथामाह—

आलोअन्ठि पुलिन्दा पव्वअसिहरट्टिआ धेँनुणिसण्णा ।

हत्थिउलोहिँ व विञ्जं पूरिञ्जन्त णवब्भेहिँ ॥ १६ ॥

[आलोकयन्ति पुलिन्दा पर्वतशिखरस्थिता धेनुनिषण्णा ।

हस्तिकुक्षेरिव विन्ध्य पूर्वाणामं नरात्रैः ॥]

१. 'ऋण' इति ग पाठ . २. 'पुत्रे' इति घ-पाठ . ३. 'गोपी' इति ग-पाठ .  
४. 'सरिगोविआण' इति क ख पाठ . ५. 'व्याजेन' इति ग-पाठ . ६. 'परिष्ठिता' इति  
ग-पुस्तके, 'परिस्थिता' इति च घ पुस्तके पाठ . ७. 'सदृशगोपीना' इति घ-पाठ .  
८. 'दिम्बुइ' इति ग पाठ . ९. 'सर्वदिशामुखप्रसृतै' इति घ पुस्तके, 'सर्वत्र दिम्बुगप्र-  
सारिभि' इति च ग-पुस्तके पाठ . १०. 'कमुकमिव' इति ग-पुस्तके, 'स्ववमिव'  
इति च घ पुस्तके पाठ . ११. 'पणुम्मि निषण्णा' इति क-पाठ . १२. 'अण्णनि  
निषण्णा' इति घ पाठ .

पुलिन्दाः शबराः । धनुषि निष्पन्नाः क्षितितलनिहिताटनीकं धनुस्त्वलम्ब्य स्थिताः  
सन्तो वर्षाण्वनिमहत्त्वादिना हस्तिकुलसदृशैर्नयमेधै पूर्यमाणं विन्ध्यं पश्यन्तीत्यर्थः ।  
शबरानां पर्वतशिखरेऽपस्थानात् विन्ध्यवनेऽभिसारभयं प्रतिपादयन्त्या नायिकाया जारं  
प्रसीयमुक्तिरिति केचित् ॥

श्रोपितभर्तृधामाश्वासयन्ती सरसी पथिक्रागमनयोग्यं वर्षाण्ययमाह—

वणदवमसिमइलङ्गो रेहइ विब्धो गणेहिं धवलेहिं ।

१. सीरोअमन्धणुच्छलिअदुद्धसित्तो व्व महुमहणो ॥ १७ ॥

[वनदवमपीमलिनाङ्गो राजते विन्ध्यो घनैर्धवलैः ।

सीरोदमथनोच्छलितदुग्धसित्ता इव मधुमधनः ॥]

वनदवेत्यादिविशेषणेन तृणकण्टकादिदाहक्षिर्भनः सुगमता दर्शिता । धवलेरिति ज-  
लापायादिति भावः ॥

कस्मिन्नप्युज्ज्वलकेषु पुंक्षि जायास्यच्छु-प्रीतिमुपलभ्य कुपित नायकं बोधयित्वा वि-  
नापि सुरतेच्छा चक्षुरागो भवत्येवेति सखी निदर्शयितुमाह—

वन्दीअ णिहअवन्धवविमणाइ वि पैकलो त्ति चोरजुआ ।

अणुराण्ण पलोइओ गुणेषु फो मच्छरं वहइ ॥ १८ ॥

[वन्द्या निहतवान्धवविमनस्कयापि प्रवीर इति चोरजुवा ।

अनुरागेण प्रैलोकितो गुणेषु फो मत्सरं वहति ॥]

निहतवान्धववैव विमनस्कयापि वन्द्या चोरजुवा प्रवीर इति हेतोरनुरागेण प्रलो-  
कितः । गुणानुरागादालोकितवती, ननु सुरताभिलाषादिति भावः ॥

नायकान्तरं प्रत्यसाध्यत्वं सूचयन्ती दूती व्याधवधूर्ध्वाभाग्यं वर्णयति—

अज्ज कइमो वि दिअहो वाहवहू रुवजोव्वणुम्मत्ता ।

सोहग्गं धेणुहम्पच्छलेण रच्छासु विकिरइ ॥ १९ ॥

[अथ कतमोऽपि दिवसो व्याधवधू रूपयौवनोन्मत्ता ।

सौभाग्यं धेनुस्तप्यच्छलेन रथ्यासु विकिरति ॥]

सततसुरतासकिकृतदौर्ध्वत्यादाच्छुमशयत्वात्तृतावतक्षणस्य धनुस्त्वच्छलेन सौ-

१. 'सीरोअ' इति ग-पाठः. २. 'एकलो' इति क-पाठः. 'पवल' इति ग-पाठः.  
'पवलशब्दो दर्पवति मूनि वर्तते' इति पुलवालदेवः. ३. 'विलोकितो' इति ग पुस्तके,  
'दिलोकितो' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'धनुरम्पच्छलेन' इति ग-पाठः. 'रम्पशब्दः  
वच्छे वर्तते' इति कुलबालदेवः. ५. 'रम्प' इति ग पाठः. ६. 'धनुस्त्वक्षण' इति घ-पाठः.

मानस्यं विनिरतीत्यर्थः । रुम्पश्चन्देन तत्क्षणप्रमदमूहमत्त्वगुच्यते । अतिमुरतासक्तं मिः  
प्रति तत्रितृत्त्यर्थं सहचरोक्तिरिति कथित् ॥

तमेवार्थं भङ्गन्तरेणाह—

उक्खिप्पइ मण्डलिमारुण गेहङ्गणाहि वाहीए ।

सोहग्गधअवहाअ व्व उअह धेणुरुम्परिञ्छोली ॥ २० ॥

[उत्क्षिप्यते मण्डलीमारुतेन गेहाङ्गणाद्वाधस्त्रियाः ।

सौभाग्यध्वजपताकेव पश्यत धेनुःसूक्ष्मत्वन्पङ्क्तिः ॥]

मण्डलीमारुतेन वातमण्डल्या । सौभाग्यनेव ध्वजस्तस्य पताकेव । आत्मनो विज्ञ-  
त्वत्यापनार्थं नागरिकस्य सहचर प्रतीयमुक्तिरिति कथित् ॥

अनुक्तमप्यर्थं लिङ्गदर्शनाज्जनो जानातीति दर्शयन्ती काचित्सखीमिद्वितरक्षणा-  
धमाह—

गअगण्डत्थलणिहसणमअमइलीकअकरअसाहाहिं ।

एत्तीअ लुलहराओ णाणं वाहीअ पइमरणम् ॥ २१ ॥

[गजगण्डस्थलनिघर्षणमदमलिनीवृत्तकरञ्जशाखाभिः ।

आगच्छन्त्या कुलगृहाज्जातं व्याधस्त्रिया पतिमरणम् ॥]

गजाना गण्डस्थलनिघर्षणे सति मदेन मलिनीकृताभिरित्यर्थः । कुलगृहातिपतृगृहात् ।  
पतिभयेन पलायिताना गजानां पुनरागमनस्य पतिमरणाव्यभिचारित्वेन पतिमरणमनु-  
मितमित्यर्थः । नायिकान्तरासक्तस्य पूर्ववद्भ्रजमारणसामर्थ्याभावात्पतिर्मरिष्यतीति नि-  
श्चितमित्यर्थं इति कथित् ॥

पूर्वप्रियाप्रेमानुवृत्तिविक्षार्थं नागरिकः सहचर प्रति कस्यचिद्वाधस्य दक्षिणाय-  
क्ता वर्णयति—

णववहुपेम्ममतणुइओ पणअं पढमघरणीअ रक्खन्तो ।

आलिहिअदुप्परिअं पि णेइ रण्णं घणुं वाहो ॥ २२ ॥

१. 'घणुहरोरम्प' इति ग-पाठः. २. 'माहत्तैः' इति घ-पाठः. ३. 'गृहाङ्गणाङ्गा-  
ध्याः' इति ग-पुस्तके, 'गेहाङ्गणाद्वाधात्' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'पश्यत' इति  
ग-पुस्तके नास्ति. ५. 'धनुर्मेनोरम्परिञ्छोली' इति ग-पुस्तके, 'पश्य घनुस्तक्षणादि-  
ञ्छोली' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'आगल्य' इति घ-पाठः. ७. 'व्याधवध्या' इति  
ग-पुस्तके, 'व्याप्या' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'अलिहिअदुप्परिअं' इति  
ख-पाठः.

[नननधूप्रेमैतनृकृत प्रणय प्रथमगृहिण्या रञ्जन् ।

तेनृकृतदुराकर्षमपि नयत्यरण्य धनुर्बाध ॥]

तक्षणादिना तनृकृतमपि दुराकर्षमित्यर्थ । प्रथमगृहिण्या साध्यत्वं सूचयितुं जार  
प्रति द्रव्या उक्तिरियमिति कथित् ॥

सुभगा प्रति कथमपि कुपितस्य प्रियस्य पुन पुन सप्रतिज्ञं यत्तत्सगमोपेक्षावचन  
सस्यासन्नदायत्वेन हास्यैरहेतुतामपरा तामहिला सोपालम्भमाह—

हासाविओ जणो सामलीअ पढम पसूअमाणाए ।

वह्हववाँएण अल मम त्ति बहुसो भणन्तीए ॥ २३ ॥

[हासितो जन ईश्यामया प्रथम प्रसूयमानया ।

वह्मभवेदेनाल ममेति बहुशो भणन्त्या ॥]

यथा श्यामया वरद्विया प्रथम प्रसूयमानया वृत्रभसमागमस्य असद्यद्दुःखहेतुं वाद्बह्म  
वादेन वग्भाभिधानेन । वह्मभस्य नामप्रहणेनापीति यावत् । ममात् नक्षि प्रयोजन  
मिति बहुशो भणन्त्या पुन प्रियोपगमाहोको हासितस्तथा तवापीद वचनमिति भाव ॥

अत्रैतत्वे प्रियेऽलमलीकप्रसक्तिसङ्घेत्याश्वामयतीं मातुलानीं प्रोपितमर्तुका सनि  
वेदमाह—

कैअवरहिअ पेम्म णत्थि विअ मामि माणुसे लोए ।

अह्ह होइ करस विरहो विरहे होत्तम्मि को जिअइ ॥ २४ ॥

[कैतवरहित प्रेम नास्त्येव मातुलानि मानुषे लोके ।

अथ भवति कस विरहो विरहे भैवति को जीवति ॥]

भवति जायमाने । कथमन्यथा तद्विरहेऽप्यह जीवामि स च मां परित्यज्य तिष्ठ  
सीति भाव ॥

यस्याधिदमीटनाविद्याया स्नातावसरेऽप्रभालनार्थं यन्नपरिवर्तनोद्घाटित्वावयवदर्श  
नेन तस्य कानिनीजनमनोहरणार्थमात्मन वासुकवातिशय कथिदाह—

अच्छेए व णिहिं विअ सग्गे रज्ज व अमअपाण व ।

आसि म्हा त महुत्त विणिअसणदसण तीए ॥ २५ ॥

१ 'प्रेम्णा' इति ग-पाठ २ 'अणितिनदुरा-' इति ग घ-पाठ 'अणितित्तमद  
नृकृतम्' इति कुलशालदेव ३ 'राएण' इति ग-पाठ ४ 'स्यामलया' इति घ  
पाठ ५ 'रानेणाल' इति ग घ-पाठ ६ 'मनिनि' इति ग पुनरुक्ते, 'मातुलि'  
इति च घ-पुनरुक्ते पाठ ७ 'भवत्तपि' इति ग पाठ ८ 'आस इ' इति ग-पाठ



[आश्चर्यमिव निधिमिन् स्वर्गे राज्यमिनामृतपानमिव ।

आसीदस्माक तन्मुहूर्ते विनिर्वासनदर्शनं तस्या ॥]

• अस्माक तस्यास्तद्विनिवसनदर्शनम् । विवस्त्रायास्तस्या आलोचनमिति यावत् । मुहूर्तमात्रं नेत्रोपशान्तेतुत्वादाश्चर्यमिव । परमसुखहेतुत्वान्निधिमिव । निधिरिवेत्यर्थं । प्राकृते लिङ्गविभक्त्यादेरनियमात् । निधीश्वरत्वलाभात्स्वर्गराज्यमिव । अतिरायितवृत्तिकारित्वान्मदनानलङ्घनत्वं सकलशरीरनिर्गृह्णित्वाच्चामृतपानमिवासीदित्यर्थं ॥

आत्मन्यनुरागं सपर्यायां च विद्वेषमुत्पादयितुं काव्यस्थिरप्रेमाणं नायिकान्तरासक्तं नायकमाह—

सा तुञ्ज बह्वहा त सि मज्झ वेसो सि तीअ तुञ्ज अहम् ।

वालअ फुडं भणामो पेम्म किर बहुविआरं त्ति ॥ २६ ॥

[सा तव वैह्वमा त्वमसि मम द्वेष्योऽसि तस्यास्तवाहम् ।

वालकं स्पुटं भणाम प्रेमं किञ्चै बहुविकारमिति ॥]

त्वमसि मम बह्वहा इति विपरिणतानुपहृत् । तवाहमित्यत्रापि द्वेष्येति विपरिणतानुपहृत् । बालकं उचितानभिज्ञं । बहुविकारमिति प्रकृतिभेदेन बहुप्रकारमित्यर्थं । अनुरागां मां विद्यायाननुरागायां तस्यामासक्तिस्तव रसाभासावहेति भावः ॥

पल्लुर्वैदग्ध्यमात्मनश्च सौभाग्यविनयादिगुणं सूचयन्ती स्वाधीनभर्तृका प्रसाधि कामाह—

अहंअ लज्जालुइणी तस्स अ उम्मच्छराइं पेम्माइ ।

सहिआअणो विं गिउणो अलाहि किं पाअराएण ॥ २७ ॥

[अहं लज्जालुस्तस्य चोन्मत्सराणि प्रेमणि ।

सखीजनोऽपि निपुणोऽर्पगच्छ किं पादरागेण ॥]

उन्मत्सराण्युद्गतानि । उदरालककादिष्वव्याप्तप्रवृत्तानीत्यर्थः । सखीजनश्च निपुणः । किञ्चिद्विह्वलात्रेण लक्षयतीत्यर्थः । अलाहिश्चन्दो निवारणे । अपगच्छेत्यर्थः । किं पादरागेणेति चरणयोरारुह्यस्य स्वतः सिद्धत्वात् । उदरादिषु चरणविह्वोदयहेतुना लक्षारसेन किं प्रयोजनमिति भावः ॥

१ 'विनिवसनं' इति घ पाठ २ 'वह्वमा मम त्वं द्वेष्योऽसि' इति ग पुस्तके, 'बह्वमा त्वमसि मम त्रियस्त्वमसि तस्या' इति च घ पुस्तके पाठः . ३ 'खलु विकारमिति' इति घ पाठ ४ 'अहं अ' इति ग-पाठ ५ 'अ' इति ग पाठ . ६ 'अहं च' इति ग पाठ ७ 'लज्जालुकिनी' इति घ पाठ ८ 'अलाभि' इति घ पाठ .

अरण्ये दत्तसंकेताया गोप्या विरहपीडा संकेतस्थानगमन च सूचयन्ती दूती जारं प्रत्याह—

मधुमासमारुआहमहुअरझंकारणिन्मरे रण्ये ।

गाअइ विरहकरखरॉवद्धपहिअमणमोहणं गोवी ॥ २८ ॥

\* [मधुमासमारुताहतमधुकरझंकारनिर्मरेऽरण्ये ।

गायति विरहाक्षराबद्धपथिकमनोमोहनं गोपी ॥]

मधुमासमाहतेन दक्षिणानिलेनाहते मधुकरझंकारैः पूरिते अरण्ये विरहाभिव्यङ्गकै-  
रक्षरैरावद्धत्वात्पथिकमनोमोहनं यथा भवति तथा गोपी गायति । अस्मद्वनितानामपी  
दश श्लेशो भविष्यतीति पथिकानां मोहो भवतीति भावः । गृहगमनाय पथिकान्तरं  
त्वरयितुं पथिकस्येयमुक्तिरिति केचित् ॥

कलहान्तरिताया निष्पारणमानप्रहृनिन्दाछटेन दूती जारस्यागमनावसरमाह—

तह माणो भौणधणाएँ तीअ एमेअ दूरमणुवद्धो ।

जह से अणुणीअ पिओ एकगाम ङ्विय पउत्थो ॥ २९ ॥

[तथा मानो भौनधनया तैया एवमेव दूरमणुवद्धः ।

यैया तस्मा अनुनीय प्रिय एकग्राम एव प्रेषितः ॥]

एवमेव कारण विभेव । एकग्रामे विद्यमानस्यापि प्रियादर्शनाभावात्प्रवसत एवेति  
भावः ॥

विदग्धाः पत्युः परचनितासक्तिमुपायेन वारयन्तीति कापि सती शिक्षयितुमाह—

सालोए ङ्विअ सूरे घरिणी घरस्तामिअस्स घेत्तूण ।

णेच्छन्तस्स वि पाए धुअइ हसन्ती हसन्तस्स ॥ ३० ॥

[सालोक एव सूर्ये गृहिणी गृहस्वामिनो गृहीत्वा ।

अनिच्छतोऽपि पादौ धौवति हसती हसतः ॥]

असमय एव पादप्रक्षालनादन्यस्त्रीसमीपगमनप्रतिषेधे गृहिण्यास्तात्पर्यमवगत्य हसन्तो  
गृहस्वामिनः पादौ गृहिणी विदिताभिप्रायाहमनेनेति हसती सती प्रक्षालयतीत्यर्थः ॥

१. 'बद्ध' इति घ-पाठः. २. 'माणहणाए' इति ग-पाठः. ३. 'मानहताया इत्यनेव'  
इति ग-पाठः. ४. 'तस्या मे अदूरमणुवद्धः' इति घ-पाठः. ५. 'ययास्या' इति ग घ-  
पाठः. ६. 'गृहस्वामिकस्य' इति ग-पाठः. ७. 'धावयति' इति ग-पुस्तके, 'प्रक्षालयति'  
इति घ-पुस्तके पाठः. ८. 'हसन्ती हसमानस्य' इति घ-पाठः.

अन्यस्त्रीनाम्ना व्यवहरन्तं वान्त प्रति किं ते दृष्टिवलमपि क्षीणमिति वदन्तीं सत्यो  
निवारयन्ती खण्डिता सधिनयोपालम्भमाह—

वाहरउ मं सहीओ तिरसा गोत्तेण किं त्थ भणिण्ण ।

धिरपेम्मा होउ जहिं तेहिं पि मा किं पि णं भणह ॥ ३१ ॥

[व्याहरतु मा सख्यस्तसा गोत्रेण विमत्र भणितेन ।

स्थिरप्रेमा भवतु यत्र तत्रापि मा विमप्येन भणन ॥]

गोत्रेण नाम्ना । 'शोत्र तु नाम्नि च' इत्यमर ॥

दुष्टद्वितीप्रत्याप्यनार्थं कापि साध्वी प्रोषितमर्तृका दैवोपालम्भच्छलेनात्मनः पला-  
वनुरागातिशयमाह—

रूअ अच्छीसु ठिअं फरिसो अङ्गेसु जम्पिअ कण्णे ।

हिअअं हिअए णिहिअं विओइअं किं त्थ देव्वेण ॥ ३२ ॥

[रूपमस्पोः स्थित स्पर्शोऽङ्गेषु जल्पित कर्णेषु ।

हृदय हृदये निहित विधीजित किमत्र दैवेन ॥]

तस्य रूपसौकुमार्यप्रियवचनसद्भाववर्तनानि भावयन्तीं मा न विरहः पीडयतीति  
भाव ॥

प्रोषितमर्तृकायाः सत्यो तत्त्वान्तसमीपगामिन पथिक प्रति सहया विपनां विरहा-  
वस्थामाह—

सअणे चिन्तामइअं काऊण पिअं णिमीलिअच्छीए ।

अप्पाणो उवऊढो पसिठिलवलआहिं वाहाहिं ॥ ३३ ॥

[शयने चिन्तामय कृत्वा प्रिय निमीलितास्या ।

आत्मा उपगूढ प्रशिथिलयत्याम्या बाहुभ्याम् ॥]

आनन्दातिशयान्मुकुलितनेत्रया विरहदोषत्वत्प्रशिथिलयत्याम्बा बाहुभ्यामा मा  
उपगूढः । सद्यशीरमात्रिङ्गितमित्यर्थः । तथावद्दसमीपवस्थां न गच्छति तावदनुस्म्य-  
सेति तत्त्वान्त प्रति वक्तव्यमिति भावः ॥

कलहान्तरितयोर्यूनो समप्रसकरणाय गतागतस्त्रिणा द्वीता तावनुहृत्पितुमात्मनि-  
न्दामाह—

परिहूण वि दिअहं घरघरभमिरेण अण्णकजम्मि ।

चिरजीविण्ण इमिणा खविअहो दडुक्काएण ॥ ३४ ॥

१. 'वेम्मो' इति ग पाठ २. 'कहिं' इति ग पाठ ३. 'यत्र कुत्रापि' इति ग  
पाठ ४. 'दिअएण सम' इति ख-पाठ ५. 'स्पर्श' इति फ-ख पाठ ६.  
'कर्णयो' इति ग पाठ ७. 'विचोक्षितं किं सउ दैवेन' इति घ-पाठ ८. 'आ-  
त्मना परम रुड' इति घ-पाठः-

[परिभूतेनापि दिवस गृहगृहभ्रमणशीलेनान्यकार्ये ।

चिरजीवितेनानेन क्षपिता स्तो दग्धकायेन ॥]

पक्ष दग्धकाकेन । रोपकट्टवचनैः परिभूतेनापि अन्यकार्ये परप्रयोजनार्थं गृहगृह-  
भ्रमणशीलेन चिरजीवितेन घृद्धेनानेन दग्धकायेन क्षपिता स्त उद्वेजिता स्त । अ-  
न्योऽपि छोटप्रक्षेपादिना परिभूतेन भ्रमणकार्यं भ्रमणप्राप्त्यर्थमनुदिवस प्रतिगृह भ्रमता चि-  
रजीवितेन दीर्घायुषा काकेन दध्याद्युपघातादुद्विग्नो भवतीति । अण्णकृष्मि ददुसा  
एण इत्यादि छिट्टशब्दशक्तिमूलको ध्वनिः । क्षपिता स्त इत्यर्थे क्षु-धा स्त इति वा ॥

दुर्जनसङ्घपरिहारार्थं कोऽपि सहचरमाह—

वसइ जहिं चेअ खलो पोसिज्जन्तो सिणेहदानेहिं ।

त चेअ आलअ दीअओ वर अइरेण मदलेइ ॥ ३५ ॥

[वसति यत्रैव खल पोष्यमाण स्नेहदानैः ।

तमेवालय दीपक इवाचिरेण मलिनयति ॥]

स्नेहदानैः सहसूचकैर्दानैः । पक्षे तैलादिदानैः । पोष्यमाणः सन्ध्यमानः । पक्षे सदी-  
प्यमानः खलो यत्रैव वसति । यदाश्रयेण वसतीत्यर्थः । तमेवालयमाश्रयभूतः चन-  
भूमाय चाचिरेण मलिनयति सापवादः साधकारः च करोतीत्यर्थः ॥

शुभ्र दानो सुखं कर्तुं कुट्टनी कृपणनि-दामाह—

होन्ती विणिप्फलञ्चिअ धेणरिद्धी होइ किविणपुरिसस्स ।

गिह्माअवसतत्तस्स जिअअछाहि वा पहिअरस्स ॥ ३६ ॥

[भवत्यपि निष्फलैव धेनवद्विर्भवति कृपणपुरुषस्य ।

श्रीष्मात्प्रसतत्तस्य निजच्छायेषु पथिकस्य ॥]

यथा स्त्रीया छाया नामनो न वा परस्य सताप हरति तद्वत्कृपणधनमिति भावः ॥  
स्फुरितवामनेत्रा प्रोषितभनृका स्त्रीणां वामाक्षिरप-दस्य शुभसूचकतया प्रियाग-  
मनमाकल्प्य सपरितोषमाह—

पुरिए वामच्छि तुए जइ एहिइ सो पिओ ज्ज ता सुइरम् ।

समील्लिअ दाहिणअ तुइ अवि एह पलोइस्साम् ॥ ३७ ॥

१ चिरजीविनामुना शान्तिता स्तो इति ग-पाठ २ 'स्वेथ इति क-पाठ  
३ 'दीप इव' इति क-ए घ-पाठ ४ धनरुद्धी इति ग-पाठ ५ 'धनरुद्धि'  
इति क-ए पुस्तकयोः, 'धनरुद्धि' इति च घ-पुस्तके पाठ ६ 'तुए अविइ पलोइ-  
स्साम्' इति ग-पाठ

[स्फुरिते वामास्त्रि त्वयि येचेप्यति स प्रियोऽद्य तत्सुचिरम् ।  
समील्य दक्षिण त्वैयैवैतं प्रेक्षिष्ये ॥]

हे वामनेत्र, त्वया स्फुरिते स्फुरणे कृते सति यदि स प्रियोऽद्यागमिष्यति तदा दक्षिणमक्षि निमील्य तं त्वयैव प्रेक्षिष्ये । त्वानेवैकं प्रियावलोकनेन कृतार्थविष्यामी-  
त्यर्थं ॥

शुनकापदेशेन कामुकान्तरसभोगभयं प्रदर्शयन्ती दूती नायकं प्रति नायिकाया अ-  
नुरागातिशयमाह—

मुणअपडरन्मि गामे हिण्डन्ती तुह कएण सा बाला ।

पासअसारिब्ब घरं घरेण कइआ वि सज्जिहिइ ॥ ३८ ॥

[शुनकप्रचुरे ग्रामे हिण्डमाना तव वृत्तेन सा बाला ।

पाशकशरीव गृहं गृहेण कदापि सादिप्यते ॥]

शुनकप्रायकामुकप्रचुरे ग्रामे त्वदर्शनार्थं प्रतिगृह भ्रमन्ती सा बाला कदापि केनापि  
सादिप्यते । उक्तोक्तवत् इत्यर्थः । अतो नवयौवना एषा यावदन्वेन नोपगुज्यते ताव-  
देना भजसेति भावः ॥

यं युवानं प्रति त्वं वद्वानुरागा सोऽस्थिरप्रेमेति कथयन्ती सखी नायिका ससौमा-  
र्यगर्वमाह—

अण्णणं कुसुमरसं जं फिर सो महइ मैहुअरो पाउम् ।

तं णीरसाणं दोसो कुसुमाणं णेअ भमग्गस्स ॥ ३९ ॥

[अन्यमन्य कुसुमरसं यत्किल सी इच्छति मधुकर-पातुम् ।

तन्नीरसानां दोष कुसुमाना नैवै जमरस ॥]

यथा इच्छानुरूपस्य मधुन एकप्रालभान्मधुकरो भ्रमति तद्वदयमपीच्छानुकूलना-  
यिकामलभमानधासल्यमवलम्बते । तदेतस्य चाञ्चल्य मया उक्तमित्यमिति भावः ॥  
मन्दब्रहेह नायकमभिमुखीकर्तुं दूती नायिकाया अनुरागातिशयमाह—

रैत्यापइण्णणअणुप्पला तुमं सा पडिच्छए एन्तम् ।

दारणिहिण्हि दोहिं वि मङ्गलकलसेहिं य थणेहिं ॥ ४० ॥

१. 'स्फुरति' इति ग-पाठः. २. 'यद्यागमिष्यति प्रियतमसदा सुचिरम्' इति  
ग-पाठः. ३. 'त्वया अविग्र प्रलोदयिष्ये' इति ग-पाठः. ४. 'हिण्डन्ती' इति घ-  
पाठः. ५. 'शरीव' इति घ-पाठः. ६. 'गृहे न' इति घ-पाठः. ७. 'पाणलो-  
ऽण्णो' इति ग-पाठः. ८. 'स महति पानलोउपः' इति ग-पाठः. ९. 'नेह' इति घ-  
पाठः. १०. 'इच्छा' इति ख-पाठः.

[रम्याप्रकीर्णनयनोत्पला त्वां सा प्रतीक्षते आयान्तम् ।

द्वारनिहिताभ्यां द्वाभ्यामपि महत्कलशाभ्यामिव स्तनाभ्याम् ॥]

‘तुम सा पङ्क्तिच्छए एतम्’ इति स्थाने ‘तुम पुत्ति क पलोएत्ति’ इति कश्चित्पुस्तके पाठो दृश्यते । ‘त्व पुत्ति क प्रलोकयति’ इति तस्यार्थः । तत्रैव व्याख्या—रम्या प्रलोकनद्वारास्थितिस्तनप्रदर्शने कलितशीलखण्डनो कुलबधू प्रति दूती आह—र वेति । अयं भावः—नयनोत्पलाभ्यां कृतरभ्यापूजा द्वारि कलशाविव स्तनौ निधाय यस्य तन्मं प्रतीक्षते तं वषय मया तदानयने यतो विधेय इति ॥

अगृहीतानुनयविलक्ष पुनरनुनयविमुरा नायक प्ररोचयितुं दूती कलहान्तरिताया नायिकाया पश्चात्तापमाह—

सा र्णण जा रुवइ ता छीणं जाव छिञ्जाए अङ्गम् ।

ता णीसैसिअं वराइअ जाव अ सासा पटुप्पन्ति ॥ ४१ ॥

[तावद्भुदित यावद्भुद्यते तावत्क्षीण यावत्क्षीयतेऽङ्गम् ।

तावन्नि श्वसित वशक्या यौवत् [च] श्वासा प्रभवन्ति ॥]

यावद्भुदित्त्वं शक्यते तावद्भुदितम् । अङ्गं यावत् क्षीयते यतोऽधिकं क्षीणं न भवति तावत्क्षीणम् । यावच्छ्वासा प्रभवन्ति तावन्नि श्वसितम् । इदानीं क्षीणया श्वसितुमपि न शक्तिरिति त्वदुपेक्षया म्रियमाणा त्वग्नुरन्तःप्रसक्तमनुकम्पस्वेत्यर्थः ॥

कश्चिदुपरतजायाविरहविधुरमातमानमनुशोचनात्मन स्थिरभेदेतासूचनेन नायिका-  
न्तरं प्ररोचयितुमाह—

समसोकरदुक्खपरिवट्टिआणं कालेण रुद्धपेम्माणम् ।

मिहुणाणं मरइ ज त खु जिअइ इअर मुअ होइ ॥ ४२ ॥

[समसौर्ख्यदुःखपरिवर्धितयो कालेन रुद्धप्रेम्णो ।

मिथुनयोर्म्रियते यत्तत्खलु जीवति इतरन्मृत भवति ॥]

मिथुन जायापती । ‘स्त्रीपुत्री मिथुन द्वन्द्वम्’ इत्यमरः । समुदायवाचकोऽप्ययं रुक्षणया जायायां पत्नी च प्रयुक्तः । तेनायमर्थः—समाभ्यामुभयो साधारणाभ्यां मुखदुःखाभ्यां परिवर्धितयो कालवशेन स्थिरप्रेम्णोर्मिथुनयोर्दंपत्योर्मध्ये मनिथुन जाया वा पतिर्वा म्रियते तज्जीवति । इतरन्जीवन्मृत भवति निरहदुःखदग्धाजीवितान्मरणमेव चरन्मिति भावः ॥

१ ‘आगच्छन्तम्’ इति घ पाठ २ ‘णीससइ’ इति ग-पाठ ३ ‘यावन्नि श्वासा’ इति घ पाठ ४ ‘मुखदुःख’ इति ग घ पाठ

वसन्ते प्रियप्रवासगमनध्रुवणविधुरां कुलवधूमाश्रासयन्ती विदम्भा सखी  
सानुनयमाह—

हरिहिं पिअस्स णवचूअपल्लवो पढममञ्जरीसणाहो ।

मा रुवसु पुत्ति पत्थाणकलसमुहसंठिओ गमणम् ॥ ४३ ॥

[हरिष्यति प्रियस्य नवचूतपल्लवः प्रथममञ्जरीसनायः ।

मा रोदी पुत्रि प्रस्थानकलशमुखसंस्थितो गमनम् ॥]

हे पुत्रि, शकुनच्छलेन मया प्रस्थानकलशे स्थापितो नवचूतपल्लवः प्रियस्य गमनं  
हरिष्यति । अतो मा रोदीरित्यन्वयः । वसन्तागमनचिह्नं दृष्ट्वा स्वयमेव स्थास्यतीति  
भावः ॥

अनुनयार्थमागतं कान्तं दृष्ट्वा कलहान्तरितारमनोऽनुरागं सूचयन्ती सपरिहासमाह—

जो कह वि मद्द सहीहिं छिदं लद्धिऊण पेसिओ दिअए ।

सो भाणो चोरिअकामुअ व्व दिट्ठे पिए णट्ठो ॥ ४४ ॥

[य कथमपि मम सखीभिश्छिद्रं लब्ध्वा प्रवेशितो हृदये ।

स मानश्चोरैकामुक इव दृष्टे प्रिये नष्टः ॥]

प्रणयकलहरूपं छिद्रं लब्ध्वा यो मानः सखीभिर्मम हृदये प्रवेशितः । न तु मया  
स्वीकृत इति भावः । स मानः प्रिये दृष्टे सति चोरैकामुक इव नष्टः पलायितः ॥

कापि कुसुम्भपुष्पावचचार्यं गतायाः सपत्न्याः शीलखण्डन जातमिति सूचयन्ती  
आह—

सहिआहिं भण्णमाणा यणए लग्गं कुसुम्भपुष्फं त्ति ।

मुद्धवहुआ हसिज्जइ पप्फोहन्ती णहवआइं ॥ ४५ ॥

[सखीभिर्भण्यमाना स्नेने लप्सं कुसुम्भपुष्पमिति ।

मुग्धवर्धुर्हृष्यते प्रस्फोटयन्ती नखपदानि ॥]

‘शशकृतं पद्यं नखप्रणामि सान्द्राणि तच्चतुःकचिदमाहुः’ इत्यादिकामशास्त्राभिद्वेन  
नायकेन स्तनकुक्ष्याग्रे निहितं शशकृतं दृष्ट्वा स्नेने कुसुम्भपुष्पं लप्समिति सखीभिर्भ-  
ण्यमाना मुग्धवर्धुर्नखपदानि प्रस्फोटयन्ती प्रक्षिपन्ती हृष्यते । मुग्धवर्धूरित्युपालम्भपर्य-  
वचनम् । प्रियदत्तं नखप्रणामे न जानातीति भावः ॥

१. ‘प्रियतमस्य’ इति ग-पाठः. २. ‘हरिहिं’ इति घ-पाठः. ३. ‘प्रेषितो’ इति  
घ-पाठः. ४. ‘चोरैकामुक’ इति ग-पाठः. ५. ‘स्तनयोः’ इति ग-पाठः. ६. ‘वधु-  
दपहस्यते’ इति ग-पुस्तके, ‘वधुका प्रहस्यते’ इति च घ-पुस्तके पाठः.

काप्यात्मनो मरणमय प्रदर्शयन्ती मन्दभेद नायकमनुकूलयितुमाह—

उन्मूलेन्ति व हिअअं इमाहँ रे तुह विरजमाणस्त ।

अवहीरणवसविसंतुलवलन्तणअणद्धदिट्ठाइ ॥ ४६ ॥

[उन्मूलयन्तीव हृदय इमानि रे तत्र विरज्यमानस्य ।

• अवधीरणवशविसमुलवलन्नयनार्धदृष्टानि ॥]

रेशम्द साक्षेपसबोधने । विरज्यमानस्य तेऽवधीरणवशाद्विसप्तुलमबद्धलक्ष्यं यथा भवति तथा बलन्नयनार्धं येषु एतादृशानि दृष्टान्यालोकनानि मम हृदयमुन्मूलयन्तीवेत्यर्थः । एतेनास्ता तव विरागः । विरागसूचकेनावलोकनेनापि मम मरणावस्था भवतीति सूचितम् ॥

काप्यात्मनो विरहविधुरता सूचयन्ती विरलदर्शनं नायकमाह—

ण मुअन्ति दीहसासं ण रुअन्ति चिर ण ह्योन्ति किसिआओ ।

धैण्णाओ ताओ जाणं बहुवल्लह वल्लहो ण तुमम् ॥ ४७ ॥

[न मुच्यन्ति दीर्घश्वासात् रुदन्ति चिर न भवन्ति क्लेशाः ।

धैर्यास्ता यासा बहुवल्लभ वल्लभो न त्वम् ॥]

अस्माभिस्तु त्वामासाद्य सर्वमिदमनुभूयत इति भावः ॥

शय्यागारविनिर्गतायाः प्रियाया परिवृत्त्यावलोकनं नायकः स्वसौभाग्यव्यथापनार्थमाह—

णिहालसपरिघुम्मिरत्तंसवलन्तद्धतारआलोआ ।

कामस्स वि दुब्बिसहा दिट्ठिणिवाआ ससिसुहीए ॥ ४८ ॥

[निद्रालसपरिघूर्णनशीलतिर्यग्बलद्धर्धतारकालोका ।

कामस्यापि दुर्विपहा दृष्टिनिपाता शशिसुर्याः ॥]

सुरतंजागरान्निद्रालस अत एव, परिघूर्णनशील, अनुरागातिशयातिर्यग्बलद्धर्धतारकालोको येषु तादृशा शशिसुर्या दृष्टिप्रपञ्चा कामस्यापि धैर्यच्युतिं कुर्वन्ति, किं पुनः कामानुराणामिति भावः ॥

काप्यात्मनो जारं प्रत्यनुरागं चिरश्रोणितप्रियागमने च निष्प्रत्याश्रिता दर्शयन्ती हृदयोपालम्भच्छलेनाह—

जीविअसेसाइ मए गमिआ कँहँ कँहँ वि पेम्मदुदोली ।

एहिं विरमसु रे डडुद्धिअअ मा रजसु कहिं पि ॥ ४९ ॥

१ 'अवहीरणवसविसंतुल' इति ग-पाठ २. 'अवधीरितमविसप्तुल' इति ग-पाठ .  
३. 'धण्णाउ ताउ' इति ग-पाठ ४ 'दीर्घश्वास' इति ग पाठ . ५ 'क्लेशात्प्र' इति घ पाठ . ६ 'धन्यास्तु तास्तु' इति घ पाठ . ७ 'परिघूर्णमान' इति ग-पाठ .



[जीवितशेषया मया गमिता कथं कथमपि प्रेमैदुर्दोली ।  
इदानीं विरम रे दग्धहृदय मा रंज्यस्व कुत्रापि ॥]

पाशानामन्योन्यबन्धकृतो दुर्मौख्यो प्रन्धिर्दुर्दोलीति प्रसिद्धा । विरहक्षोणतया जी-  
वितशेषया मया प्रेमदुर्दोली तस्य मम च प्रेम्णः परस्परानुबन्धित्वादुर्मौखो प्रन्धिः कथं  
कथमपि आगमिष्यतीति प्रत्याशया सखीजनाभ्यर्धनया आत्मवधपातकभयाथ गमिता ।  
एतेन प्रियागमनप्रत्याशाल्याग. सौभाग्यं दृढभक्तिता चाल्मन. सूचिता । तादृशविरहदा-  
हमनुभूय पुनरभ्यत्रानुरज्यस इति सनिर्वेदमाह—रे दग्धहृदयेति । इदानीं विरम मा  
रज्यः कुत्रापि इत्यनेनानुरक्तस्य निवेद्यायोगाच्चार प्रत्यनुरागः सूचितः ॥

नायकस्यानुरागवृद्धये दूती कस्याश्चिदन्तनसक्षतावलोकनकौतुकमाह—

अज्जापे णवणह्वररअणिरीकरणे गरुअजोव्वणुत्तुङ्गम् ।

पडिमागअणिअणअणुप्पलच्चिअं होइ अणवट्टम् ॥ ५० ॥

[आर्याया नवनसक्षतनिरीक्षणे गुरुकयौवनोत्तुङ्गम् ।

प्रतिमागतनिजनयनोत्पलार्जितं भवति सैनपृष्ठम् ॥]

आर्याया वरक्षियाः ॥

स्त्रीसेवाविमुखं नायकमभिमुपयितु विपरीतरतानभिज्ञां च नायिका शिक्षयितु निस्-  
प्रायं दूती भगवत कृष्णस्य लक्ष्म्याथ कामपरतां नमस्कारच्छलेनाह—

तं णमह जस्स वच्छे लच्छिउमुहं कोरैथहम्मि संकन्तम् ।

दीसइ मअपरिहीणं ससिबिम्बं सूरविम्बं व्व ॥ ५१ ॥

[तं नमत यस्य वक्षसि लक्ष्मीमुखं कौस्तुभे संकान्तम् ।

दृश्यते मृगपरिहीन शशिविम्बं सूर्यविम्बं इव ॥]

विपरीतरतावस्थायां यस्य वक्षसि कौस्तुभे प्रतिबिम्बित लक्ष्मीमुखं सूर्यविम्बे प्रति-  
बिम्बित निष्कलं चन्द्रविम्बनिव दृश्यते तं नमतेलन्वयः ॥

प्रिवाननुयार्थं दूती कलहान्तरितामाह—

मा कुण पडिचक्करमुहं अणुणेहि पिअं पसाअलोहिल्लम् ।

अइगहिअगरुअमाणेण पुत्ति रासि व्व ठिज्जिहिसि ॥ ५२ ॥

- १. 'प्रेमदुर्गाया' इति घ-पाठः. २. 'रज्ज' इति घ-पाठः. ३. 'ईश्वरमुताया' इति  
ग पाठः. ४. 'सनतट' इति ग-पुस्तके, 'सनपट' इति च घ-पुस्तके पाठः. ५. 'कोत्य  
& अग्नि' इति ग पाठः. ६. 'विम्बे' इति ग-पाठः. ७. 'अणुणेणु' इति ग-पाठः.

[मा बुरु प्रतिपक्षस्य सपत्नीजनम्यावकाशदानेन सुरा मा बुरु । प्रसादलोभयुतम् ।  
अतिगृहीतगुरुकमानेन पुनि राशिरिव क्षीणा भविष्यति ॥]

हे पुत्रि, प्रतिपक्षस्य सपत्नीजनम्यावकाशदानेन सुरा मा बुरु । प्रसादाभिलाषिण  
प्रियमनुनय । अतिगृहीतगुरुकमानेन राशिरिव क्षीणा भविष्यति । मापादिराशिरुपरि  
पापाणादिना नियन्त्रितो यथा क्षीयत इत्यर्थः । अनुनयउन्धोऽसौ मानी न त्वामनुनेष्य-  
तीति भावः ॥

विरहोत्फण्डिताया विरहाति व्यञ्जयन्ती दूती तत्कान्तमाह—

विरहकरवत्तदूसहफैलज्जन्तम्मि तीअ हिअअम्मि ।

अंसू कज्जलमइळं पमाणमुत्तं व्य पडिहाइ ॥ ५३ ॥

[विरहकरपत्रदु सहर्षोत्थमाने तस्या हृदये ।

अश्रु कज्जलमलिन प्रमाणसूत्रमिन् प्रतिभाति ॥]

प्राकृते पूर्वनिपातानियमाद् महविरहलक्षणकरपत्रेण पाठ्यमाने तस्या हृदये कज्जल-  
मलिनमश्रु प्रमाणसूत्रमिन् प्रतिभातीति सवन्ध । तदेव विरहविधुरामनुकम्पस्येति  
भावः ॥

विदग्धनायिकासगमोत्सुकं नायक दूती प्ररोचयितु निवेधमुखेनाह—

दुण्णिक्खेवअमेअं पुत्तअ मा सादसं कैरिज्जासु ।

ईत्थ गिहिताई मण्णे हिअआई पुणो ण लब्धन्ति ॥ ५४ ॥

[दुर्निक्षेपकमेतत्पुत्रक मा साहस करिष्यति ।

अन निहितानि मन्ये हृदयानि पुनर्न लभ्यन्ते ॥]

पुत्रकेति विश्वासार्थं सन्नेहसबोधनम् । एतद्दृढनिक्षेपरूप साहस मा करिष्यति ।  
चतो दुर्निक्षेपकमेतदिति योचना । लोकेऽपि यो निक्षेप पुनर्न लभ्यते स दुर्निक्षेप इत्यु-  
च्यते । एतेन चाद्वा चतुर्गसैन्दर्यादिभिर्नायिकाया मनोहरत्व व्यज्यते ॥

रतावसाने नायिकाया अपरितोषमाकलय्य विलक्ष नायक चोचयितु दूती तस्यावि-  
रततादोषपरिहारार्थमाह—

णिध्वुत्तरआ वि वहु मुरअविरामट्टिई अआणन्ती ।

अविरअहिअआ अण्णं पि किं पि अत्थि त्ति चिन्तेइ ॥ ५५ ॥

१. 'प्रसादलोभयुतम्' इति ग-पाठ. २. 'क्षीयसे' इति ग-पाठ. ३. 'पाडि-  
ज्जन्तस्स तीअ हिअअस्स' इति ग-पाठ. ४. 'पाठ्यमानस्य तस्या हृदयस्य' इति  
ग-पाठ. ५. 'करेज्जासु' इति ग-पाठ. ६. 'इत्थ' इति ग-पाठ. ७. 'उणो' इति  
ग-पाठ. ८. 'इद' इति ग-पाठ. ९. 'विण्णुत्त' इति र-पाठ.

[निर्वृत्तरतापि बधूः सुरतविरामस्थितिमजानती ।  
अविरतहृदयान्यदपि किमप्यस्तीति चिन्तयति ॥]

एतेन नायकेच्छानुपालनं भोग्यं च नाधिक्यायाः सूचितम् ॥  
भुजंगजनं रोचयितुं कुट्टनीं वेदयाप्रेमस्तुतिमाह—

नन्दन्तु सुरभुजंगसतहावहराई सअल्लोअस्स ।  
बहुकैअवमग्गविणिम्मिआई वेसाणं पेम्माई ॥ ५६ ॥

[नन्दन्तु सुरतभुजंगसतृष्णापहराणि सकल्लोकस्य ।  
बहुकैतयमार्गविनिर्मितानि वेद्यानां प्रेमाणि ॥]

उत्तममध्यमाधमरूपसकल्लोकस्य सुरते यः सुखरसस्वप्नं या तृष्णा तदपहारकानि  
यथाभिलषितसपादकानि तथा बहुभिः कैतवमार्गैर्हंसितशुष्करदितचाद्ब्रमुसैर्विनिर्मिता-  
नि वेद्यास्त्रीणां प्रेमाणि नन्दन्तु । लामसत्कारादिमात्रि भवन्त्वित्यर्थः । 'सुरतरसरमस-  
तृष्णापहराणि' इति पाठे सरमसानि च तानि तृष्णापहराणि पेटि कर्मधारयः ॥  
क्रिमिति त्वं कृशासीति सहार्थं नायकेन पृष्टा विरहोत्कण्ठिता तमाह—

अप्पत्तमण्णुदुक्खो किं मां क्विसिअत्ति पुच्छसि हसन्तो ।  
पावसि जइ चलचित्तं पिअं जणं ता तुइ फहिस्सम् ॥ ५७ ॥

[अप्राप्तमण्युदुःखं किं मां कृतेति पृच्छसि हंसन् ।  
प्राप्स्यसि यदि चलचित्तप्रिये' जनं तदा तव कथयिष्यामि ॥]

प्रियापतापजचित्तशोभो मण्युः । न प्राप्त मण्युहृत दुःखं येन तादृशस्त्वं हसन्सन्  
किं मां कृतेति पृच्छसि । हसन्प्रियनेन खेहस्य हृदयवाग्मता सूचिता । तदेति ।  
इदानीं कथितेऽपि न ते प्रत्ययो भविष्यति । तवास्थिरखेहत्वान्ममेव दशेति भावः ॥

विरागत जारं विरहोत्कण्ठिता सतिर्वेदमाह—

अवहस्सियऊण सद्धिजम्पिआई जाणं ऐइ ण रमिओसि ।  
एआई ताई सोकराई संसओ जेहि जीअरम् ॥ ५८ ॥

१. 'विनिर्वृत्तरता' इति घ-पाठः. २. 'बहुमग्गविणिम्मिआइ' इति ग-पाठः.  
३. 'सुरभाइ' इति ग-पाठः. ४. 'सुरतशुमरण' इति घ-पाठः. ५. 'बहुपतिअरत'  
मार्गविनिर्मितानि' इति ग-पाठः. ६. 'वेद्यावनिदाना' इति घ-पाठः. ७. 'सुराणि'  
इति ग-पाठः. ८. 'मानदुःख' इति ग-पाठः. ९. 'इसमानः' इति ग-पाठः.  
१०. 'प्राप्स्यसि सावचलचित्तं प्रियं जनं तावत्प्रियाणि' इति घ-पाठः. ११. 'प्रियाजनं'  
तत्सते कथयिष्ये' इति ग-पाठः. १२. 'इए तुमं रमिओ' इति ग-पाठः.

[अपहस्तयित्वा सखीजल्पितानि येषां कृते न रमितोऽसि ।  
एतानि तानि सौख्यानि संशयो वैर्जीवस ॥]

अस्तु तावत्सुखम्, त्वद्विरहादिदानीं जीवितमेव सद्विग्धमिति भावः ॥  
प्रतिवेशिन्यालापच्छलेन दूती मधूकनिकुञ्जे दत्तसकेतं जारमाह—

ईसालुओ पई से रत्तिं महुअं ण देइ उच्चेउम् ।

उच्चेइ अप्पणं शिअ माए अइउज्जुअसुहाओ ॥ ५९ ॥

• [ईर्ष्याशीलः पतिस्त्वसा रात्रौ मधूकं न ददात्युच्चेतुम् ।

उच्चिनोत्यात्मनैव मातरतिऋजुकस्वभावः ॥]

गृहे जायमानस्य जारसमागमस्वाज्ञानादजुखभावत्वम् । मधूकनिकुञ्ज मा गच्छ  
तस्या गृहमेव गच्छेति जारं प्रति व्यज्यते ॥

भूतवप्राश्रयं बलादाकृष्यानुनयमगृहीत्वा गच्छन्तीं नायिका नायक आह—

अच्छोडिअवत्थद्वन्तपत्थिए मन्धरं तुमं वच्च ।

चिन्तेसि थणहराआसिअस्स मज्झस्स वि ण भङ्गम् ॥ ६० ॥

[बलादाकृष्टवस्त्रार्थान्तप्रस्थिते मन्धर त्वं व्रज ।

चिन्तयसि स्तनभरायासितस्य मध्यस्यापि न भङ्गम् ॥]

बलादाकृष्टं वस्त्रार्थान्तं वस्त्राश्रयो यया सा चासौ प्रस्थिता चेति कर्मधारयः ।  
अस्तु तावन्मम प्रणयमहः, इतगमनेन स्तनभरायासितस्य मध्यस्यापि भङ्गं न चिन्त-  
यसि अहो ते मौग्यमिति भावः ॥

नागरिकः सहचरं प्रत्यागतनो विज्ञत्वहयापनाय पथिकप्रपापालिकोरन्योन्यानुसा-  
गमाह—

उद्वच्छो पिअइ जलं जह जह विरलहुली चिरं पहिओ ।

पावालिआ वि तह तह धारं तणुइं पि तणुएइ ॥ ६१ ॥

[उर्ध्वाक्षः विनति जलं यथा यथा विरलाहुलिश्चिरं पथिकः ।

प्रपापालिकापि तथा तथा धारां तनुकामपि तनुकरोति ॥]

पिपासापगमेऽपि अलपानच्छलेन मुखावलीकनकुतूहलादूर्ध्वाक्ष पथिको यथा यथा

१. 'अपहस्त' इति घ-पाठः. २. 'इते त्वं रमित' इति ग-पाठः. ३. 'ईर्ष्याल' इति ग-पाठः. ४. 'अस्याः' इति ग पाठः. ५. 'ऋजुकस्वभावः' इति घ पाठः. ६. 'अच्छोडिअ' इति ग-पाठः. ७. 'बलादा' इति ग-मुस्ताके नास्ति. ८. 'तन्वी' इति तन्वी इति ग पाठः.

वत्तगलनाथ विरलाहुतिः संखिरं जलं विवति तथा तथा प्रपातिकापि तदनुशोषण-  
न्मुखालोकनकुतूहलार्थं तनुकामपि धारा तनूत्तरोत्तिलार्थः ॥

शोऽपि वानुनः वानपि दुर्लभां नायिकायुगलान्तरेण प्राप्तुमसमर्थो मिश्राचार्य-  
व्याजेन तदीयवृह गतः । सा च तं दृष्ट्वा स्वयमेव भिक्षां दातु गता । ततो भिक्षया  
नाथ निर्गता वधू विस्मिति चिरवतीति जिज्ञासमाना श्वधुं प्रति उपगती भिक्षाचार्य-  
शादाप्रोरन्योन्यायुरागमाह—

भिच्छाअरो मेच्छइ णाहिमण्डलं सावि तस्स मुहअन्दम् ।  
तं चटुअं अ करइं दोहं वि कामा विलुम्पन्ति ॥ ६२ ॥

[भिक्षाचरः प्रेक्षते नाभिमण्डलं सापि तस्य मुखचन्द्रम् ।  
तैश्चटुकं च वरइ द्वयोरपि काका विटुम्पन्ति ॥]

चटुकं भिक्षादानशयम् । दुर्बामिति यावत् । वरइ भिक्षाग्रहणार्थं च काका विटुं  
पन्ति । तद्रूपमर्थं सादृशीत्यर्थः । द्वयोः परस्परदर्शनमाश्रेयानुरागप्रसङ्गमेव दर्शन-  
कानां निर्भयत्वमिति भावः ॥

शिवमनुनेतुं प्ररोचयन्ती सरती कलहान्तरितामाह—

मनोरथप्राप्ताखिव मनोरथसिद्धिहेतावपि मनोविकारा भवन्तीति निर्दर्शयन्नागरिक-  
सहचरमाह—

फलहीवाहणपुण्याहमङ्गलं लङ्गले कुणन्तीय ।

असईअ मणोरहगम्भिणीअ हत्था थरहरन्ति ॥ ६५ ॥

\* [कार्पासीक्षेत्रकर्पणपुण्याहमङ्गलं लङ्गले कुर्वत्या ।

असत्या मनोरथगम्भिण्या हस्तौ थरधरायेते ॥]

कार्पासीक्षेत्रकर्पणार्थं पुण्याहं गुमदिने यन्मङ्गलमालेपनादिदानं तन्मङ्गले कुर्वत्या  
नोरथगम्भिण्या अस्यां कार्पासवाक्या मया रन्तव्यमिति हृदि न्यस्तमनोरथाया अस-  
या कुलटाया हस्तौ थरधरायेते कम्प प्राप्तः ॥

सत्या शिक्षार्थं सखोजनो धूर्ताचरितमाह—

पहिउडूरणसङ्काउलाहिँ असईहिँ बहलतिमिरस्स ।

आइप्पणेण णिहुअ बहस्स सित्ताई पत्ताइ ॥ ६६ ॥

[पैथिकच्छेदनशङ्काकुलाभिरसतीभिर्वहलतिमिरस्स ।

आलेपनेन निमृत्त वटस्य सित्तानि पत्राणि ॥]

उडूरणं छेदनम् । अन्धकारबहुलत्वेन सकेतस्थानस्य वटस्य पत्राणि पथिकारुटे-  
तीति शङ्का आङ्गुलिभिरसतीभिरालेपनेन द्रुततण्डुलपिष्टेन निमृत्त सित्तानि ।  
वपिष्ठाशङ्का पान्या न च्छेत्सन्तीति भावः ॥

दन्तधावनार्थं सकेतस्थानकरञ्जशास्त्रामपकं धार्मिकं कुलगा सोशाग्ममाह—

भञ्जन्तस्स वि तुह् सग्गामिणो णइकरञ्जसाहाओ ।

पौआ अज्ज वि धम्मिअ तुह् कहँ धरणि विअ ठिवन्ति ॥६७॥

[भ्रमतोऽपि तत्र स्वर्गगामिनो नदीकरञ्जशाखा ।

पौदावपापि धार्मिकं तत्र कथं धरणीमेव स्पृशत ॥]

कन्तैव स्वर्गं विगमिषुत्प्रपादिकया स्थितो दूरस्थशाखाभङ्गं कुर्वन् कथमपापि  
स्पर्शे न गतोऽमीति भावः ॥

१ 'फलहीवाहणपुण्याह-' इति ग-पठ . २ 'थरधरायेते' इति ग घ-पठ .  
३ 'पथिकोऽनन' इति ग पाठ . ४ 'आनर्पणेन' इति घ पठ . ५ 'भयं कइ पाआ  
भाव वि धम्मिअ धरणि' इति ग-पठ . ६. 'भङ्गमानम्य' इति ग घ पठ  
७ 'शाखाया' इति ग-पुस्तके, 'शाखाभि' इति घ घ-पुस्तके पठ . ८. 'तत्र कथं  
पौदावपापि धार्मिकं धरणीमेव' इति ग-पठ . ९ 'अपि' इति घ-पठ .

नायिकान्तरप्रलोभनार्थमात्मनः स्थिरचेहतां कानुकतां च नागरिकः सदृशमाह—

अच्छउ दौव मणहरं पिआइ सुहदंसणं अइमहणघम् ।

तग्गामछेत्तसीमा वि झत्ति दिट्ठा सुहावेइ ॥ ६८ ॥

[अस्तु तावन्मनोहरं प्रियाया सुखदर्शनमस्तिमहार्घम् ।

तद्ग्रामक्षेत्रमीमांषि झटिति दृष्टा सुखयति ॥]

सा यत्र प्राप्ते वसति तस्य प्रामस्य यत्नेन तस्य मीमांषीत्यर्थः ॥

मृतायामपि जायायां हृदय प्रेम्णः प्रसक्तान्याजेन कावि मन्दभेद नायकमभि-  
मुत्तीकर्तुमाह—

कुलटाया सकेतस्थानगमनस्वरार्थं तत्राच्यगमननिषेधार्थं च द्विती रात्रिकापत्रचर्य-  
णाकुलमर्कटापदेशेन कामार्तनायकस्य सकेतपतस्य स्थितिमाह—

गोलाणइण कच्छे चकरन्तो राइआइ पत्ताइ ।

उप्पडइ मक्कडो खोक्खएइ पोहृ ह पट्टेइ ॥ ७१ ॥

[गोदावरीनद्या कच्छे चरन्त्यरात्रिकाया पत्राणि ।

उत्पतति मैर्कट खोक्खशब्दं करोत्युदरं च ताडयति ॥]

मुहुमुहुरुद्धीविक्रया त्वां पश्यस्त्वयि विलम्बमानायां कामार्ति नाटयन्नस्तीति भावः ॥  
पृथुमुभगाया सखी तदलङ्कारेणान्यामसमाना मण्डयितुमिच्छोस्तत्कान्तस्याक्षेपार्थं  
स्वभर्तुं श्रेहोचितविधिस्थैर्यमाह—

गहवइणा मुअसैरिहइण्डुअदाम चिर वहेऊण ।

वैगसआइ णेउण णवरिअ अज्जाघरे वड्डम् ॥ ७२ ॥

[गृहपतिना मृतसैरिर्मृहदृष्ट्यादां चिरमृद्धा ।

वर्गशतानि नीत्रानन्तरमार्यागृहे बद्धम् ॥]

इण्डुमशब्दो मृहदृष्ट्यायां वर्तते । गृहपतिना मृतसैरिभस्य मृहदृष्ट्यायुक्तं दामं चिर-  
मृद्धा तत्सदृशापरमहिपालकरणार्थं वर्गशतान्यनेकमहिपयूयानि नीत्रां तत्सदृशापरम-  
हिपाप्राप्त्या आर्यागृहे अण्डिकायतने बद्धमित्यर्थः । मम भर्ता मृतस्य पशोरपि श्रेहवशे-  
नैव कृतम्, ख तु जीवन्नामेव श्रियभार्यायां तदलङ्कारेणान्यामतदनु रूपामलङ्कृतुमिच्छ-  
तीत्यनुचितमेतदिति भावः ॥

सपरनीसपदुं चोद्विन्नामभिनवमुभगां सान्त्वयती सखी विभवादपि सौभाग्यं गरीय-  
दिति प्रदर्शयती आह—

सिद्धिपेहुणावअसा बहुआ वाहरस गँव्विरी भमइ ।

गअमोत्तिअरइअपसाहणार्णं मज्झे सवत्तीणम् ॥ ७३ ॥

[सिद्धिपिच्छान्तसा चपूर्यापिस्य गँव्विता भ्रमति ।

शैजमौक्तिकरचितप्रसाधनाना मध्ये सपत्नीनाम् ॥]

१ 'सादन्' इति घ-पाठ २ 'मक्क' वासुते उदरं आहति' इति घ-पाठ  
३ 'इण्डुअइ' इति ग-पाठ ४ 'वैगसआइ' वि-वेण णवरं अवाहरे वड्डम्'  
इति ग-पाठ ५ 'सैरिभइण्डुअदाम चिरे' खोण । युपशतान्यपि नीत्रा' इति ग-पाठ  
'इण्डुमशब्दो षोडश्यां वर्तते । षोडश मालामित्तो लोहप्रतिद्व एव । वर्गशतं' पदु-  
गमूहे वर्तते' इति कुडपालदेव ६ 'गँव्विरी भमइ । गअमोत्तागद्विजराया' इति  
ग-पाठ ७ 'गँव्विरी' इति घ-पाठ ८ 'ग'मुक्काएह'नप्रसा-' इति ग-पाठ



येन करिवरान्दत्त्वा तत्कुम्भमुक्ताफलैर्युय प्रसाधिता स एवेदानीं मत्सभोगातिप्रस  
क्षिणीणो मयूरमात्रमारणक्षम सवृत्त इति सौभाग्येन जातगर्वा भ्रमतीत्यर्थं ॥  
कुटनी भुजगप्रोत्साहनार्थमाह—

वङ्कच्छिपेच्छिरीण वङ्कुलविरीणं वङ्कभमिरीणम् ।

वङ्कहसिरीणं पुत्तज पुण्णोहि जणो पिओ होइ ॥ ७४ ॥

[वक्राक्षिप्रेक्षणशीलाना वक्रोलपनशीलाना वक्रभ्रमणशीलानाम् ।

वक्रहासशीलाना पुनक् पुण्यैर्जन प्रियो भवति ॥]

वक्रत्वादे कटाक्षनिरीक्षण साभिप्रायवचनप्रयोगो विभ्रममहुरं भ्रमणमाशयनिदशक  
हसित चाथ । पुण्यैरिति धन्यस्त्वमिति येनैवविधापि मम दुहिता त्वा प्रत्येवमनुरक्तेति  
भाव ॥

विजने गोदावरीतीरलतागृहे ध्यानाद्यवस्थित्या सकेतविप्रकारिण धार्मिकं पुत्र्या  
काचिदाह—

१ भ्रम धम्मिअ धीसत्थो सो सुणहो अज्ज मारिओ तेण ।

गोलाअडविअडकुडङ्गवासिणा दरिअसीहेण ॥ ७५ ॥

[भ्रम धार्मिक विसव्य स शुनकोऽथ मारितस्तेन ।

गोदावरीतटविकटकुडवासिना दससिहेण ॥]

अत्र लतागृहे सिंहसंचारेण गमननिषेधो व्यज्जत ॥

निदिताभिप्रायोऽपि मयति बोधयन्वधिपरिहासशील कमपि युवानमाह—

वाएरिएण भरिअ अच्छि क्कणऊरउत्पलरण ।

पुंक्कन्तो अयिइह पुंम्बन्तो को सि देवानम् ॥ ७६ ॥

[वातेरितेन भृतमक्षि कर्णपूरोत्तरजसा ।

पूत्तुयंजवितृष्ण सुम्बकोऽपि देवानाम् ॥]

वातेरितेन कर्णावतक्षीकृतस्त्रोत्तरजसा भृत नायिकाया अक्षि तद्रूपोपनयनार्थं  
पूत्तुयन् पूत्तुकारव्याचनवावितृष्ण सुम्बन् तदवगोचनकीकुफनानिभिपनयत्वाद्देवानां  
मभय कृतमो दवस्त्वम् । प्रसिद्धानां देवानामेवविधपुण्यकर्मभाविनामायां ति भावः ॥

१ 'वक्रोलपनशीलानां' इति ग पाठ, 'वक्रभ्रमणशीलानां' इति च ग पाठ

२ 'धम्मिअ भम इति ग-पाठ ३ 'धार्मिक भ्रम विश्रव्य स आ व्यापारिण  
स्तेन । गोदावरीतटविकटकुड' इति ग-पाठ ४ 'कण्ठरइअउत्पल' इति ग-पाठ.

५ 'पुंक्कन्तअ' इति ग पाठ ६ 'सुम्बन्तअ' इति ग पाठ ७ 'कर्णरविणोरल

रजसा इति ग-पाठ

कान्तानयनत्वरार्थं मदनार्तिमभिनयन्ती प्रोषितभर्तृका सखीमाह—

सहि दुम्मेन्ति कलम्याइ जह म तह ण सेसकुसुमाइ ।

पूण इमेसु दिअहेसु वहइ गुडिआधणु कामो ॥ ७७ ॥

[सखि बंधयन्ति कदम्बानि यथा मा तथा न शेषतु सुमानि ।

\* नूनमेपु दिवसेपु वहति गुटिकाधनु काम ॥]

गुटिकाकारेण कदम्बकुसुमेन कुममाद्यो मा तापयतीति भाव । एतेन वसन्तापे क्षयापि वषामाले विरहिणा दु सह इति ध्वनितम् ।

विरहोत्कण्ठिताया सखी स्त्रीवधपातकभय दर्शयन्ती तत्कान्त तदुपगमनार्थमाह—

णाह दई ण तुम पिओ त्ति को अह्ण एत्थ वावारे ।

सा मरइ तुज्झ अँअसो तेण अ धम्मक्खर भणिमो ॥ ७८ ॥

[नाह दूती न त्व प्रियं इति कोऽस्माकमत्र व्यापार ।

सा श्रियते त्रिगणश्लोत्रं च धर्माक्षरं मंगलम् ॥]

कोऽस्माकमिति प्रियत्वात्तत्रैव तदनुकम्पनमुचितमित्याशय ॥

कृतचरणपातमनुनयन्त कात सण्डिता युवत्यन्तरसङ्गचिह्न दृश्यन्ती सोपालम्भमाह—

तीअ मुहाहिं तुह मुई तुज्झ मुहाओ अ भइ च्छणम्मि ।

ईरथाहत्थीअ गओ अइदुक्खरआरओ तिलओ ॥ ७९ ॥

[तस्मा मुखात्तत्र मुखं तव मुखाच्च मम चरणे ।

हस्ताहस्तिकया गतोऽतिदुर्धकरकारकस्तिलक ॥]

अत्र तिउरीपालम्भच्छलेन युवत्यन्तरसङ्गचिह्नमाविष्कृतम् ॥

इयमस्मिन्नुरक्तेति नागरिक सहचरमवगमयशाह—

सामाइ सोमलिज्जइ अद्धच्छिपलोइरीअ मुहसोहा ।

जम्बूदलकअक्खणावअसभैरिए हलिअपुत्ते ॥ ८० ॥

१ 'कअम्बाइ' इति ग पाठ २ 'दिअसेसु' इति ग-पाठ ३ 'दुमनायते' इति ग पाठ, 'दुमनायति' इति घ-पाठ ४ 'विरहे' इति ग-पाठ ५ 'वधम' इति ग पाठ ६ 'तव विरहे' इति ग घ पाठ ७ 'भणामि' इति ग पाठ ८ 'हत्थिव्व' इति ग पाठ ९ 'चरण' इति ग पुस्तके, 'चरणयो' इति च घ पुस्तके पाठ. १० 'दुक्खर' इति घ पाठ ११. 'सामलीए' इति ग पाठ १२ 'धनिरे हटिअउत्ते' इति ग-पाठ

[श्यामाया श्यामलायतेऽर्धाक्षिप्रलोकनशीलाया मुखशोभा ।

जम्बूदलवृत्तकर्णावैतसनमणशीले हलिकपुत्रे ॥]

सर्वे तस्थानसूचकेन जम्बूदलवृत्त कृत कर्णवतसो येन तारशब्दासौ भ्रमणशील  
श्वेति कर्मधारय । तथाभूते हलिकपुत्र सति निह्वानार्धमधाधिप्रेक्षणशीलाया श्यामाया  
मुखशोभा सर्वे तसमवल्ङ्घनवैलक्षण्येदेन च श्यामलायते । स्वयमेव मलिना भवती  
त्यथ ॥

कल्हा तरिता कातानुनयाय दूतीमाह—

दूइ तुम विअ कुसला ककरडमवआई जाणसे वोड्डुम् ।

कण्हूइअपण्डुरं जह ण होइ सह त केंरेज्जासु ॥ ८१ ॥

[दति त्रमेव पुशला कैंकशमृदुकानि जानासि वत्तुम् ।

कण्हूयितपाण्डुर यथा न भवति तथा त करिष्यसि ॥]

यथा कण्हूयनकौशलेन कण्हू शाम्यति वैष्णव च न भवति, तथा त्वमपि मृदुकु  
केन तथा वक्ष्यसि यथासौ नोद्विषत मा च भवत इत्यस्य ॥

कमपि बहुबल्लभ नायक प्रति दूती कस्याधिदुरागमाह—

महिलासहस्रभरिण तुह हिअए सुंइअ सा अमाअन्ती ।

दिअह अणण्णकम्मा अङ्ग तणुअ पि तणुएइ ॥ ८२ ॥

[महिलासहस्रभृते तत्र हृदये सुंभग सा अमाती ।

दिवससर्जनयकर्मा अङ्ग तनुवमपि तदूफ्रोति ॥]

अमाती स्थानमलभमाना । दिनस व्याप्य । प्रतिदिनमिति यावत् । प्रतिदिन  
स्वत्समागमोपायचितया क्षीयत इत्यथ ॥

कोऽपि कस्याधिदुरागातिशय सूत्रयसहचरमाह—

रणमेत्त पि ण पिट्टइ अपुदिअहविइण्णगरअसतावा ।

पच्छण्णपात्रसङ्के व्व सामली मज्झ हिअआओ ॥ ८३ ॥

१ 'श्यामायते श्यामलाया इति ग पाठ २ 'वतसे भ्रमति इति ग पाठ  
३ 'वत्तुम् । कण्हूइपण्डुराण इति क ख पाठ ४ 'उपेज्जासु' इति क पाठ ५ 'क  
टिनमृदुकानि इति ग पाठ ६ 'नानाप इति घ पाठ ७ 'कण्हूनिपाण्डुरं' इति  
क ख पुस्तकयो, 'कण्हूयति पाण्डुर' इति च घ पुस्तके पाठ ८ 'सुंइअ टाणम  
लहती इति ग पाठ ९ 'सुभगस्थानमलभती' इति ग पाठ १० 'अनन्यव्या  
पारा' इति ग पाठ ११ 'हिअआहि' इति ग पाठ

[क्षणमात्रमपि नैषयात्पुनरुदिवसवितीर्णगुरुकसंतापा ।

प्रच्छन्नपापशङ्केव श्यामला मम हृदयात् ॥]

अनुदिवसे वितीर्णो गुरुकः संतापो विरहदृष्टः पक्षे अनुस्मरणकृतञ्च यथा सा ।  
तथा श्यामला श्यामा ॥

वापि मुशीला नाथिवा कृतापराधमनुनयन्तं कान्तं सप्रणयरोपमाह—

अञ्जअ णाहं कुपिआ अवऊहसु किं मुहा पसाएसि ।

तुह मण्णुसमुप्पाअएण मज्झ माणेण वि ण कज्जम् ॥ ८४ ॥

[अञ्ज नाहं कुपिता उँपगूह किं मुधा प्रसादयसि ।

तव मन्धुममुत्पादकेन मम मानेनापि न दार्यम् ॥]

अनभिज्ञे स्वामिनि मानो निष्पल इति भावः ॥

विरहोत्कण्ठितायाः सखी तस्कान्तमाह—

दीहुहपउरणीसासपआविओ वाहसलिलपरिसित्तो ।

सादेइ सामसवलं च तीएँ अहरो तुह विओए ॥ ८५ ॥

[दीर्घोष्णप्रचुरनिःश्वसंप्रतप्तो वाष्पसलिलपरिसिक्तः ।

सौघयति श्यामशबलमित्र तस्या अधरस्तनं वियोगे ॥]

श्यामशबलं प्रतविशेषः । यत्रामौ प्रविरय जले प्रविश्यते ॥

वापि मध्याह्नाभिसारिका 'सकेतितहदतीरलतागृहमह मता, त्वं तु न गतः' इति जारं  
प्रति प्रतिपादयन्ती सत्यपि हृदयस्य स्थिरधेदता सज्जनहृदयप्रशशाद्येनाह—

सरए महद्धदाणं अन्ते सिसिराईं वाहिरुहाइं ।

जाआईं कुविअसज्जणहिअअसरिच्छाईं सलिलाइं ॥ ८६ ॥

[शरदि महाहृदानामन्तः शिशिराणि नहिरुष्णानि ।

जातानि कुपितसज्जनहृदयसैदक्षाणि सलिलानि ॥]

दूती कस्याधिन्मौगध्यवर्णनच्छलेन प्रथमाभिसारस्वीकारं सूचयति—

आअस्स किं णु करिदिम्मि किं वोळिस्सं क्हं णु होइहि[इमि]ति ।

पढमुंगगअसासहआरिआइ हिअअं थरहरेइ ॥ ८७ ॥

१. 'नापति' इति ग पाठः. २. 'उज्जुअ' इति ख-पाठः. ३. 'कमुक' इति घ पाठः. ४. 'अवगूहसु' इति ग-घ-पाठः. ५. 'प्रतापितो' इति घ-पाठः. ६. 'परि-  
पिक्तः' इति ग-घ-पाठः. ७. 'साधयत्यभिसानीयप्रतमिव' इति ग-पाठः. ८. 'क्षीतानि'  
इति ग पाठः. ९. 'सदृशानि' इति ग घ पाठः.

[आगतम् किं नु करिष्यामि किं वैक्ष्यामि कथं नु भविष्यति [इदम्] इति ।  
प्रथमोद्गतसोहसरारिकाया हृदयं यरथरायते ॥  
इदमभिसरणगाहसम् । यरथरायते कम्पते ॥

कालदान्तरिताया महिलत्वदोषपरिहारार्थं द्वती तरकान्तमपृहीतानुनयविलक्षमाह—

णेउरकोटिविलग्नं चिउरं दहअस्स पाअपडिअस्स ।  
हिअअं पउर्यमाणं उम्मोअन्ति विअ कहेइ ॥ ८८ ॥

[नूपुरकोटिविलग्नं चिउरं दयितम् पादपतितम् ।

हृदयं प्रोषितमानमुन्मोचयन्त्येव कथयति ॥]

नूपुरकोटिविलग्नं दयितस्य विकुरमुन्मोचयन्त्येव हृदयं प्रोषितमानं कथयतीति  
संबन्धः । अयमाशयः—असङ्गितप्रणाया मानिष्यो वाचा मुत्तरागेण वानाविप्लृतं  
प्रसादं चेष्टाविशेषेणः निष्पुर्वन्ति । तथा च नूपुरावलाप तत्र केसामुन्मोचयन्त्येव हृदपरि-  
रम्भलोउपं हृदयं कथितमेव । त्वया तु तदनु रूप न कृतम् । अतस्तवैवेदमवैदग्ध्यम्,  
न तु तस्या महिलत्वदोष इति ॥

द्वती कम्पाधिदनुरागातिशय प्रविपादयन्ती नायकमाह—

सुग्गङ्गराअसेसेण सामली तह तरेण सोमारा ।  
सा फिर गोळाऊले हाआ जम्बूकसाएण ॥ ८९ ॥

[तवाङ्गरागशेषेण श्यामला तथा खरेण मुकुमारा ।

सा किल गोदाकूले स्नाता जम्बूकपायेण ॥]

कृताङ्गोद्गतनस्य तवाङ्गरागशेषेण स्त्रीश्लेन जम्बूकपायेण सर मुकुमारास्त्री स्नाते-  
त्यर्थः । किलेति स्नानादची किलशब्दः । स्नानच्छलेन तथा त्वदङ्गसङ्गाभिलाषिण्या  
तवाङ्गरागोच्छिद्यप्रहृष्टं कृतमिति भावः ॥

बल्लभस्य गोष्ठीनायकता वर्णयन्ती विरहोत्कण्ठिता सखीजनमाह—

अज्ज व्वेअ पउर्यो अज्ज विअ सुण्णआइं जाआइं ।

रत्थामुह्देउलचत्तराईं अहं च हिअआइं ॥ ९० ॥

[अर्धेन प्रोषितोऽर्धेन शून्यवानि जातानि ।

रथ्यामुखदेवकुलचत्वरारण्यस्नाकं च हृदयानि ॥]

१. 'वक्ष्ये' इति ग-पाठः. २. 'साहसिकाया हृदय भयेन कम्पते' इति ग-पाठः.  
३. 'उन्मूल्यन्त्येव' इति ग-पाठः. ४. 'तुङ्गाङ्ग' इति ग-पाठः. ५. 'श्यामली' इति ग-  
पाठः. ६. 'गोदावरीप्रवाहे' इति ग-पुस्तके, 'गोदावरीतीरे' इति च घ-पुस्तके पाठः.

कस्याधिद्रविकाया भुजगजनेन क्रियमाणां श्लाघामसहमाना निजगुणगर्वमभिव्य-  
ञ्जयती काचिदाह—

चिरं हि पि अवाणन्तो लोभा लोएहिं गोरवद्वमहिआ ।

सोणारतुले च्व गिरक्करा वि रन्धेहिं उच्चन्ति ॥ ९१ ॥

[सिद्धिरस्तु इत्यादि]वर्णावलीमप्यजानतो लोका लोकैर्गौरवाम्यधिका ।

सुवर्णकारतुला इय निरक्षरा अपि स्वधैरुह्यते ॥]

यथोक्तायकश्चिरद्वीति देशीशब्द । निरक्षरा अक्षरेखारहिता । पक्षे अविद्या अपि  
स्वधैरुह्यते । सादरं नीयत इत्यर्थः ॥

कलहात्तरिताया वात् उत्कण्ठाविनोदार्थं सहचरमाह—

आरम्बन्तकपोल खलिअक्करजम्पिरिं फुरन्तोट्टिम् ।

मा छिवसु च्चि सरोस समोसरन्ति पिअ मरिमो ॥ ९२ ॥

[आताम्रात् कपोला स्वलिताक्षरजल्पनशीला स्फुरदोष्ठीम् ।

मा स्पृशेति सरोप समपसर्पतीं प्रिया खराम ॥]

आमनो विज्ञाकर्यापनाय नागरिक सहचरमाह—

गोलाविसमोआरच्छलेण अप्पा उरम्मि से मुफ्फो ।

अणुअम्पाणिदोस तेण वि सा आढमुवऊडा ॥ ९३ ॥

[गोदावरीविषमावतारच्छलेनात्मा उरसि तस्य मुक् ।

अनुकम्पानिदोष तेनापि सा गाढमुपगूढा ॥]

मदश्लेह नायक दूती नायिकानुरागकथनेनानुकूलयितुमाह—

सा तुइ सहत्थदिण्ण अज्ज वि रे सुहअ गंधरहिअ पि ।

उव्वसिअणअरर्धरेदेवदे च्व ओमालिअ वहइ ॥ ९४ ॥

[सा त्वया सहस्रदत्तामद्यापि रे सुभग गंधरहितामपि ।

उद्धसितनगरगृहदेवतेव अवमालिका वहति ॥]

- १ 'विणद' इति ग पाठ २ 'विनतिमप्यजानतो' इति ग पुस्तके, 'वर्णमप्यजा  
जानतो' इति च घ पुस्तके पाठ विनति सिद्धिपादिकां सिद्धिरस्तु इत्यादिकाम् इति  
बुलबालदेव ३ 'गौरवाम्यधिका' इति घ पुस्तके, 'गौरवेणार्चिता' इति च ग  
पुस्तके पाठ ४ 'अक्षरेखारहिता' इति कुल १ द्व ५ 'आताम्रायमाणकपोला'  
इति घ पाठ ६ 'जल्पिनी स्फुरदोष्ठीम्' इति ग पाठ ७ 'स्मरामि' इति ग पाठ  
८ 'गाढ' इति ग पाठ ९ व्याजेन इति ग पाठ १० 'अंधरदिअ' इति ग  
पाठ ११ 'हरदेवते' इति ग पाठ १२ 'देवतामिव नवमालिका' इति घ-पाठ

परिवानेन पर्युषितत्वेन च मर्दिता माला अवमालिका । रे मुभगेति सखेद संबो धनम् । सा मुन्दरी त्वया स्वकेशपाशादाकृष्य सहस्रदत्तां गन्धरहितामप्यवमालिका त्वत्करस्पर्शबहुमानाद्यापि बहति । उद्भसितनगरगृहदेवतेवेति । अयं भावः—त्वद्विर-हादिदानीमकृतप्रसाधना सहजसौन्दर्यमात्राभरणा त्वद्गतचित्ततया निर्वाहोत्प्रेष्यपुत्रि-केव शोच्या दशामुग्गता, अतस्त्वननुकम्पस्वेति भावः ॥

मानप्रदणार्थं शिक्षयन्ती मन्धुपुरंध्री काचिदाह—

केलीअ वि रूसेउं ण तीरेए तम्मि चुक्खिणअम्मि ।

जाइअएहिं य माए इमेहिं अवसेहिं अङ्गेहिं ॥ ९५ ॥

[केलीापि रूषितुं न शक्यते तस्मिंश्च्युतविनये ।

याचितकैरिव मातरेभिरवशैरङ्गैः ॥]

च्युतविनये रत्तिलौल्यलङ्घितलञ्जे तस्मिन् याचितकैरिव अभ्यर्थांनीतैरिव एभिरव-शैरस्वाधीनैरङ्गैर्हे मातः, केष्या परिहासेनापि रोषः कर्तुं न शक्यत इत्यर्थः । एतेन वाग्ने प्रणयातिशयो व्यज्यते ॥

वामुक्जनानुरञ्जनाधमात्मनो विपरीतरताभिज्ञतां सूचयन्ती काचिदुरपुत्रेकया कीडन्तीं वालिका निवारयन्तीमाह—

उप्फुह्णिआइ सेल्लउ मा णं चारेहि होउ परिऊढा ।

मा जहणभारगरुई पुग्गिआअन्ती किलिम्मिहिइ ॥ ९६ ॥

[उत्फुह्निकया खेलतु मैना वारयत भवतु परिक्षामा ।

मा जघनभारगुर्वी पुरुषायितं धुर्मती क्लमिष्यति ॥]

पारोपविष्टानां मुहुः पतनोत्पतनरूपा कीड उप्फुह्णिकेत्युच्यते । भवत्विति । धमेण जितश्वासा कृशमध्या च भवत्विति भावः ॥

शीलखण्डनविलक्षायाः कुलजायाचितसमाधानार्थं तत्पक्षपातिनी काचिदाह—

पउरज्जुवाणो गामो महुमासो जोअणं पई ठेरो ।

जुण्णमुरा साहीणा असई मा होउ किं मरउ ॥ ९७ ॥

१. 'जाअइ अग्निव माए' इति ग-पाठः. २. 'कीडयापि' इति ग-पाठः. ३. 'रो-पितुं' इति घ-पाठः. ४. 'शक्नोमि' इति ग घ-पाठः. ५. 'अपगतविनये' इति ग-पुरुषके, 'गतविनये' इति च घ पुरुषके पाठः. ६. 'जायतेऽस्माकं मातरेभि' इति ग पाठः. ७. 'परिगूढा' इति घ-पाठः. ८. 'पुरुषायन्ती क्लमिष्यति' इति घ-पाठः.

[प्रचुरयुवां ग्रामो मधुमासो यौवन पति. स्वतिर. ।

जीर्णमुरा स्वाधीना असती मा भत्रतु किं अथिताम् ॥]

तदेवमप्रतीकारदाहणेपु विनाशकारणेपु सत्सु शीलसण्डन नापराधापादकमिति भावः॥

नायकस्य मनोहरणार्थं दूती नादिनाया अनुरागातिशयमाह—

वंहुसो वि कहिज्जन्तं तुह अवणं मज्झ हत्थसंदिट्ठम् ।

ण सुअ त्ति जैम्पमाणा पुणरुत्तसअं कुणइ अज्जा ॥ ९८ ॥

[वंहुशोऽपि कथ्यमान तव वचन मम हस्तसदिष्टम् ।

नें श्रुतमिति जल्पन्ती पुनरुक्तसतं करोत्यार्या ॥]

पुन पुन धयणानुरागाच्छ्रुतमपि न श्रुतमित्येव वदतीति भाव ॥

दूती कस्याश्चित्कुलजाया कमपि युवान प्रत्यनुराग सवरणमैशलं चाह—

पाअडिअणेहसत्त्वभावणिअमर तीअ जह तुम दिट्ठो ।

संवरणवावट्ठाए अण्णो वि जणो तह व्वेअ ॥ ९९ ॥

[पकटितस्त्रेहसद्भाननिर्भर तथा यथा त्व दृष्ट ।

मन्त्रणव्यापृतया अन्योऽपि जनैस्तथैव ॥]

एतस्मिन्ननुरक्तमिति कथिन्मा ज्ञासीदिति सवरणार्थमन्योऽपि तथैव दृष्ट इत्यर्थ ॥

प्रसवानन्तरं स्वामिना सनिधिं परित्याजिता काचित्पुत्रस्य दन्तोद्गमकथनच्छलेन सभोगयुवानुभवसमयशक्तिमाह—

गेह्ह पलोअह इमं पहसिअवअणा पइस्स अण्पेइ ।

जाआ सुअपढमुट्ठिअण्णदन्तजुअलङ्किअ चोरम् ॥ १०० ॥

[शृङ्गीत प्रलोकयतेद प्रहसितवदना पंतुरपयति ।

जाया सुतप्रथमोद्भिन्नदन्तयुगलाङ्कित वंदरम् ॥]

जाया इह वदर वृद्धित प्रलोकयतेति पंतुरपयतीति खण्ड १ स्वयमेव क्षुत् सपाप सुभ्रेण क्षतमिति मिथ्यैव दर्शयतीति प्रहसितवदनेति पदेन ध्वन्यते ॥

१. 'प्रचुरयुवको' इति ग घ पाठ २. 'सत्तु' इति घ पाठ. ३. 'जम्पमाण' इति ग पाठ. ४ 'न शृणोति जल्पमान' इति ग पाठ ५ 'करोतीधरसुता' इति ग घ पाठ ६ 'निर्भरतया' इति ग घ-पाठ ७ 'जनस्तथायिव एवम्' इति ग-पुस्तके, 'जन कथ तथैव' इति च घ-पुस्तके पठ ८. 'मन्द प्रलोकोपेण' इति घ-पाठ. ९ 'विहसित' इति ग-पाठ. १०. 'पंतुरात्मनि' इति घ-पाठ. ११. 'वदनम्' इति क घ-पाठ



रसिअजणहिअअदइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मइए ।  
सत्तसअम्मि समत्तं वीअं गाहासअं एअम् ॥ १०१ ॥

[रसिकजनहृदयदयिते कविररसलप्रमुखसुकविनिर्मिते ।  
सतशतके समाप्तं द्वितीयं गाथाशनकमेतत् ॥]

तृतीयं शतकम् ।

मिध्या जनो वदतीत्यनुनयन्तं कान्तं मानिनी सप्रणयरोपमाह—

अच्छउ ता जणवाओ हिअअं चिअ अत्तणो तुह पमाणम् ।  
तह तं सि मन्दणेहो जए ण उवालम्भजोग्गो सि ॥ १ ॥

[अस्तु तौजजनवादो हृदयमेवात्मनस्तत्र प्रमाणम् ।

तथा त्वमसि मन्दब्रेहो यथा नोपालम्भयोन्योजसि ॥]

अयमस्यो मन्दब्रेह इत्येवंरूपो जनवादोऽस्तु तावत् । हृदयमेवेति । अरमहृदयेनैव  
त्व जानासीत्यर्थं । यथेति । शिष्यो हि दाक्षिण्येनोपालम्भं सहते, त्व तदरासीन इति  
नोपालम्भयोग्य इति भावः ॥

हृदयोपालम्भच्छलेन यथाभिमतवान्ताप्राप्तिं सूचयन्ती पुलटा कमपि युवानं  
रोचयितुमाह—

अप्पच्छन्दपहाविर दुहहृहृम्भं जणं पि सग्गन्त ।

आआसपहेहिं भमन्त हिअअ कइआवि भज्जिहिसि ॥ २ ॥

[आत्मच्छन्दप्रधावनशील दुर्लभलम्भं जनं [अपि] मृगयमाण ।

आकाशपर्यैर्भ्रमद्दृश्य कदापि मह्यपसे ॥]

स्वेच्छाच रित्तसूचनार्थमात्मच्छन्दप्रधावनशीलेति संबोधनम् । दुर्लभस्य गुरतमु-  
रस्य लम्भः प्राप्तिर्यस्मात्तत् । आकाशपर्यैर्भ्रमन्वन्मार्गभ्रमत् । दृष्टीप्रमुखोपाया-  
दिति भावः । पाठान्तरे आयागवशैरित्यर्थः । कदापीत्यपिशब्दः संभावनायाम् । क-  
सत्तु मुमनो यस्तव भ्रमणं शमयिष्यतीति भावः ॥

१. 'विनिर्मितौ' इति ग-पाठः. २. 'तत्' इति ग पाठः. ३. 'अरमच्छन्दप्रम-  
विपु दुर्लभलम्भं जनं निमार्गमान ।—एहासि दशमे ॥' इति ग पुस्तके, 'आत्मच्छ-  
न्दप्रभावनशीले दुर्लभलम्भं जनमपि मार्गमाण । अशपर्यैर्दृश्यक्रियापि भ्राता भवति ॥  
इति च घ पुस्तके पाठः.

कापि गुणगर्विता गणिका सकृत्प्रवृत्तं पथान्मन्दादरं भुजंगं निन्दन्ती दूतीमाह—

अहव गुणत्रिवअ लहुआ अहवा गुणअणुओं ण सों लोओ ।

अहव क्षि णिगुणा वा बहुगुणवन्तो जणो तस्स ॥ ३ ॥

[अथवा गुणा एव लघवोऽथवा गुणज्ञो न स लोकः ।

\* अथवाक्षि गुणानि वा बहुगुणवाञ्छनस्तस्य ॥]

तस्य जनः प्रियारूपो बहुगुणवान्वेति योजना । येन मा न बहु मन्यत इत्यभिप्रायः ॥

अन्यासकं प्रियमात्मनो दुःखाभिव्यञ्जनेन कथं निवारयसीति वदन्ती मातुलानी

कापि प्रियस्यास्त्रिगुधर्ता सूचयन्ती स्थान्तेन सनिर्वेदमाह—

फुटन्तेण वि हिअएण मामि कह णिव्वरिज्जए तम्मि ।

आदंसे पडिबिम्बं व्व जम्मि दुःखं ण संरुमइ ॥ ४ ॥

[स्फुटतापि हृदयेन मातुलानि कथं निवेद्यते तस्मिन् ।

आदर्शं प्रतिबिम्बमिव यस्मिन्दुःखं न संक्रामति ॥]

प्रयत्नसाधितामपि युवती विमृश्यकारितया नोपगच्छन्त नायकमुत्साहयितुं दूती

सौपालम्भमन्यापदेशेनाह—

पासासङ्की काओ णेच्छदि दिण्णं पि पहिअघरणीए ।

ओअन्तकरअलोगलिअवलअमज्झट्टिअं पिण्डम् ॥ ५ ॥

[पाशाशङ्की काको नेच्छति दत्तमपि पथिकगृहिण्या ।

अवनतकरतलायगलितवलयमध्यस्थितं पिण्डम् ॥]

यथा पथिकगृहिण्या दत्तमप्यवनतादधोमुखीकृतात्करतलाद्गलितस्य वलयस्य मध्ये स्थितं भक्तपिण्डं काकः पाशाशङ्कया नेच्छति तथा त्वमप्येना मया दीयमानामपि भय-  
पाशङ्क्या परिहरसीति भावः ॥

१. 'गुणअणुओ' इति ग-पाठः. २. 'णिगुणाओ' इति ग-पाठः. ३. 'गुणार्णवो न स लोक' । अथवा वय निर्गुणा अधिकगुणः स जनस्तस्य ॥' इति घ-पुस्तके, 'गुणज्ञ एव न स जनः । अथवा वयमेव निर्गुणा बहुगुणवन्तो जनास्तस्य ॥' इति च ग-पुस्तके पाठः. ४. 'अहाए' इति ख-ग-पाठः. ५. 'स्फुटितेनापि हृदयेन कथं भगिनि निर्वृतीभूयते तस्मिन् ।' इति ग-पुस्तके, 'स्फुटितेनापि हृदये मातुलि कथं निवारिते तस्मिन् ।' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'अवदाते प्रतिबिम्बमिव' इति घ-पाठः. ७. 'नेच्छवद्' इति ख-ग-पाठः. ८. 'अवनतं' इति ग-पाठः. ९. 'न स्पृष्टति दत्तमीप बाले' इति ग-पाठः. १०. 'उत्तत' इति घ-पाठः.

प्रोषितमत्तुकाया सखी तत्कालतस्यागमनवरार्थं त एभीगमिन पायमाह—

ओहिदिअहागमासकिरीहिं सहिआहिं कुंडुलिहिआओ ।

दोसिणिण तहिं विअ चोरिआए रेहा पुसिज्जन्ति ॥ ६ ॥

[अवधिदिवसागमाशङ्किनीभि सखीभि कुंडुलिहिआओ ।

द्विनान्तत्रैव चोरिकया रेखा प्रोक्षयत ॥]

अवधिदिनेऽपि त्वयि नागच्छति नूनमिय प्राणानपि न्यापिति भार ॥

कोऽपि कामुकश्च द्रवर्णनच्छलेनामनोऽभिद्राप प्रकाशयतायिकामाह—

तुह मुहसारिच्छ ण लहइ सि सपुण्णमण्डलो विहिणा ।

अण्णमअ एव घटइउ पुणो वि खण्डिज्जइ मिअद्धो ॥ ७ ॥

[तत्र मुखसादृश्यं न लभत इति सपूणमण्डले विधिना ।

अन्यमयमिन् घटयितुं पुंनरपि खण्टयते मृगाङ्ग ॥]

अन्यमयमन्यप्रकारम् ॥

प्रामातृरगमनाय कृतप्रस्थानस्य गेहातरे स्थितस्य नायकस्य गमननिषेधार्थं सखी तत्रियावृत्ता तमाह—

अज्ज गओत्ति अज्ज गओत्ति अज्ज गओत्ति गणरीए ।

पढम त्रिअ दिअहद्धे कुडो रेहाहिं चित्तलिओ ॥ ८ ॥

[अथ गत इत्ययं गत इत्ययं गत इति गगनशीलया ।

प्रथम एव दिवसां कुंडुलिहिआओ रेखाभिधितम् ॥]

तद्वत् त्वद्विरहविह्वलां ता विहाय गतुं नोचितमिति भावः ॥

पुष्पमकृतस्त्रीकाराया पथाक्षिरप्र र्थनया स्त्रीकारं कृतवत्या प्रथमतमायम एव नायकगुणरजिताया प्रथमास्त्रीकारनिवृत्त्य वदनमात्रस्य निजगुणगावतो नायक स हचरमाह—

ण वि तह पढमसमागमासुरअमुह पाविएवि परिओसो ।

जेह वीअदिअह सत्रिलकरलकिरणए वअणकमलम्मि ॥ ९ ॥

१ त्रीअ त्रिहिआए इति ग-पाठ २ सके तर्नाय सखाभिस्तस्य च न्या । द्विनास्तस्मिं चोरिकया रेखा प्रक्षिप्य त ॥ इति ग-पाठ ३ त्रिहिआओ सिता । द्विनास्तस्मिं चोरिकया रेखा प्रक्षिप्य त ॥ इति ग-पाठ ४ 'पुन पुन' इति घ-पाठ ५ गओ इति इति ग-पाठ ६ त्रिबसद इति ग-पाठ ७ कुण्डो रेखाभिधितम् इति ग-मुञ्जक मित्ता रेखाभिधितम् इति च घ-पुञ्जक पाठ ८ 'मुहेणानि परिओसो इति ग-पाठ ९ जह वीअदि अहरम्भे पुम्भएव टिए वअणकमलम्मि' इति र-पाठ

[नापि तथा प्रथमसमागमसुरतसुखे प्राप्तेऽपि परितोषः ।

यथा द्वितीयदिनसप्तनिलक्षलक्षिते वदनकमले ॥]

अपि सत्त्वं कुमुममया वाणा मन्मथस्येति सरया पृष्टा सखी सर्वैदग्ध्यं तामाह—

जे<sup>३</sup> संमुहागअयोल्नत्वलिअपिअपेसिअच्छिअच्छोहा ।

अह्मं ते मअणसरा जणस्त जे होन्ति ते होन्तु ॥ १० ॥ १

[ये<sup>४</sup> संमुवागतव्यतिक्रान्तवलितप्रियप्रेषिताक्षिविशोभाः ।

अस्कारं ते मदनशरां जनस्य ये भवन्ति ते भवन्तु ॥]

समुत्सागतेन व्यतिक्रम्य गच्छता परिरुत्तेन प्रियेण प्रेषिता ये अक्षिविशोभा  
लीलातरलकटाक्षा इत्यर्थः ॥

कामपि रमणीं प्रति सामिलापः कथिदात्मनोऽभिप्रायं प्रकाशयन्नाह—

इअरो जणो ण पावइ तुह जघणारुहणसंगमसुहेहिम् ।

अणुहवइ कणअडोगे हुअवहवरुणार्णं माहप्पम् ॥ ११ ॥

[इतरो जनो न प्रोप्नोति तत्र जघनारोहणसंगमसुखकेलिम् ।

अनुभवति कनकदोरो हुतवहवरुणयोर्माहात्म्यम् ॥]

त्रय जघनारोहणपूर्ववेण संगमेन यत्सुख तदितरो जनोऽभिगानीयाक्ष्यनतरहितो न  
प्राप्नोति । सुहृत्सौ सुदुर्जले प्रवेशस्य फलं कनकदोरोऽनुभवतीत्यर्थः ॥

कामुक प्ररोचयितुं दूती नायिकायाः सौभाग्यातिशयनाह—

जो जरस विहवसारो तं सो देइ त्ति किं त्य अच्छेरम् ।

अणहोन्तं पि खु दिण्णं दोहग्गं तइ सबत्तीणम् ॥ १२ ॥

[यो यस्य विभवसारस्तं स ददातीति निमग्नार्थम् ।

अभयदपि खलु दत्तं दौर्भाग्यं त्वया सैषेलीनाम् ॥]

अमरत् अविद्यमानम् ॥

१ 'मुखेनऽपि भवति परितोषः' इति ग पुस्तके, 'मुखेन विशते परितोषः' इति च  
२ पुस्तके पाठः. २. 'द्वितीयदिनसप्तनिलक्षं लक्षिते' इति ग पुस्तके, 'द्वितीयरत्नारम्भे  
मुग्धवलिते' इति च घ पुस्तके पाठः. ३. 'जे पमुहागअ' इति ग-पाठः. ४. 'क्षे  
नुवागतव्युत्क्रान्तवलितप्रियप्रेषिताक्षि' इति ग-पाठः. ५. 'प्राप्यते' इति घ पाठः.  
६. 'कनकमूर्धं हुतवहवरुणाननाहात्म्यम्' इति घ-पाठः. ७. 'ज जरस विभवसारं' इति  
घ पाठः. ८. 'एत्य' इति ग पाठः. ९. 'दयस्य विभवसारे तत्स' इति ग-पाठः.  
१०. 'अविद्यमानमपि' इति घ पाठः. ११. 'सपत्नीभ्यः' इति घ-पाठः.

प्रोषितः कश्चिदुत्कण्ठाविनोदनाय प्रियां स्मरन्सहचरमाह—

चन्द्रसरिसं मुहं से सरिसो अमभस्त सुहरसो तिरसा ।  
सकभगहरहसुञ्जलचुम्बणं कस्त सरिसं से ॥ १३ ॥

[चन्द्रसदृशं मुखं तैसाः सदृशोऽमृत्सु मुखरसस्तसाः ।  
सकचग्रहरहसोज्ज्वलचुम्बनक कस्त सदृशं तैसाः ॥]

विमृश्यकारिणं नायकमुत्सादयितुं दूयाह—

उत्पण्णत्ये कज्जे अइचिन्तन्तो गुणागुणे तम्मि ।

चिरैआलमन्दपेच्छित्तणेण पुरिसो हणइ कज्जम् ॥ १४ ॥

[उत्पन्नार्थे कार्येऽतिचिन्तयन्गुणागुणौ तस्मिन् ।  
चिरकालमन्दप्रेक्षित्वेन पुरुषो हन्ति कार्यम् ॥]

उत्पन्नः सिद्धोऽर्थोऽभिलषितपदार्थो यत्र तस्मिन् । फलाभिमुखे कार्ये इति यावत् ॥  
चिरहमसहनाया कापि प्रणयकुपितं कान्तमनुनयन्त्याह—

वालअ तुमाहि अहिअं णिअअं विअ बहहं महं जीअम् ।

तं तइ विणा ण होइ त्ति तेण कुविअं पसाएमि ॥ १५ ॥

[बालक त्वत्तोऽधिकं निरैकमेव बहभं मम जीवितम् ।  
तत्रवया विना न भवतीति तेन कुपितं प्रसादयामि ॥]

प्रथमं कुपितां चरणप्रणामोत्तरं प्रसन्नां 'मिध्याखलप्रचनदूषितचित्तया मया खेदि-  
तोऽसि' इति वदन्तीं प्रिया प्रियः पुनरपि खलवचने प्रत्येधसीति काकुत्स्था विधिमुखेन  
निषेधयन्त्याह—

पत्तिअ ण पत्तिअन्ती जइ तुअइ इमे ण मअइ रअइए ।

उट्ठीअ वाहविन्दू पुलउठ्ठेएण भिअन्ता ॥ १६ ॥

१. 'रहसुञ्जलचुम्बणं' इति ग-पाठः. २. 'अस्याः' इति ग-पाठः. ३. 'रमसो-  
लचुम्बनं' ग-पाठः. ४. 'अस्याः' इति ग-पाठः. ५. 'अइ सुन्दर सहपेच्छित्तणेण'  
इति ग-पाठः. ६. 'उपन्यस्ते' इति घ-पाठः. ७. 'चिन्तयमान' इति ग-पाठः.  
८. 'अतिसुन्दरलक्षणप्रेक्षित्वेन' इति ग-पुस्तके, 'चिरकालमन्दप्रेक्षित्वेन' इति च घ-  
पुस्तके पाठः. ९. 'त्वतोऽप्यधिकं' इति ग-पाठः. १०. 'नियतमेव' इति घ-पाठः.  
११. 'पतअ ण पत्तिअन्ती' इति ग-पाठः. १२. 'भिअन्तो' इति ग-पाठः.

[प्रतीहि न प्रतीयन्ती यदि त्वेमे न मम रोदनशीलाया ।

पृष्ठस बाष्पविन्दव पुलकोद्भेदेन भिद्यमाना ॥]

प्रतीहि प्रलयं कुर्विति सशिरध्वालनकाकृषत्या खल्वचक्षि प्रत्ययमयदापि न करि  
प्यसीत्यर्थं । एतदेव द्रढयन्नाह—न प्रतीयन्तीत्यादिना । रोदनशीलायास्तव इमे बाष्प  
विन्दवो मम पृष्ठस्य पुलकोद्भेदेन यदि न भिद्यमाना भिन्ना नामविष्यन्, तदा त्व न  
प्रतीयन्ती प्रलय नाकरिष्य एवेत्यर्थं । तवाश्रुजलस्पर्शादपि मम पृष्ठ पुलक सजात ।  
तत्किं खल्वचक्षा मामननुरक्त कलयसीति भाव ॥

नायकस्य रदसौहृदमिच्छन्ती नायिका दूर्ती सदृष्टान्तमाह—

त मित्त काअठ्व ज किर वसणम्मि देसआलम्मि ।

आलिहिअभित्ति वाउल्लअ व ण परम्मुह ठाइ ॥ १७ ॥

[तन्मिअ कर्तव्य र्यतिकल ध्यसने देशकालेषु ।

आलिखितभित्तिपुत्तलकमिव न पराश्रुस्र तिष्ठति ॥]

व्यसने विपदि । देशे देशांतरे काले यौवनाद्यपगमे । वाउल्लअ पुत्तलिकेति देशी ॥

निष्ठसमपि घूर्तां कलयन्तीति विज्ञत्व ह्यापयन्नागरिक सहचरमाह—

बहुआइ णइणिउञ्जे पडमुग्गअसीलखण्डणविलकखम् ।

उडेइ विहगउल हा हा पक्खेहिं व भणन्तम् ॥ १८ ॥

[वध्वा नदीनिकुञ्जे प्रथमोद्गतशीलखण्डनविलक्षम् ।

उञ्जीयते विहगकुल हा हा पक्षीरिव भणत् ॥]

पक्षीर्हाहेति भणदिवेति योजना ॥

प्रोपितभर्तृकाया सखी तत्कालमागमनस्वरार्थमाह—

सद्य भणामि बालअ णत्थि अंसक वसन्तमासस्स ।

गन्धेण कुरवधाण मण पि असइत्तण ण गजा ॥ १९ ॥

[सद्य भणामि बालक नारत्यैशक्य वसन्तमासस्य ।

गन्धेन कुरवधाणा मनागप्यसतीत्व न गता ॥]

१ 'प्रतीहि न प्रलयमस्या' इति ग पुस्तके, 'प्रतीय न प्रतियुती' इति च घ  
पुस्तके पाठ २ 'रद'त्या' इति ग पाठ ३ 'पृष्ठे' इति ग पुस्तके, 'पृष्ठीय'  
इति च घ पुस्तके पाठ ४ 'भियेरन्' इति ग पुस्तके, 'भिन्ना' इति च घ पुस्तके  
पाठ ५ 'वाउल्लओ' इति ग-पाठ ६ 'यदेव' इति ग पाठ ७ 'देशकालयो'  
इति घ पाठ ८ 'अलिखितविप्रक इष' इति ग-पाठ ९ 'उञ्जीयते' इति ग  
पाठ १० 'असज्ज' इति ग पाठ ११ 'असाप्य' इति ग-पाठ

नास्त्वशक्यमिति यथा च स्खलितमेव मन इति भावः । मनागपीति त्वदागमनप्रत्या-  
शया शीलं रक्षतीत्यर्थः । तथावदस्याः शीलखण्डन न भवति तावत्परितं संभावयैना-  
मिति भावः ॥

नायक प्रति दूती कस्याधिदगुरागातिशयमाह—

एकेकभवंइवेठणविवरन्तरदिण्णतरलणअणाए ।

तइ बोळन्ते धालअ पञ्जरसउणाइअं तीए ॥ २० ॥

[एकेकभृतिवेष्टनविवरान्तरदत्ततरलनयनया ।

त्वयि द्यैतिक्रान्ते बालक पञ्जरशकुनायित तथा ॥]

एकेकस्मिन् वृतिवेष्टनस्य विवरान्तरे दत्त तरल नयन यथा एतादृश्या तथा पञ्ज-  
रशकुनवदाचरितम् । यथा पञ्जरवद्धः पक्षी प्रतिविवरे दत्तदृष्टिभ्रंमति तथा तथापि स्वर-  
शेनलालसया भ्रान्तमित्यर्थः ॥

तद्देहमार्गेण गतोऽप्यहं तथा न दृष्ट इति वदन्तमुपनायकः दूती नायिकादोषं परि-  
हरन्त्याह—

ता किं करेउ जइ सं सि तीअ चइवेठपेष्टिअथणीए ।

पाअहुठ्ठद्धक्खिरत्तणीसहङ्गीअ वि ण दिट्ठो ॥ २१ ॥

[तत्किं करोतु यदि त्वैममि तथा वृतिवेष्टनप्रेरितं सनया ।

पादाहुष्ठार्धक्षिप्तानि सहाङ्गपापि न दृष्टः ॥]

वृतिवेष्टनस्योचतया वृत्तयज्ञयापि तथा यदि न दृष्टस्तदा कस्यस्या दोष इति भावः ॥

पयिकजायाभिलाषिण कामुकं दूती नायिकाया निजनायकेऽगुरागातिशयसूचनेना-  
साप्यात् प्रतिपादयितुमाह—

पिअसंभरणपलोदृन्तवाहधाराणिवाअभीआए ।

दिअइ वद्धमीवाएँ दीवओ पहिअर्जाआए ॥ २२ ॥

[प्रियसंस्मरणप्रैक्षित्वाप्यधारानिपातंभीतया ।

दीयते यक्रमीयया दीपकः 'पयिकजायया ॥]

१. 'वृष्टेणविवरन्तरतरलदिण्णअणाए' इति ग-पाठः. २. 'एकेकभृतिवेष्टन-  
विवरान्तरतरलदत्तनयनया' इति घ-पाठः. ३. 'म्युत्कामति' इति ग-पाठः. ४. 'वे-  
क्षण' इति क-पाठः. ५. 'तथा त्वममि' इति ग-पाठः. ६. 'प्रेरितसन्ध्या' इति ग-  
पाठः. ७. 'निक्षिप्त' इति ग-पाठः. ८. 'परणीए' इति ग-पाठः. ९. 'प्रियस्मरण-  
प्रत्यागतवन्' इति ग-पाठः. १०. 'प्रगतद्वार्य' इति घ-पाठः. ११. 'पयिकदृष्टिष्या'  
इति ग-पाठः.

कमपि युवानमनुरजयितुं दूती कस्याश्चित्केहदैन्यमूचकं परिवृत्त्यावलोकनमाह—

तद् घोलन्ते बालअ तिरस्ता अङ्गाँइ तद् णु बलिआइ ।

जह् पुट्टिमज्झणिवतन्तवाहधाराओं दीसन्ति ॥ २३ ॥

[त्वयि व्यतिक्रामति बालक तस्या अङ्गानि तथा नु बलितानि ।

यथा पृष्ठमध्यनिपतद्वाष्पधारा दृश्यन्ते ॥]

बलितानि परिवृत्तानि ॥

कपि प्रियतमविरहस्य दुःसहस्रमन्यापदेशेनाह—

ता भँज्झमो विअ वर दुज्जणसुअणेहिँ दोहिँ वि ण कज्जम् ।

जद् दिट्ठो तवइ खलो तद्दे अ सुअणो अईसन्तो ॥ २४ ॥

[तन्मध्यम एव वरं दुर्जनसुजनाभ्यां द्वाभ्यामपि नै कार्यम् ।

यथा दृष्टस्तोषयति खलस्तथैव सुजनोऽदृश्यमान ॥]

कप्यात्मनः पतिं साभिलाषमवलोक्यतीं शेष्यमाह—

अद्धच्छिपेच्छिअ मा करेहि साहाविअ पलोएहि ।

सो वि सुदिट्ठो होहिँइ तुम पि मुद्धा कलिज्जिहिंसि ॥ २५ ॥

[अर्धाक्षिप्रेक्षितं मा कुरु स्वामाधिकं प्रलोकय ।

सोऽपि मुदृष्टो भविष्यति त्वमपि मुग्धा कलिष्यसे ॥]

अर्धाक्षिप्रेक्षितं कटाक्षनिरीक्षणम् ॥

श्रोणितं कथितकुलपालिकायाः निजवनितायाश्चरितमनुसारन्वयस्यमाह—

दिअह् सुडक्किआए तीए काऊण गेहवावारम् ।

गरुए वि मण्णुदु खे मरिमो पाअन्तमुत्तस्स ॥ २६ ॥

[दिवसं रोषमूकायास्तसां कृत्वा गेहव्यापारम् ।

गुरुकेऽपि मन्नुदु खे स्मराम पादान्तमुत्तस ॥]

सुडक्किआ रोपमूका । गुरुके मन्नुदु खे दिवसं व्याप्य गेहव्यापारं कृत्वा रोपमूका

स्तसां पादान्तशयनं स्मराम इति संबन्धः ॥

१ 'व्यतिक्रामते' इति ग-पाठः २ 'मज्झमो' इति ग-पाठः ३ 'न मे कार्यम्'  
इति ग-पाठः ४ 'तपति' इति घ-पाठः ५ 'हो इहि' इति क-पाठः ६ 'कुरुष्व'  
इति ग-पाठः ७ 'दिवसं व्याप्य' इति क-ख-ग-पाठः ८ 'कुपिताया' इति  
ग-पाठः



कमप्यनुरक्त धनिकमधमन्नीसहदोषेण परिहरन्तीं दुहितरं वेश्यामाता शिक्षयि-  
तुमाह—

पाणउडीअ वि जलिऊण हुअवहो जलइ जण्णवाडम्मि ।

ण हु ते परिहरिअव्वा विसमदसासंठिआ पुरिसा ॥ २७ ॥

[पानकुट्यामपि ज्वलित्या हुतवहो ज्वलनि यज्ञवाटेऽपि ।

नै खलु ते परिहर्तव्या विषमदशासस्थिताः पुरुषाः ॥]

पानकुटी चण्डालकुटी ॥

स्वमतीरि विरामं सूचयन्ती कमप्यसती सतीं निजभार्या बहुमन्यमानं युवान सवैद-  
ग्धानुरागमाह—

ज तुज्झ सई जाआ असईओ जं च सुहअ अहो वि ।

ता किं फुट्टउ वीअं तुज्झ समानो जुआ णत्थि ॥ २८ ॥

यत्तव सती जाया असत्यो यच्च सुमग वयमपि ।

तर्कि स्फुटतु बीजे तव समानो युवा नासि ॥]

स्फुटतु प्रकटीभवतु । तदेव बीजमाह—तव समान इति । एतदेव बीजमिति भाव ॥

कापि कसिमप्यनुरागातिशयं प्रकाशयन्ती इतीमाह—

सव्वस्सम्मि वि दद्वे तहवि हु हिअअस्स णिण्वुदि षेअ ।

जं तेण गामडाहे इत्थाहरिथि कुहो गहिओ ॥ २९ ॥

[सर्त्तवेऽपि दग्धे तथापि खलु हृदयस्य निर्वृतिरेव ।

यत्तेन मामदाहे हस्ताहसिकया कुट्यो गृहीत ॥]

कुट्यो घट ॥

शृङ्खलमव्यावृता काचिदसती कामुकमनोरथसंपादनासमर्था तत्रहिता इतीमन्यापदे-  
शेनाह—

जाण्ण वणुहेसे कुज्जो वि हु णीसेहो इडिअपत्तो ।

मा माणुसम्मि छोए सई रसिओ दरिहो अ ॥ ३० ॥

१. 'ज्वलपति' इति ग-पाठ. २. 'अपि' इति घ-मुल्लके नास्ति. ३. 'नैव ते'  
इति ग-पाठ. ४. 'ते इति' घ-मुल्लके नास्ति. ५. 'सुदअ जं च' इति ग-पाठः.  
६. 'सुमग यच' इति ग-पाठ. ७. 'स्वसमो' इति ग-पाठः. ८. 'च' इति ग-पाठः.  
९. 'खलुओ गलितवत्तो' इति ग-पाठः. १०. 'दाहे सरिहो' इति क-पाठः.

[जायता वनोद्देशे कुञ्जोऽपि सल्लु नि शाखः शिथिलपत्रे ।

मा मानुषे लोके त्यागी रसिको दरिद्रश्च ॥]

त्यागी दिग्गु । रसिक सानुराग , श्रद्धारी च । दरिद्रो निर्धन । भवसररहितश्च ।  
त्यागित्वादिगुणयुक्तो मा जायतामिति संबन्ध ॥

जारं प्रत्यनुरागातिशय सूचयन्ती कापि तन्मित्रमाह—

तस्स अ सौहृद्गगुणं अमहिलसरिसं च साहसं मञ्ज ।

जाणइ गोलाऊरो वासारत्तोद्धरत्तो अ ॥ ३१ ॥

[तस्य च सौभाग्यगुणममहिलासदृशं च साहसं मम ।

जानाति गोदापूरो वर्षारानार्धरात्रश्च ॥]

वर्षारार्धरात्रे जल्पूणगोदावरीतरण तदभिसरणार्थं करोमीति भाव ॥

रूपमधुना सतीत्वमवलम्बितमिति केनापि कामुकेन सपरिहासमुक्त्वा कुलटा तमाह—

ते वोलिआ वैअस्सा ताण कुडङ्गाण थाणुआ सेसा ।

अह्णे वि गअवआओ मूलुच्छेअ गअ पेम्मम् ॥ ३२ ॥

[ते व्यतिक्रान्ता वयस्यास्तेषां कुञ्जानां स्थाणव शेषा ।

वयमपि गतवयस्का मूलोच्छेद्य गत प्रेम ॥]

ते वयस्या समानशीला व्यतिक्रान्ता दूरं गता । येषु ते सह भुरतमुखमनुभूत  
तेषां रत्नागृहाणां स्थाणवोऽवशिष्टाः । अतो मूलोच्छेद्यमुच्छिद्यमूल प्रेम गतम् । न  
शमित्यर्थ ॥

कामपि गतयौवनां कुलटा प्रति नागरिक सपरिहासमाह—

थणजहणणिअम्भोत्ररि णंहरङ्का गअवआण वैणिआणम् ।

उठ्वसिआणङ्गणिवासमूलवन्ध व्व वीसन्ति ॥ ३३ ॥

[सनजघननितम्भोपरि नखैराङ्का गतवयसां वनितानाम् ।

उद्धसितानङ्गनिवासमूलवन्धा इव दृश्यन्ते ॥]

१ 'उत्पद्यामि' इति ग पुस्तके, 'जायेत' इति च घ पुस्तके पाठ २ 'कुञ्जको  
ऽपि स्थाणुको गलितपत्र' इति ग पाठ ३ 'गलितपत्र' इति घ पाठ ४ 'गोदा  
वरीपूरे' इति क ख-पाठ ५ 'वैअस्सा' इति ग-पाठ ६ 'व्यतीता वेतसा' इति  
ग-पाठ ७ 'कुरङ्गाणां' इति घ-पाठ ८ 'स्थाणुका' इति ग पाठ ९ 'मूलो-  
च्छेद' इति ग पाठ १०. 'दशनाङ्का' इति ग पाठ ११ 'विलआणाम्' इति ख-ग-  
पाल्यव्य १२ 'दशनाङ्का गतवयस्कां वीणाम्' इति ग पाठ १३ 'वयमिव' इति  
घ प

उद्धतितस्य शून्यीकृतस्यानङ्गनिवासस्य मूल्यघा इवेत्यर्थं ।  
बहुभिर्युष्माभिस्ता दृष्टा भागतम् । तदुच्यतां कीदृक्तस्या रूपमिति नायकेन पृष्टा  
सहचरा प्राहु —

जरस जह विअ पढम तिससा अङ्गम्मि णिवडिआ दिट्ठी ।  
तस्स तर्हि चेअ ठिआ सन्वङ्ग केण वि ण दिट्ठम् ॥ ३४ ॥

[यस्य तत्रैव प्रथम तस्या अङ्गे निपतिता दृष्टि ।

तस्य तत्रैव स्थिता सर्वाङ्ग केनापि न दृष्टम् ॥]

अल्पानविरहसंतप्त प्रवासादागत प्रियासंगमेन संतुष्ट कश्चिदाह—

विरहे विस व विसमा अमअमआ होइ सगमे अहिअम् ।

किं विहिणा समअ निअ दोहिं वि पिआ विणिम्मिअजा ॥३५॥

[विरहे विषमिव विषमोऽमृतमया भवति सगमेऽधिकम् ।

किं विधिना सममेव द्वाभ्यामपि प्रिया विनिर्मिता ॥]

द्वाभ्यां विषामृताभ्याम् ॥

चिरप्रवासागतेन भुजगेनोपाख्या वेद्यामाता भुजगा तरलमाया दुहितुर्दोष परिह  
रती आह—

अइसणेण पुँत्तअ सुट्ठु वि णेहाणुअन्धघर्घडिआइ ।

हत्थउट्टपाणिआँइ व कालेण गलन्ति पेम्माइ ॥ ३६ ॥

[अदर्शनेन पुनक सुट्ठुपि सेहानुअघर्घटितानि ।

हस्तपुटपानीयानीव कालेन गलन्ति प्रेमाणि ॥]

स्त्रीणां बहुच्छलत्व दर्शयती दूती कमपि युवान साभिप्रायमाह—

पइपुरओ व्विअ णिज्जइ विच्छेदद्वेत्ति जारवेअपरंरम् ।

णिउणसेँहीकरगारिअ भुअजुअलन्दोळिणी याला ॥ ३७ ॥

[पतिपुरत एव नीयते वृश्चिकदपेति तारवैद्यगृहम् ।

निपुणसेँहीकरघृता मुत्तयुगला दोलनशीला बाला ॥]

१ 'यस्मिन्नेव' इति ग-पाठ २ 'अङ्गेयु' इति घ-पाठ. ३ 'तस्मिन्नेव' इति व  
पाठ. ४ 'अमृतमयी' इति ग घ-पाठ ५ 'किं सममेव विधिना' इति ग-पाठ  
६ 'बाला' इति ग-पाठ ७ 'पटिआणम्' इति ग-पाठ ८ 'घटितानाम्' इ  
ग-पाठ ९ 'वितुआदइति' इति ग-पाठ. १० 'हरम्' इति ग-पाठ. ११ 'यद  
करत्तम्मिअकरवत्तअ-दोळिरी' इति घ-पाठ. १२ 'तस्मिन्नेव' इति व-पाठ  
लक्ष्मीला' इति घ-पाठ

पुष्पाभिरभिप्रायज्ञाभिः सखीभिः करे धृता विपजनितमूर्च्छांछलेन भुजयुगलान्दो-  
ला । बालेति प्रगल्भायास्तु वैतव किं वक्तव्यमिति भावः ॥

वज्रमस्य कार्यैकपरता सूचयन्ती पूर्वसुभगा नववधूसकान्तज्ञद वान्तमन्याप-  
६—

विक्रिणइ माहमासम्भिः पामरो पाइडिं वइलेण ।

णिद्धममुंमुमुर विवअ सामलीअ थैणो पडिच्छन्तो ॥ ३८ ॥<sup>१</sup>

[विक्रीणीते भाषमासे पामर प्रौवरण बलीवर्देन ।

निर्धूममुमुरनिमौ श्यामल्या स्तनौ पश्यन् ॥]

मत्वेन शीतनिस्तारहेतुत्वामिधूमतुपामिसादरमम् । तवापीदानीं लब्धामिनवव-  
७ किं मया कार्यमिति भावः ॥

३ कदापि विश्वासो न वर्तव्य, इति बन्धुजनशिक्षार्थं काचिदाह—

सच्च भणामि मरणे द्विअस्मि पुण्णे तडम्मि तावीए ।

अज्ज वि तत्थ कुडङ्गे णिउडइ दिट्ठी तह सैअ ॥ ३९ ॥

[सत्यं भणामि मरणे स्थितास्मि पुण्ये तटे ताप्या ।

अद्यापि तत्र निकुञ्जे निपतति दृष्टिस्तथैव ॥]

रणे स्थितास्मि गृहीतमरणप्रताप्सीत्यर्थः । तत्रामिसारस्थाने । तथैव अभिसारो  
८ । अतः स्त्रीषु न विश्वसेदित्यर्थः ॥

प्रसतीभिरभिसार्यमाणमर्तुका कुलवधूः सखीजनमाह—

अन्धअरवोरपत्त व भाउआ मह पइ विलुम्पन्ति ।

ईसाअन्ति मह विअ छेप्पाहिन्तो फणो जाओ ॥ ४० ॥<sup>२</sup>

[अन्धकरवदरयानैविव मैतरो मम पतिं विलुम्पन्ति ।

ईर्ष्यन्ति<sup>३</sup> महमेव लाङ्गलेम्य फणो जातु ॥]

१ 'पासिडिं' इति ख पुस्तके, 'पावलिं' इति च ग पुस्तके पाठः . २ 'मुंमुमुरसच्छ  
इति ग पाठः ३ 'यणए पडोच्छन्तो' इति ख पुस्तके 'यणएणिअच्छन्तो' इति  
ग-पुस्तके पाठः ४ 'विक्रीणीति' इति ग घ पाठः . ५ 'पटीं' इति ग पुस्तके,  
रं' इति च घ पुस्तके पाठः ६ 'निर्धूमाङ्गारसदृशयो श्यामाया स्तनयोनिवच्छन्'  
ग पुस्तके, 'निर्धूममुमुराविव श्यामल्या स्तनौ प्रतीक्षमाण' इति च घ पुस्तके  
७ 'उरङ्गे' इति घ पाठः ८ 'पत्थि' इति ख ग-पाठः ९ 'भाङ्गनमिव' इति  
पुस्तके, 'प्रस्यमिव' इति च घ-पुस्तके पाठः १०. 'मायाविन्य' इति ग पाठः  
'ईर्ष्यन्ते मप्येव पुच्छादेव फणो' इति ग पुस्तके, 'ईर्ष्यायति महमेव पुच्छाफणो'  
च घ पुस्तके पाठः

कृतप्रणयकलहयोर्दपलो. प्रणयरोपभङ्गार्थं सखी भाह—

जिविअं असासअं विअ ण णिवत्तइ जोव्वणं अतिकन्वम् ।  
दिअहा दिअहेहिं समा ण होन्ति किं णिट्ठुरो लोणो ॥ ४७ ॥

[जीवित्तमशाश्वतमेव न निवर्तते यौवनमतिकान्तम् ।  
दिवसा दिवसैः समा न भवन्ति किं निष्ठुरो लोकः ॥]

अहरहयौवनकालस्य च हासार्त्तिक रोषपादेष्वेणात्मानं वक्ष्यथ इति भावः ॥  
वैश्योपभुज्यमानविभवं प्रियं कापि सासूयमन्यापदेशेनाह—

उत्पाइअदळ्ळणँ वि खलणँ को भाअणं खलो खेअ ।  
पकाइँ वि णिम्बफलाइँ णवरँ काएहिं खज्जन्ति ॥ ४८ ॥

[उत्पादितद्रव्याणामपि खलानां को भाजनं खल एव ।  
पकान्यपि निम्बफलानि केवलं काकैः खाद्यन्ते ॥]

उत्पादित द्रव्यैस्तेषां खलानाम् । भाजन दानपात्रम् ॥  
इद्विज्ञतां स्थापयन्नागरिकः सहचरमाह—

अज्ज मए गन्तव्वं घणन्धआरे वि तस्स सुहअस्स ।  
अज्जा णिमीलिअच्छी पअपरिवाहिं घरे कुणइ ॥ ४९ ॥

[अथ मया गन्तव्यं घनान्धकारेऽपि तस्य सुभगस्य ।  
आर्या निमीलिताक्षी पदपरिपाटीं गृहे करोति ॥]

नाकिञ्चानुरागं प्रकाशयन्त्या दूत्याः कामुक प्रत्युक्तिरियमिति केचित् ॥

कृतविप्रिय प्रति प्रतिदूलाचरणप्रवृत्तस्य कस्यचिन्निवारणाय कश्चित्सुजनचरित्र  
णंपति—

सुअणो ण कुप्पइ विअ अह कुप्पइ विप्पिअं ण चिन्तेइ ।  
अह चिन्तेइ ण जम्पइ अह जम्पइ लज्जिणो होइ ॥ ५० ॥

१. 'जीअ असासिअ विअ' इति ग-पाठः. २. 'णिवत्तइ' इति ग-पाठः. ३. 'अ-  
इकन्त' इति ख-ग-पाठः. ४. 'जीवमाभासितमेव' इति ग-पाठः. ५. 'न भवन्ति  
समाः' इति ग-पाठः. ६. 'उत्पादितद्रव्याणामपि' इति ग-पाठः. ७. 'को भवति  
भाजन' इति ग-पाठः. ८. 'पकानीव निम्बफलानि काकेनेव खाद्यन्ते' इति ग-पाठः.  
९. 'ईश्वरसुता' इति ग-पाठः. १०. 'लज्जितो' इति ग-पाठः.

[सुजनो न कुप्यत्येव अथ कुप्यति विप्रिय न चिन्तयति ।

अथ चिन्तयति न जल्पति अथ जल्पति लज्जितो भवति ॥]

तस्मादनुचितमिदं सुजनस्य भवत इति भावः ॥

भाविधनप्रत्याशया भुजगे कृतानुरागा दुहितरं वारयन्ती वेदयामाता धनादीनामुपा-  
देयतप्रयोजकमाह—

सो अत्यो जो हृत्थे तं मित्तं जणिरन्तर वसणे ।

त रूअ जत्थ गुणा त विण्णाणं जाहिं घम्मो ॥ ५१ ॥

[सोऽर्थो यो हृत्ते तन्मित्रं यन्निरन्तरं व्यसने ।

तद्रूपं यत्र गुणास्तद्विज्ञानं यत्र धर्मं ॥]

द्रव्यमादायैव त्वया भुजगं स्वीकार्यं इति भावः । यद्वा काचिद्रूपगर्वितां निर्गुणां  
निन्दन्त्या स्वगुणोत्कर्षं सूचयन्त्या इयमुक्तिः ॥

चिरप्रवासादागतो नायकः प्रियतमाया परितोषार्थमाह—

चन्द्रमुहि चन्द्रधवला दीहा दीहच्छि तुह विओअम्मि ।

चउजामा सअजाम व्व जामिणी क्हँ वि बोलीणा ॥ ५२ ॥

[चन्द्रमुखि चन्द्रधवला दीर्घा दीर्घाक्षि तव वियोगे ।

चतुर्यामा शतयामेव यामिनी कथमप्यैतिक्रान्ता ॥]

मयेति शेषः ॥

दुर्जनमैत्री न चिरकालस्यामिनीति सखी नायिका शिक्षयितुमाह—

अउलीणो दोमुहओ ता महुरो भोअणं मुहे जाव ।

मुरओ व्व खलो जिण्णम्मि भोअणे विरसमारसइ ॥ ५३ ॥<sup>५</sup>

[अकुलीनो द्विमुखस्ताव मधुरो भोजनं मुखे यावत् ।

मुरज इव खलो जीर्णे भोजने विरसमारसति ॥]

अकुलीनोऽसत्कुलप्रसूतः । मुरजपक्षे कौ पृथिव्यां न लीनः । द्विमुखः समक्षपरोक्ष-  
वचनभेदात् । पक्षे उभयमुखः । यावन्मुखे भोजनमाहारः । पक्षे पिष्टादिलेपः । मधुर-  
यवकाः । पक्षे श्रुतिमुखावहः । भोजने जीर्णे विरसमप्रियम् । पक्षे रूक्षध्वनिम् ।  
रसति । यद्वा दुर्जनमुखपिष्टदानार्थं कुलटां शिक्षयन्त्या कुट्टया इयमुक्तिः ॥

१ 'कुप्यत एव' इति ग घ पाठः २ 'यस्मिन्' इति ग-माठः ३ 'व्यतिक्रान्ता'  
उे ग घ-माठः ४ 'जिण्णे' इति ग पाठः ५. 'मधुरे' इति घ पाठः ६ 'रज इव  
उलीणो भाजने' इति घ पाठः

दर्शनमात्रेणैव विदग्धा भावमाविष्कुर्वन्ति लक्षयन्ति चेति दर्शयन्नागरिकः सहचर-  
शिष्यार्थमाह—

तद् सोर्णहाइ पुलइओ देरवलिअन्तद्धतारअं पहिओ ।

जह वारिओ वि घरसामिएण ओलिन्दए वसिओ ॥ ५४ ॥

[तथा स्रुपया प्रलोकितो देरवलितार्घतारकं पथिकः ।

यया वारितोऽपि गृहस्वामिना अलिन्दके सुतः ॥]

अलिन्दो वहिर्दारप्रकोष्ठः ॥

कार्यमप्रसाध्य श्लाघनपरस्य, प्रसाध्य वारमयुणोत्कीर्तनपरस्य निषेधाय कथितस्वरूपा-  
हयानेन विशुद्धं प्रकटयन्नाह—

लहुअन्ति लहुं पुरिसं पव्वअमेत्तं पि द्दो वि कज्जाइं ।

णिव्वरणमणिव्वूढे णिव्वूढे जं अ णिव्वरणम् ॥ ५५ ॥

[लघयतो लघु पुरुषं पर्वतमात्रमपि द्वे अपि कार्ये ।

निर्वरणमनिर्व्यूढे निर्व्यूढे यच्च निर्वरणम् ॥]

पर्वतमात्रमप्यत्यन्तगुरुमपि पुरुषं द्वे कार्ये लघु शीघ्रं लघयतो लघुकुरतः । अनि-  
र्व्यूढे अकृते कार्ये निर्वरण निवेदनम् । अकृतकार्यस्य निवेदनवैयर्थ्यात् । कृते च कार्ये  
स्वयमेव प्रतिद्विरित्यर्थः ॥

द्वारस्थितिकलितशीलखण्डनी कुलजा कुटनी विभासयित्वाहाह—

कं तुङ्गयणुविसत्तेण पुत्ति दागट्टिआ पलोएसि ।

उण्णामिअकलसणिवेसिअग्घकमलेण य मुहेण ॥ ५६ ॥

[कं तुङ्गस्तनोत्क्षिप्तेन पुत्रि द्वारस्थिता प्रलोकयामि ।

उष्णामितकलशनिवेशितार्घकमलेनेन मुखेन ॥]

१. 'सुण्हाइ' इति ग-पाठः. - २. 'देरवलिअवडुनारअं' इति ग-पाठः. ३ 'अलि-  
न्दए' इति ग-पाठः. ४. 'मनागवलितवियेवतारक' इति ग-पुस्तके, 'देरवलितान्तर्द्वा-  
रकं' इति च घ-पुस्तके पाठः. ५. 'गृहस्वामिकेन' इति घ-पाठः. ६. 'अलिन्दके उ-  
पितः' इति ग-पुस्तके, 'अलिन्दे वसितः' इति च घ-पुस्तके पाठः. ७. 'लघयन्ति'  
इति क-स-पाठः. ८. 'अपि' इति क-स-ग-पुस्तकेषु नास्ति. ९. 'यदनिर्वरणम्'  
इति घ-पाठः.

दूरादवलोकनार्थं पूर्वेणायस्योन्नामितत्वात्तुहस्तनोत्क्षिप्तेन उन्नामितयो कलशयोन  
 वेदितेनार्थकमलेनेव मुखेन हे पुत्रि, द्वारि स्थिता त्व क प्रलोभयति कथय । तमहमचि  
 रात्रेव साधयामीति भाव ॥

गुह्यर्थं निवेशितोऽपि खल प्रत्युत रहस्यमेव प्रकाशयतीति प्रदर्शनभागरिक सह  
 चरमाह—

वइविवरणिग्गअदलो एरण्डो साहइ व्व तरुणाणम् ।

एत्थ घरे हल्लिअवहू एदहमेत्तत्थणी वसइ ॥ ५७ ॥

[वृत्तिविवरनिर्गतदल एरण्ड साधयतीव तरुणेभ्य ।

अत्र गृहे हल्लिकवधूरेतावमात्रस्तनी वसति ॥]

वृत्तिघनौघरणार्थं तदुपा ते रोपितवावृत्तिविवरेण निगत दल यस्य स । साधयति  
 कथयति । एरण्डव्यपदेशेन हल्लिकवध्वा स्तनौ वर्णयत्या दूया कामुक प्रतीदमुचि  
 रित क्वचित् ॥

सवर तामानयति भुजगेनोक्ता कुटनी दुहितुगणगामि वगुणेन भुजग साभिलाप कु  
 वाणा निदाव्यापेन स्तनयो स्तुतिमाह—

गअकलहकुम्भसणिहयणपीणणिरन्तरेहिं तुझेहिं ।

उस्ससिउ पि ण तीरइ किं उण गन्तु हअथणेहिं ॥ ५८ ॥

[गजकलभकुम्भसनिमघनपीननिरतराभ्या तुद्राभ्याम् ।

उच्छ्वसितुमपि न तीरयति किं पुनगतु हतस्तनाभ्याम् ॥]

गज इव प्रौढ कलभो गजकलभस्तदीयकुम्भसनिभौ घनौ निविष्टौ पीनी स्थूरी  
 नतएव निर तरौ यौ तुक्षी स्तनौ ताभ्यामित्यर्थ । तीरयति शक्नोति । क्वचिद्गुणोऽपि  
 रोपता यातीति निदर्शयभागरिकोऽभिसारिकाया सवराभिस्वरगमनविरोधित्तनभारं  
 मयुद्वेगनेदमाहेति केचित् ॥

रम्याणा तत्तद्विशेषप्राप्त्या रम्यतासिंशयो भवतीति प्रतिपादयती कुटनी भुजग न  
 की स्त दुहितरे प्रति साभिलाप कर्तुमाह—

मासपसुअ छम्मासगच्चिणिं एकदिअहजरिअ च ।

रकुत्तिण्ण च पिअ पुत्तअ कामन्तओ होहि ॥ ५९ ॥

१ 'शततीव' इति घ पाठ २ तीयत्वे इति ग पुस्तके. 'रकोदि' इति च घ  
 पुस्तके पाठ



[मासप्रसूतां षण्मासगर्भिणीमेकदिवसज्वरितां च ।

रक्षोत्तीर्णां च प्रियां पुत्रक कामयमानो मय ॥]

मासप्रसूतादीनामतिशयितसुरतमुत्प्रेतपादकृतायाः कामशास्त्रसिद्धत्वात् । नर्तकीं स्वदुहितर प्रति लोभयन्त्याः कुट्या भुजगं प्रतीयमुक्तिरिलप्याहुः ॥

काचिदुत्तुङ्गपीनस्तनीं नायिका कथियुवा स्त्राभिलाष प्रकाशयन्नाह—

पडिवस्त्रमण्णुपुञ्जे लावण्यउडे अणङ्गअकुम्भे ।

पुरिससअहिअधरिए कीस थणन्ती थणे वहसि ॥ ६० ॥

[प्रतिपक्षमन्युपुञ्जौ लावण्यकुटावनङ्गगजकुम्भौ ।

पुरुपशतहृदयधृतौ किमिति स्तनन्ती स्तनौ वहसि ॥]

प्रतिपक्षस्य सपत्नीजनस्य मन्युपुञ्जौ वित्तक्षोभजननात् । लावण्यस्य जुटौ (घटौ) सौन्दर्यातिशयात् । अनङ्गलक्षणस्य गजस्य कुम्भौ । पुरुपशतेन हृदये मनसि धृतावभिलषितौ । एतादृशौ स्तनौ स्तनन्ती कुन्यन्ती किमिति वहसि । अस्मद्विधं जन कथं न कृतार्यंमधीति भावः ॥

विरोधिनोऽपि कदाचिदनुकूला भवन्तीति निदर्शयन्कथिदाह—

वरिणिघणत्थणपेङ्गणसुहेल्लिपडिअस्स होन्तपहिअस्स ।

अत्रसउणङ्गारअवारविट्ठिदिअहा सुहावेन्ति ॥ ६१ ॥

[शुद्धिणीघनस्तनप्रेरणसुखकेलिपतितस मविप्यत्पथिकम्य ।

अपशकुनाङ्गारकवारविष्टिदिवेसाः सुखयन्ति ॥]

कमपि युवानं प्रति दूती कस्याचिदनुरागातिशयमाह—

सा तुह कएण बालअ अणिसं घरदारतोरणणिसण्णा ।

ओससई वन्दणमालिअ ठव दिअहं त्रिअ वराई ॥ ६२ ॥

[सा तव कृतेन बालकानिशं गृहद्वारतोरणनिषण्णा ।

अवशुष्यति वन्दनमालिकेव दिवसमेव वरावी ॥]

सहजगुणहीनानामाहासंशुणाघान न निरकालस्यायीति काचिदन्यापदेशेनाह—

हसिअं सहत्थतालं सुक्खवडं उवगएहिं पहिएहिं ।

पत्तअफलाणं सरिसे उट्टीणे सूअविन्दम्मि ॥ ६३ ॥

१. 'उञ्जे' इति ग पाठः. २. 'उले' इति ग-पाठः. ३. 'शुद्धिणा' इति क-ख-ग-पाठः. ४. विष्टिभिरेत्यर्थः. ५. 'उवगएहिं' इति ग-पाठः. ६. 'पुसवगम्मि' इति ग-पाठः. 'पुसवन्दः शुके वर्तते' इति उलबालदेशः.

[हसितं सहस्रतालं शुष्कवटमुपगतेः पथिकैः ।

पत्रफलानां सदशो उड्डीने शुक्कयुन्दे ॥]

पत्रफलानां उड्यं वृक्ष इति युग्मा विभ्रामार्थं शुष्कवटमुपगतेः पथिकैः पत्रफलसदशे शुक्कयुन्दे उड्डीने सति सहस्रतालं यथा स्वात्तया दक्षितमित्यर्थः । सेकेनस्थाने जनाव-  
स्थितिसूचनेनाभिसारिद्धां निवारयन्त्या दृष्ट्या इत्यसुक्तिरिति केचित् ॥

पत्ना सह वृत्कलहायाः सम्या रात्रिवृत्तान्तमनुगंधामागता सखी मत्तुलान्या पृष्ट्या  
तरतीभाग्यमाह—

अत्र म्मि हासिभा मामि तेण पाएमु तह पडन्तेण ।

तीए वि जलन्ति दीववत्तिमच्छुण्णअन्तीए ॥ ६४ ॥

[अघासि हासिता मातुलानि तेन पादयोस्तथा पतता ।

तथापि ज्वलन्ती दीपवर्तिर्मभ्युत्तेजयन्त्या ॥]

अन्येऽपि मम सौभाग्यं परमदिवति युग्मा दीशोत्तेजनं वृत्तान्याः । दिवा तथा पश्यवा-  
दिनस्य रात्रौ तादृशदेव्य इष्टा तस्याथ योग्यताभिमानजं पतिं प्रत्यनादरे इष्टा मम  
हासो जात इत्यर्थः ॥

पूर्वगुभगामनुवर्तमानं पतिं इष्टा स्वसौभाग्यमवहुमन्यमानां नपसुभगां सान्त्वयितु  
सखी मुजनक्षभावमाह—

अणुवत्तणं शुण्णसो वेसे वि जणे अहिण्णमुहराओ ।

अप्पवसो वि हु सुअणो परव्वसो आहिआईए ॥ ६५ ॥

[अनुवर्तनं शुर्वन्देप्येऽपि जनेऽमिन्नमुत्तरागः ।

औत्मवशोऽपि सत्तु मुजनः परवशः कुलीनतया ॥] आभिजात्या

त्वदेतरतोऽपि कुलीनतया तामनुदग्धे, न तु श्रेहेनेति भावः ॥

मानिन्याः पूर्वगुभगायास्तिरस्कारेणान्यवनितासक्त दुर्विदग्धं शिक्षयन्ती जरद-  
भूराह—

अणुदिअह्वट्टिआअग्गिण्णायणुणोहिं जणिअमाहप्पो ।

पुत्तअ अहिआअजणो विरज्जमाणो वि दुहक्खो ॥ ६६ ॥

१. 'उपगतेन पथिकेन' इति ग-पाठः. २. 'पत्रपत्रसदशे' इति ग-पाठः. ३. 'मामि'  
इति ग-पुस्तके, 'मातुलि' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'अभ्युत्तेजयन्त्या' इति घ-  
पाठः. ५. 'दिशे' इति ग-पाठः. ६. 'अप्पवसो वि हि' इति ग-पाठः. ७. 'आ-  
त्मवशोऽपि हि' ग-पाठः. ८. 'आभिजात्याः' इति ग-पुस्तके, 'आभिजात्यस्य' इति च  
घ-पुस्तके पाठः.



सीधुवानेन मत्ताया मानभङ्गमाकलय्य मानिनीमानशमनोपायशिक्षार्थं नागरिकः  
गह्वरमाह—

माणोसहं व पिज्जइ विआइ माणंसिणीअ दइअस्स ।

करसंपुडवलिउट्ठाणणाइ मइराइ गण्डूसो ॥ ७० ॥

[मानौषधमित्र पीयते प्रियया मनैस्त्रिन्या दयितस्व ।

करसंपुटवलितोर्ध्वाननया मदिराया गण्डूपः ॥]

सुरापूर्णेन मुखेन मुखे दत्ता सुरा पीता सती मानमपनयतीति भावः ॥

नायकप्रलोभनाय दूती नायिकायाः सौन्दर्यातिशयमाह—

कहँ सा णिब्बणिज्जइ जीअ जहा लोइअम्मि अङ्गम्मि ।

दिट्ठी दुब्बलगाई व्व पङ्कपडिआ ण उत्तरइ ॥ ७१ ॥ ✓

[कथं सा निर्गन्धतां यस्या यथालोकितेऽङ्गे ।

दृष्टिर्दुर्बला गौरिव पङ्कपतिता नोत्तरति ॥]

यत्र पतिता तत्रैवावतिष्ठत इत्यर्थः ॥

कश्चिदर्थे वदन्ती दूती कापि तस्यास्त्रिभेदतां वर्णयन्त्याह—

कीरन्ती विअ णासइ उअए रेह व्व खलअणे मेत्ती ।

सा उण सुअणम्मि कआ अणहा पाहाणरेह व्व ॥ ७२ ॥

[क्रियमाणैव नश्यत्सुदके रेभेव खलजने मैत्री ।

सा पुनः सुजने कृता अनघा पापाणरेखेव ॥]

अनघा निरपाया ॥

विरप्रसादागत्वा पुनरविराद्गन्तुमिच्छन्तं नायकं कापि सदेव्यमाह—

अब्बो दुक्करआरअ पुणो वि तन्ति करेसि गमणस्स ।

अज्ज वि ण होन्ति सरळा वेणीअ तरङ्गिणो चिउरा ॥ ७३ ॥

[अव्यो दुष्करवारक पुनरपि विन्तां करोषि गमनस्य ।

अद्यापि न भवन्ति सरला वेण्यास्तरङ्गिणश्चिकुराः ॥]

१. 'विआए' इति ग पाठः. २. 'उत्ताणणाइ मइराए' इति ग-पाठः. ३. 'मानिन्या' इति ग पाठः. ४. 'वलनोत्तानया' इति ग पाठः. ५. 'वदनमदिराया' इति घ-पाठः. ६. 'णिब्बणिद्वीउ' इति ग-पाठः. ७. 'वधावलोकिते' इति ग-पाठः. ८. 'दुर्बलगौरिव' इति ग-पाठः. ९. 'दृष्टं दुष्कर—' इति ग-पाठः. 'अव्यो दु सहस्रशो-र्वन्ते' इति कुलबालदेवः. १०. 'केसाः' इति ग पाठः.

अव्यो इति साधर्थचमन्कारे । दुष्करेति स्त्रीवधपातककारित्वादिति भावः । वीणीव-  
न्धेन तरङ्गिणः कौटिल्यभाजधिकुरा अद्यापि सरला न भवन्तीति संबन्धः ॥

अव्युत्पन्नत्वाद्नुत्पद्यमानस्य दुर्विदग्धधनिकस्य प्रवृत्तिपाठवार्थं धूर्ता काचित्सद्भाव-  
ब्रह्मप्रशंसामाह—

ण वि तह छेअरआइँ वि हरन्ति पुणरुत्तगाअरसिआइँ ।

जह जत्य च तत्थ व जह व तह व सद्भावणेहेरमिआइँ ॥ ७४ ॥

[नैपि तथा छेकरतान्यपि हरन्ति पुनरुत्तरागरेसिकानि ।

यथा यत्र वा तत्र वा यथा वा तथा वा सद्भावब्रह्महरमितानि ॥]

छेकानामपूर्वापूर्वरतशिष्यकुशलानां रतान्यपि तथा न हरन्ति । पुनरुक्ते पुनः पुनः  
परिशीलिते रागे रघने रतव्यापारे रसिकानि ॥

किमिति कृशासीति श्रियेण पृथ्य पूर्वमुभगा तमाह—

उज्जसि पिअइँ समअं तह वि हुँ रे भणसि कीस किसिअं ति ।

उवरिभरेण अ अण्णुअ मुअइँ वइँलो वि अज्जाइँ ॥ ७५ ॥

[उज्जसे प्रियया समं तथापि खलु रे भणमि किमिति कुंशेति ।

उपरि(भरेण) च हे<sup>२</sup> अज्ज मुचति बलीवदोऽप्यज्जानि ॥]

प्रवासादागतेन श्रियेणाद्य कथं त्वरया रमितमिति वदन्तीं सखी नायिका साधु-  
रागमाह—

दिदंमूलवन्धगण्ठि व्व मोइआ कहँ वि तेण मे वाहू ।

अम्हेहिँ वि तरस उरे खुत्त व्व समुक्खआ यणआ ॥ ७६ ॥

[दिदंमूलवन्धधेन्धी इव गोचित्तौ कथमपि तेन मे वाहू ।

अस्माभिरपि तस्योरसि निखाताविव समुत्खातौ स्तनौ ॥]

१. 'छेअरुआइँ' इति ग-पाठः. २. 'वेह' इति ग-पुस्तके नास्ति. ३. 'नैव तथा  
छेकरतान्यपि' इति ग-पाठः. 'छेकराब्दः खिन्नवचन.' इति कुटुम्बालदेवः. ४. 'र-  
सिकानि' इति घ-पाठः. ५. 'सद्भावरमितानि' इति ग-पाठः. ६. 'उज्जसि' इति  
ग-पाठः. ७. 'हुँ' इति ग-पुस्तके नास्ति. ८. 'बुध्यसे प्रियायाः समय' इति ग-पाठः.  
९. 'खलु' इति ग-पुस्तके नास्ति. १०. 'कृशातेति' इति घ-पाठः. ११. 'भरेण  
च अज्ज (१) मुचति वृषभो' इति ग-पाठः. १२. 'हे' इति घ-पुस्तके नास्ति.  
१३. 'गूढवद्' इति र-पाठः. १४. 'दृढगूढवद्प्रन्धी' इति घ-पाठः. १५. 'प्रन्धि-  
रिव' इति ग-पाठः.

अनुरागनिर्भरालिङ्गनवशादन्योन्यलम्बौ मे बाहू तेन कथमपि मोचिती अन्मानि-  
रपि स्तनौ निखात्ताविव कथमपि समुत्खातौ ॥

कलहान्तरि नामतुनीयागता सखी तत्कान्तमाह—

अणुणअपसाइआए तुज्झ धराहे चिरं गणन्तीए ।

अपहुत्तोहअहत्थङ्गुरीअ तीए चिरं रुण्णम् ॥ ७७ ॥

[अनुनयप्रसादितया तवापराधाश्चिरं गणयन्त्या ।

अप्रभूतोभयहस्ताङ्गुल्या तया चिरं रुदितम् ॥]

अपराधाना बहुत्वादप्रभूता उभयहस्ताङ्गुल्यो यस्यास्तया । कथं कथमपि मया प्र-  
सादिता इत परं मेधं वापीरिति भावः ॥

नर्तनध्रमप्रस्निग्धाङ्गना दुहितुः सौन्दर्यातिशयं कामुकवित्तप्रलोभनाय नुटनी व-  
पयति—

सेअच्छलेण पेच्छह तणुए अङ्गम्मि से अमाअन्तप् ।

लावण्णं ओसरइ व्व तिवालिओवाणअत्तिप् ॥ ७८ ॥

[खेदच्छलेन पश्यत तनुकेऽङ्गे तस्या अमात् ।

लावण्यमपसरतीव निवलीसोपानर्पङ्किभिः ॥]

तनुके तस्या अङ्गे समातुनसमर्थं लावण्यं खेदच्छलेनापसरतीवेति प्रोजना । चीरं  
रतगोपनार्थं सख्या उक्तिरियमिति केचित् ॥

पुञ्जगमभिमुखीकर्तुं कुशनी कस्याधिदलब्धलामसत्कारतारूपं दोष परिहरन्ती सौ-  
न्दर्यातिशयमन्यापदेशेन वर्णयति—

देव्वाअत्तम्मि फले किं कीरइ एत्तिअं पुणो भणिमो ।

कङ्केहिपहवाणं ण पहवा होन्ति सारिच्छा ॥ ७९ ॥

[देवायत्ते फले किं क्रियतामिथैत्पुनर्भणामः ।

कङ्केहिपहवाना न पहवा भवन्ति सदृशा ॥]

कङ्केहिरशोकः । अन्ये पहवा अशोरुपहवानां सदृशा न भवन्तीत्यर्थः । देवाधीनी  
लाभसत्कारौ मा भवता नाम । तत्सदृशी सुन्दरी पुनरन्या नास्तीत्याशयः ॥

१. 'रुणं धराहे' इति ग-पाठः. २. 'अप्रभवदुभय' इति घ पाठः. ३. 'रुदितं  
वराक्या' इति ग घ पाठः. ४. 'प्रेक्षते' इति ग-घ-पाठः. ५. 'अमायमानं' इति  
ग पुस्तके, 'अमायत्' इति च घ पुस्तके पाठः. ६. 'पहवा' इति ग-घ-पाठः. ७.  
'कीरउ एत्तिअ उण भणामो' इति ग-पाठः. ८. 'करोतु' इति ग पाठः. ९. 'एतावत्'  
इति ग-घ-पाठः. १०. 'अशोरुपहवानां नवपञ्चवा' इति. घ-पाठः.

ससौभाग्यहत्यापनाय विरहविपुलां कलहान्तरितां हृदीं कान्तां दर्शयन्सदनुनय-  
र्यमागतः कान्तः सहचरमाह—

washes

धुअइ व्व मअकलङ्कं कपोलपडिअस्स माणिणी, उअह ।

अणवरअवाहजलभरिअणअणकलसेहि चन्द्रस्स ॥ ८० ॥

[धावतीव मृगकलङ्कं कपोलपतितस्य मानिनी पश्यत ।

अनवरतवाष्पजलमृतनयनकलशाम्ब्यां चन्द्रस्य ॥]

कपोलप्रतिबिम्बितस्य चन्द्रस्य कलङ्क मानिनी धावतीव प्रक्षालयतीवेति योऽना ।  
एतेन प्रियायाः सौन्दर्यमात्मनः सौभाग्यं च वर्णितम् ॥

बहुपत्नीकस्य भर्तुर्नैयमतीव बहूभा भविष्यति, अतः पुनरागमिष्यत्येवात्र तत्किमेवं  
विह्वोऽसीति वयस्येनाक्षास्यमानो ज्ञातिगृहात्पतिगृहं प्रस्थिताया जारस्यमन्यापदे-  
शेनाह—

गन्धेण अप्पणो मालिआणं गोमालिआ, ण कुट्टिहइ ।

अण्णो को वि ह्मासाइ मंसलो परिमलुग्गारो ॥ ८१ ॥

[गन्धेनात्मनो मालिकानां नममालिका नै च्युता भविष्यति ।

अन्यः कोऽपि ह्येताशाया मांसलः परिमलोद्धारः ॥]

नानापुष्पमथितमालिकानां मध्ये नवमालिकाएव पुष्पविशेष आत्मनो गन्धेन न  
च्युतो भविष्यति । यतो ह्येता आशा अन्य एव यथा तस्याः । अन्य इतरविलक्षणः  
कोऽपि मांसलो बहलः परिमलोद्धारः ॥

नटधनं भुजंगमुत्साहयितुं कुट्टनी सत्पुरुषप्रशंसामाह—

फलसंपत्तीअ समोणआइं तुङ्गाइं फलविपत्तीए ।

हिअआइ सुंपुरिसाणं महातरूणं व सिहराइं ॥ ८२ ॥

[फलसंपत्त्या समवनतानि तुङ्गानि फलविपत्त्या ।

हृदयानि सुपुरुषाणां महातरूणामिव शिखरानि ॥]

समवनतानि नम्रानि । तुङ्गानि उन्नतानि ॥

प्रोषितभर्तृकायाः सखी तत्कान्तस्यागमनत्वरार्थं तत्समीपगामिनं पथिकमाह—

आसासेइ परिअणं परिवत्तन्तीअ पहिअजाआए ।

णित्थाणुवत्तणे वळिअहत्थमुहलो वळअसइो ॥ ८३ ॥

१. 'कुट्टिहइ' इति ग-पाठः. २. 'मालिनीनां' इति ग पाठः. ३. 'न न्यूना' इति  
घ-पाठः. ४. 'हताशानां' इति ग-पाठः. ५. 'सुपुरिसाणं' इति ग पाठः. ६ 'सि-  
खराणीव' इति ग-पाठः.

[आश्वासयति परिजनं परिवर्तमानायाः पथिकजायायाः ।

निःस्थामवर्तने बलितहस्तमुखरो बलयशब्दः ॥]

परिवर्तमानायाः शयने पार्श्वपरिवृत्तिं कुर्वन्त्याः पथिकजायाया निःस्थाम निःसहं यद्-  
तं तेन बलिते हस्ते मुखरोऽनुबद्धक्षणत्कारो बलयशब्दः परिजनमाश्वासयति जीवय-  
तीति । श्लेषयतीत्यर्थः ॥

शौणविभवस्यापि नायकस्य महैच्छता सूचयन्ती दूती नायिकामनुरञ्जयितुमाह—

तुङ्गो च्चिअ होह मणो मणंसिणो अन्तिमासु वि दसासु ।

अत्थमणम्मि वि रइणो किरणा उद्धं चिअ फुरन्ति ॥ ८४ ॥

[तुङ्गमेव भ्रमति मनो मनस्विनोऽन्तिमासुपि दशासु ।

अस्तमनेऽपि रवेः किरणा ऊर्ध्वमेव स्फुरन्ति ॥]

एतेन निर्धनोऽप्यसौ वदान्यः न चाधमां कामयत इति सूचितम् ॥

महैच्छनादिकानुरञ्जनार्थं नायकस्य वदान्यतां यरोपकारितां च प्रस्तावयितुं दूती  
कृपणनिन्दां सत्पुरुषस्य च प्रशंसामाह—

पोट्टं भरन्ति सडणा वि माडआ अप्पणो अणुन्विगा ।

विहँलुद्धरणसहावा हुवन्ति जइ के वि सप्पुरिसा ॥ ८५ ॥

[उदरं विभ्रति शकुना अपि हे मातर आत्मनोऽनुद्विगाः ।

विहँलोद्धरणसहावा भवन्ति यदि केऽपि सत्पुरुषाः ॥]

पक्षिणोऽपि परमांसभक्षणादिना खोदरपूरणं कुर्वन्ति । दोनटुःखापहारधुरंधरासु  
तादृशा विरला इति भावः ॥

कृत्रिमेणापि भावेन मामिन्यः पुरुषाननुरञ्जयन्तीति कथाविदुक्ता विदग्धवधु-  
स्तामाह—

ण विणा सट्ठम्भेण ग्येप्पइ परमत्थजाणुओ लोओ ।

को जुण्णमत्तरं कच्चिएण वेआरिउं वरइ ॥ ८६ ॥

[न विना सट्ठम्भेण गृह्यते परमार्थज्ञो लोकः ।

को जीर्णमार्जारं काञ्चिकया प्रतारयितुं शक्नोति ॥]

१. 'नि स्थानोद्वर्तने' इति ग-पुल्लके, 'निःसहवर्तनवर्जित' इति च घ-पुल्लके पाठः.

२. 'उपमेव' इति ग-पाठः. ३. 'विहँलुद्धरणसहावा' इति ग-पाठः. ४. 'हे मातरः'

इति ग-पाठः. ५. 'विहँलोद्धरण' इति ग-पाठः. ६. 'काञ्चिकेन' इति ग-घ-पाठः.



अलंकारायदानादपरिदुष्टा नायिकामनुकूलयितुं दूती अकारणक्षेहबहुमानमन्याप-  
देशेनाह—

रष्णाड तणं रष्णाड पाणिअं सव्वअं सअंगाहंम् ।

तह वि मआणं मईणं अ आमरणन्ताइं पेम्माइं ॥ ८७ ॥

[अरण्यात्तृणमरण्यात्वानीय सर्वतः स्वयम्राहम् ।

तथापि मृगाणा मृगीणा चा मरणा तानि प्रेमाणि ॥]

निदृषाधिक प्रेम श्लाघ्यमिति भावः ॥

सतापातिशयखण्डनाय चन्दनलेपाद्युपचारं कुर्वाणा वारयन्ती विरहिणी काचिदाह—

तावमवणेइ ण तहा चन्दणपङ्को वि कामिमिहुणाणेइ ।

जह दूसेहे वि गिन्हे अण्णोण्णालिङ्गणसुहेली ॥ ८८ ॥

[तापमपनयति न तथा चन्दनपङ्कोऽपि कामिमिधुनानाम् ।

यथा दु सहेऽपि ग्रीष्मे अन्योन्यालिङ्गनसुखवेलिः ॥]

यदुपचारेण यस्योपशमनं भवति तत्रान्य उपचारो विफल इति भावः ॥

सपत्न्या दुःखारिष्यख्यापनार्थं सुगन्धधूर्तविरुद्धा प्रथमरजोयोगसूचनव्युत्पत्ति तस्याः  
सूचयन्ती काचिसौधमाह—

दुष्पण्णा किणो चिट्ठसि ति पडिपुच्छिभाएँ बहुआए ।

दिग्गुणवेट्ठिअजहणत्यलाइ लज्जोणअं हसिअम् ॥ ८९ ॥

[पृतिज्ञानना किमिति तिष्ठसीति परिपृष्टया वध्या ।

द्विगुणापेष्टितजघनस्थलया लज्जावनत हसितम् ॥]

जघनस्थलप्रच्छादनेनैवातंबमाविष्कुर्वन्त्या लज्जावनतं यथा स्यात्तथा हसितमित्यर्थं ॥  
कुलव्रीहत्तशिशार्थं बन्धुवधू कुलवधूमाह—

दिअअ षेअ विलीणो ण साहिओ जाणिरुण घरसारम् ।

वान्धवदुब्बअणं विअ दोहलओ दुग्गअवहूए ॥ ९० ॥

[हृदय एव विलीनो न वैधितो ज्ञात्वा गृहसारम् ।

वान्धवर्दुर्वचनमिव 'दोहदो दुर्गतवध्या ॥]

१. 'स्वय म्राहम्' इति घ पाठ . २ 'किणो अचिट्ठसि ति' इति ख ग पाठ .  
३. 'पृत' इति ग पुल्लके नास्ति; 'पृतानना' इति घ-पाठ . ४. 'किमिदरसीति' इति  
घ-पाठ . ५. 'साधितो' इति ग-घ पाठ . ६. 'दुर्विनयमिव' इति ग-पाठ . ७. 'दो-  
हदको' इति घ पाठ .

शुल्कीचरितविद्ध सपत्न्या धार्ष्ट्यं ह्यापयन्ती कापि बन्धुवधूजनमाह—

धावद् विअलिअधम्मिहसिचअसजमणवावडकरग्गा ।

चन्दिलभअविबलाअन्तडिम्भपरिमग्गिणी घरिणी ॥ ९१ ॥

[धावति विगलितधम्मिहसिचयसंयमनव्यापृतकरामा ।

• चैन्दिलभयविपलायमानडिम्भपरिमार्गिणी गृहिणी ॥]

विगलितयो शिथिलयोर्धम्मिहसिचययो समयने व्यापृते कराग्रे यस्या सा । च-  
न्दिलो नापितस्तस्य भयेन विपलायमानस्य डिम्भस्य परिमार्गणशीला गृहिणी धा-  
वति । 'चन्दिल पुसि वास्तूकशाके गर्भे च नापिते' इति मेदिनीकोष । एव च च-  
न्दिलशब्दो नापितवचनो देशीति कस्यचिदुक्ति कोपानालोचनमूलत्वादुपेक्ष्या । व्या-  
जेन स्तनबाहुतूलादिदर्शयितु धावतीति योजना वा ॥

भुजगप्रलोभनार्थं दूती नायिकाया वय सभि सौभाग्यं चाह—

जह जह उव्वहइ वहु णवजोव्वणमणहराई अङ्गाई ।

तह तह से तणुआअइ मज्झो दइओ अ पडिबक्खो ॥ ९२ ॥

[यथा यथोद्धेहते बधूर्नवयौवनमनोहराण्यङ्गानि ।

तथा तथा तस्मात्सैन्यते मध्यो दयितश्च प्रतिपक्ष ॥]

चकारो भिन्नक्रम प्रतिपक्षधेति योज्य । सभावाग्मध्य । अत्यासक्त्या दयित ।  
ईर्ष्यासतापेन प्रतिपक्ष ॥

उद्धपतिद्वेषिणी कुलवधू शिक्षयन्ती कापि पतिमतावृत्तमाह—

जह जह जरापरिणओ होइ पई दुग्गओ विरुओ विं ।

बुलवालिआणं तह तह अहिअअरं बहहो होइ ॥ ९३ ॥

[यथा यथा जरापरिणतो भवति पतिर्दुर्गतो विरूपोऽपि ।

कुलपालिकाना तथा तथाधिकतरं बल्लभो भवति ॥]

कमपि युवान प्रति साभिलाषा कामिनी समानवय शीलं मातुलानीमाह—

एसो मामि जुवाणो वारंवारेण जं अहअणाओ ।

गिन्हे गामेक्कवडोअअ व किच्छेण पावन्ति ॥ ९४ ॥

१ 'मग्गोसिणी' इति ग पाठ. २. 'विगलितकेशवस्त्र' इति ग-पाठ ३ 'नापि-  
तभयपलायमान' इति ग-पुस्तके, 'नापितभयविपलायमान' इति घ पुस्तके पाठ.  
४. 'बालकमार्गिणी' इति ग-पाठ. ५ 'उद्धति' इति ग घ-पाठ ६. 'सिद्धिपिते'  
इति ग पुस्तके, 'तनुकायते' इति च घ पुस्तके पाठ. ७. 'अ' इति ग पाठ.

[एष भ्रातृलानि युवा वारंवारोण यमसत्यः ।

श्रीष्मे प्रामैकवटोदकमिव कृच्छ्रेण प्रामुनन्ति ॥]

अदृशनाओ भसत्यः । वारंवारोण कारकमेण । पर्यायेणेति यावत् । यं युवानमसत्यः  
कृच्छ्रेण प्रामुनन्ति स मयानायासेन प्राप्यत इति स्वसौभाग्यप्रकटनम् ॥  
परवनितासुरस्तलम्पटस्य निजनायकस्य सकेतस्थानभङ्गेन परितुष्टा कपि पतिप्रता  
पितृष्वसारमाह—

गामवडस्त पिउच्छा आवण्डुमुदीर्णं पण्डुरच्छाअम् ।

हिअएण समं असईअं पडइ वाआहअं पत्तम् ॥ ९५ ॥

[गामवटस्य पितृष्वस आपण्डुमुखीनां पाण्डुरच्छायम् ।

हृदयेन सममसतीनां पतति चाताहतं पत्रम् ॥]

गामवटस्य पत्रमसतीनां हृदयेन समं पततीति संबन्धः ॥

द्विजितज्ञतामनः ह्यापयन्नागरिकः सहचरमाह—

पेच्छइ अलद्वलक्खं दीहं णीससइ सुण्णअं हसइ ।

जह जम्पइ अफुडत्थं तह से हिअअट्ठिअं किं पि ॥ ९६ ॥

[पश्यत्वलम्बलक्ष्यं दीर्घं निश्चसिति सूच्यं हसति ।

यथा जल्पत्यस्फुटार्थं तथा तैसा हृदयस्थितं विमपि ॥]

नागरिकः सहचरशिष्यार्थमसतीनां प्रयुत्पन्नमतिरवमाह—

गह्वइ गओम्ह सरणं रक्खत्तमु एअं त्ति अद्वअणा भणिरी ।

सहसागअस्स तुरिअं पइणो व्विअ जारमप्पेइ ॥ ९७ ॥

[गृहपते गतोऽस्माकं शरणं ईक्षेनमित्यसनी भणित्वा ।

सहसागतस त्वरितं पत्युरेष जारमर्पयति ॥]

निदृश्यमानोऽपि भावः स्वभावादेवाविर्भवतीति प्रतिपादयन्ती कपि'सर्सी शिक्ष-  
पितृमाह—

हिअअट्ठिअस्स दिज्जउ तनुआअन्ति ण पेच्छइ पिउंच्छा ।

हिअअट्ठिओम्ह फंतो भणिउं मोहं गआ कुंभरी ॥ ९८ ॥

१. 'भगिनि' इति ग-पुल्लके, 'मात्रुति' इति च ग-पुल्लके पाठः. २. 'यं च सत्त-  
नाः' इति ग-पाठः. ३. 'प्रेषये' इति ग घ-पाठः. ४. 'शून्यकं' इति घ-पाठः.  
५. 'असा' इति ग-पाठः. ६. 'अनिउणा अनिउम्' इति ग-पाठः. ७. 'गृहपतिर्' इति  
ग-पाठः. ८. 'इक्षेनमित्यदिनिपुणं भणित्वा' इति ग-पाठः. ९. 'मणनशीला' इति  
घ-पाठः. १०. 'पिउच्छा' इति ग-पाठः. ११. 'कुभरी' इति ग-पाठः.

[हृदयेषितस्य दीयतां तैर्नूमवन्तीं न पश्यथ पितृघ्नसः ।

हृदयेषितोऽस्माकं कुतो भणित्वा मोहं गता कुमारी ॥]

अयमर्थः—कौमारदशायामेव कस्मिन्नपि पुरुषे कस्याधिदनुरागं दृष्ट्वा कथापि विदग्धया पितृघ्नस्यै प्रत्युक्तम्—इयं हृदयेषिताय कस्मैचिदीयतामिति । ततः स्वाशयनिवृत्तार्थं तयास्माकं कुमारीणां हृदयेषितः कृत इत्युक्त्वा प्रियस्मरणावेगान्मोहः प्राप्त इति ॥

सुजंगप्रलोभनाय द्यूती नायिकायाः सुरतावसानोपचारचातुर्यमाह—

खिण्णस्स घरे पेंदणो ठवेइ गिम्हावरण्हरमिअस्स ।

धोलं गलन्तकुसुमं ण्हाणसुअन्धं चिउरभारम् ॥ ९९ ॥

[खिन्नसोरसि पर्युः स्थापयति श्रीध्मापराङ्गरमितस ।

आर्द्रं गलत्कुसुमं आनसुगन्धं चिकुरभारम् ॥]

स्योत्प्रायां केलिरसिको युवा कान्तायाः कपोलकान्तिं वर्णयति—

अह सरसदन्तमण्डलकपोलपडिमागओ र्मअच्छीए ।

अन्तो सिन्दूरिअसङ्खवत्तकरणिं वहइ चन्दो ॥ १०० ॥

[असौ सरसदन्तमण्डलकपोलप्रतिमागतो मृगाक्ष्याः ।

अन्तः सिन्दूरितशङ्खपौत्रसादृश्यं वदति चन्द्रः ॥]

सरसदन्तमण्डलं मण्डलाकारं दन्तद्वयं ययोः कपोलयोः । प्रतिमागतः संकान्तप्रति-  
म्बचन्द्रः अन्तर्मध्ये सिन्दूरितं संजातसिन्दूरं यच्छङ्खपात्रं तत्सादृश्यं वहतीत्यर्थः ।  
तदक्षतस्मारकत्वात्सिन्दूरसाम्यम् । कपोलयोश्च स्वच्छत्वाच्छङ्खपात्रसादृश्यं बोध्यम् ॥

रसिअजणहिअअदइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मअए ।

सचसअन्निम समत्तं तीअं गाहासअं एअम् ॥

[रसिकजनहृदयदयिते कविवत्सलप्रमुखमुकविनिर्मिते ।

सप्तशतके समाप्तं तृतीयं गाथाशतकमेतत् ॥]

१. 'हृदयस्थितस्य' इति घ-पाठः. २. 'दुर्बल्यमानां' इति ग-पुस्तके, 'तनुकाय-  
जनां' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'हृदयस्थितो' इति घ-पाठः; 'हृदयेषितमस्माकं  
न्त इति भणित्वा मोहमुपागता' इति ग-पाठः. ४. 'वदणो' इति ग-पाठः. ५. 'सुगन्धि'  
ति घ-पाठः. ६. 'मिअच्छीआ' इति ग-पाठः. ७. 'पात्रकरणि' इति ग-पुस्तके,  
पात्रघमतां' इति च घ-पुस्तके पाठः.

चतुर्थं शतकम् ।

धविदग्धे भर्तौ यथा तथा जारनिद्वव कुलटाः कुर्वन्तीति सहचरनिर्धार्ये नाग  
रिक् भाद—

अह अन्ह आअदो अज्ज कुलहराओ सि छेञ्छई जारम् ।

सहसागअस्स तुरिअ पइणो कण्ठ मिलेवैइ ॥ १ ॥

[असावसाकमागतोऽद्य कुलगृहादित्यसती जारम् ।

सहसागतस त्वरित पत्यु कण्ठे लैगयति ॥]

छेञ्छईत्यसतीवाचको देशीशब्द ॥

अविषयेऽपि पत्युत्तुनयादरेण सखी नायिकाया सौभाग्य ख्यापयितुमाह—

पुंसिआ अण्णाहरणेन्दणीलकिरणाहआ ससिमऊहा ।

माणिणिवअणम्मि सकज्जलसुसङ्काइ दइएण ॥ २ ॥

[प्रोञ्छिता वर्णाभरणे द्रनीलकिरणाहता सशिमयूखा ।

मानिनीवदने सकज्जलाद्युशङ्कया दयितेन ॥]

नायकप्रलोचनाय दूती कस्याधि-सौ-दर्यातिशय वर्णयति—

एइहमेत्तम्मि जए सुन्दरमहिलासहस्रभरिए वि ।

अणुहरइ णवर विस्सा वामद दाहिणदस्स ॥ ३ ॥

[पतायमात्रे जगति सु-दरमहिलासहस्रभृतेऽपि ।

अनुहरति केवल तस्या वामार्धे दक्षिणार्धस ॥]

कृतापराधेऽपि प्रिये किं मानविमुखी त्वमसीति सशयोक्ता काप्यामनोऽनुराग स्थि  
रजेहता च सूचयन्ती तामाह—

जह जह वाएइ पिओ तह तह णञ्चामि चञ्चले पेम्मे ।

वही बलेइ अङ्ग सहाययेद्वे वि रुक्कम्मि ॥ ४ ॥

[यथा यथा वादयति प्रियस्तथा तथा नृत्यामि चञ्चले प्रेम्णि ।

वही बलयत्यङ्ग स्वभावस्तन्धेऽपि वृधे ॥]

यद्वा निराश्रयतया स्यादनुमत्ता एता यथा सन्ध वृधमाधिल तिष्ठति तथाहमात्

१ 'आअओ इति क-स्त्र पाठ २ छिञ्छई इति क-पाठ ३ मिलणइ इति ग पाठ ४ 'अयमसाक' इति ग-पाठ ५ 'लागयति' इति क घ पाठ ६ पुच्छिअ' इति ग-पाठ ७ 'सिण्णा' इति ग-पाठ ८ 'स्रीसहस्र' इति ग-पाठ ९ 'दिण' इति क पुस्तके, 'उद्वे' इति च ग-पुस्तके पाठ..

नटप्रायमधममननुरक्तमप्याधिल्य तिष्ठामि यावदुत्तमं कमप्यासादयामीति दूर्ती प्रति कु-  
लदायाः कस्याधिदियमुक्तिः ॥

महता प्रयत्नेन लब्धस्य नायकस्यानभिज्ञतां प्रकटयन्ती कापि सर्वां सन्निवेदमाह-  
दुक्खेहिं लम्भइ पिओ लद्धो दुक्खेहिं होइ साहीणो ।

लद्धो वि अलद्धो विवअ जइ जइ हिअअं तह ण होइ ॥ ५ ॥

[दुःखैर्लभ्यते प्रियो लब्धो दुःखैर्भवति स्वाधीनः ।

लब्धोऽप्यलब्ध एव यदि यथा हृदयं तथा न भवति ॥]

कलहान्तरिता जातानुतापा प्रियसखीमाह—

अब्बो अणुणअसुहकङ्किरीअ अकअं कअं कुणन्तीए ।

सरलसहावो वि पिओ अविणअमगं वलणीओ ॥ ६ ॥

[कष्टमनुनयमुखैर्काङ्क्षणशीलयाकृतं कृतं कुर्वत्या ।

सरलस्वभावोऽपि प्रियोऽविनयमार्गं बलात्नीतः ॥]

कष्टमित्यर्थे अब्बो इति देशी । करोतिरप्रोधारणे । अकृतमप्यपराधं कृतमिति स-  
मुधारयन्त्येत्यर्थः । मयेति शेषः ॥

प्रोषितपतिकाया विरहाति मुग्धतां च सूचयन्ती दूती नायकसमीपगामिन  
पान्यमाह—

हत्थेसु अ पापसु अ अहुल्लिगणणाइ अइगआ दिअहा ।

एण्हि उण केण गणिञ्जउ त्ति भेणिऊ रुअइ सुद्धा ॥ ७ ॥

[हस्तयोश्च पादयोश्चाहुल्लिगणनयातिगता दिवसाः ।

इदानीं पुनः केन गण्यतामिति भणित्वा रोदिति मुग्धा ॥]

प्रवासोद्यतस्य नायकस्य गमनाक्षेपाय काप्यपशकुनगर्भं वसन्तं वर्णयति—

कीरमुहसैच्छहेहिं रेहइ वसुहा पलासकुसुमेहिं ।

बुद्धसस चरणवन्दणपडिएहिं वै भिक्खुसंधेहिं ॥ ८ ॥

[कीरमुखसंदेहै राजते वसुधा पलासकुसुमैः ।

बुद्धस्य चरणवन्दनपतितैरिव मिर्क्षुसंधैः ॥]

अथ बुद्धस्येत्याद्युत्तरार्धमपशकुनसूचनार्थमेवोपात्तम् ॥

१. 'अब्बो' इति ग-पुस्तके, 'अहो' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'काङ्क्षिण्या' इति ग-पाठः. ३. 'गणणाहि' इति क-पाठः. ४. 'भणेउ' इति ख-पाठः. ५. 'सच्छ-  
सुद्धि' इति क-पाठः. ६. 'व' इति क-पाठः. ७. 'सरेशे' इति ग-श-पाठः. ८. 'स-  
पातेः' इति घ-पाठः.

अनुनयं ग्राहयितुं सखी मानवतीमाह—

जं जं पिङ्गुलं अङ्गं तं तं जाअं किसोअरि किसं ते ।  
जं जं तणुअं तं तं पि णिट्ठिअं किं त्य माणेण ॥ ९ ॥

[यद्यत्पुङ्गुलमङ्गं तत्तज्जातं कुरोदरि कुरां ते ।  
यद्यत्तनुकं तत्तदपि निष्ठितं किमन मानेन ॥]

निष्ठितं निष्ठां प्रकुर्यं गतम् । अतिदुर्बलं जातमित्यर्थः ॥

निजभङ्गुरेव न सा यत्तथा तत्कुर्यं तस्या गुणानस्तौपीरित्वाभियोज्येनोक्ता इती

तमाह—

ण गुणेण हीरइ जणो हीरइ जो जेण भाविओ तेण ।  
मोचूण पुलिन्दा मोत्तिआइ गुञ्जाओं गेहन्ति ॥ १० ॥

[न गुणेन हियते जनो हियते यो येन भावितस्तेन ।  
मुक्त्वा पुलिन्दा मौक्तिकानि गुञ्जा गृह्णन्ति ॥]

हियते वशीक्रियते ॥

गमनाय पृथा किमिति किमप्युत्तरं न ददातीति श्रियेणोक्ताया वध्वाः संबन्धिनी  
इदा काचिदाह—

लङ्कालआणं पुत्तअ वसन्तमासेकलद्धपसरणम् ।  
आपीअलोहिआणं धीहेइ जणो पलासानम् ॥ ११ ॥

[लङ्कालयानां पुत्रक वसन्तमासैकलब्धप्रसरणाम् ।

आपीतलोहितानां विभेती जनः पलासानाम् ॥]

पलाशानामिति शेषविवक्षया पश्यमर्थे वष्टी । पलाशेभ्यः किञ्चिदपुष्पेभ्यो वधूभनो  
विभेतीत्यर्थः । अथ च पलं मांसमदन्ति मद्ययन्तीति पलाशा रक्षसाः । तेभ्यो जनो  
विभेतीति श्लेषः । पुष्पपक्षे लङ्का शाखा । पक्षे राक्षसगरी । 'लङ्का रक्षःपुरीशाया-  
शाकिनीकुलटासु च' इति मेदिनीशेषः । तथा (राक्षसपक्षे छाया) वसाश्रमादिकलम्ब-  
प्रसरणाम् । पुष्पपक्षे आ ईशरीतवर्णानि च तानि लोहितानि च । पक्षे आ व-  
सन्तात्पीतं लोहितं रुषिरं यैस्तेषाम् । वसन्तसूत्रकपलाशकुसुमभीता तत्र गमनं नष्टी-  
करोतीति भावः ॥

१. 'गुणेण' इति ग-पाठः. २. 'गुजाउ' इति क-ख-पाठः. ३. 'गुणे' इति  
ग-पाठः. ४. 'भावीअ' इति ख-पाठः. ५. 'धिहेइ' इति ग-पाठः.

सखी सख्या कान्तं प्रत्यनुरागातिशयमाह—

घेचूण चुण्णमुष्टिं हरिसूससिआपे वेपमणाए ।

भिसणेमित्ति पिअअमं हत्थे गन्धोदअ जाअम् ॥ १२ ॥

• [गृहीत्वा चूर्णमुष्टिं ह्येषोत्सुकिताया वेपमानाया ।

अवकिरामीति प्रियतम हस्ते गन्धोदक जातम् ॥]

प्रियतम विच्छुरामीति चूर्णमुष्टिं गृहीत्वा ह्येषोत्सुकिताया वेपमानाया हस्ते गन्धो-  
दक जातमित्यन्वयः । कान्तदर्शनजनितसार्विकभावात्मकस्नेदाचूर्णमुष्टिरेव गन्धोदकं  
जातमित्यर्थः । चूर्णमुष्टि कर्पूरादिशुद्धन्नध्वज्यधूलि । भिसणेमि इति विच्छुरणे देशी ॥

घपत्या देवराभिसारं सूचयन्ती सपत्नी तामाह—

पुष्टिं पुससु किसोअरि पेंडोहरङ्कोहपत्तचित्तलिअम् ।

छेआहिं दिअरजांआहिं उज्जुए मा कलिज्जिहिसि ॥ १३ ॥ ✓

[पृष्ठ प्रोञ्छ कृशोदरि पश्चाद्गृहाङ्कोटपत्रचित्रितम् ।

विदेग्याभिर्देवरजांश्याभिः प्रजुके मा कैलिष्यसे ॥]

ऋजुके अभिसरणप्रच्छादनानभिज्ञे । पश्चाद्गृहे विपमानो योऽङ्कोटवृक्षस्तस्य पत्रैर्वि-  
तं पृष्ठ प्रोञ्छ । पडोहरान्द पश्चाद्गृहवचनो देशी ॥

कृतापराधे प्रिये मान कारयन्ती सखी काप्यात्मनोऽनुरागातिशयेन मानाक्षमता-  
ह—

अच्छीइं वा यइस्स दोहिं वि हत्थेहिं वि तस्सिं दिट्ठे ।

अहं कलम्बकुसुमं व पुलइअं कहं णु ढकिस्सम् ॥ १४ ॥

[अक्षिणी तावत्सर्वगविष्यामि द्वाभ्यामपि हस्ताभ्या तस्मिन्देहे ।

अहं कदम्बकुसुममिव पुलकितं कथं नु च्छेदयिष्यामि ॥]

१ 'भिसणेमि' इति ख पुस्तके, 'भसलेमि' इति च क-पुस्तके पाठः . २. 'वर्ण  
[टि] इति घ-पाठः . ३. 'ह्येषोत्सुकिताया' इति ग घ-पाठः . ४ 'भरिष्यामि प्रियतम  
मेति हस्ते' इति ग पुस्तके, 'विजहामीति प्रियतमहस्ते' इति च घ पुस्तके पाठः .  
५. 'पुलोहर' इति ग पाठः . ६. 'छेआहि' इति क पाठः . ७. 'जाआइ' इति क  
पाठः . ८. 'प्रोञ्छय' इति ग-पाठः . ९. 'छेआमि' इति ग घ पाठः . १०. 'भायां-  
मे' इति घ पाठः . ११ 'दिदपसे' इति ग-पाठः . १२. 'अच्छीइ' इति ख-ग-पाठः .  
१३. 'कअम्ब' इति ग-पाठः . १४. 'स्वीष्ये' इति ग पाठः . १५. 'सादयिष्ये' इति  
ग-पाठः .



नायकसमीपगकामुकपथिकमुखेन सखीजनो नायिकाया अवस्थां गृहस्य विशीर्णता च सदृशप्राह—

झञ्झावाउत्तणिए घरम्मि रोरुण णीसहणिसण्णम् ।

दावेइ व गअवइअं विजुज्जोओ जलहराणम् ॥ १५ ॥

[झञ्झावातोत्तृणिते गृहे रुदिरवा नि.सहनिषण्णाम् ।

दर्शयतीवै गतपतिका विद्युद्दपोतो जलघराणाम् ॥]

झञ्झावातो वर्षानिलः । तेनोत्तृणिते तृणशून्यीकृते गृहे नि सहं यथा स्यात्तथा निषण्णां प्रोषितपतिकां विद्युद्दपोतो जलघरेभ्यो दर्शयति । भवदुदयादियमेतामवस्थां प्राप्ता, तदस्याः पत्युर्लक्ष्णां कुरुत येनासौ शटिल्यायास्यतीत्याशयेनेति भावः ॥

प्राग्यत्रोसभोगे मन्दादरे नायकं प्रवर्तयितुं दूती अन्यापदेशेनाह—

मुअसु जं साहीणं कुत्तो लोणं कुगामरिद्धम्मिं ।

सुहअ सलोणेण वि किं तेण सिणोहो जहिं णत्थि ॥ १६ ॥

[मुहसु यस्वाधीन कुतो लवण कुगामरिद्धे ।

सुमग सलवणेनापि किं तेन खेहो यत्र नास्ति ॥]

लवण सामुद्रिकम् । खेहो लावण्यम् । खेहो घृतादिः । पक्षे प्रेम । यद्यपि कुगाम-  
बाखिलादियं कुवेथा तथापि त्वमि प्रेमातिशययुकेति भावः ॥

विरसमप्यनुरागवधात्सुरसं भवतीति कापि सखीमाह—

सुहपुंच्छिआइ हलिओ सुहपङ्कअसुरहिपवणणिज्वविअम् ।

तह पिअइ पैअइकड्डुअं पि ओसहं जह ण णिट्ठाइ ॥ १७ ॥

[सुहपुंच्छिकाया लिवो मुखपङ्कजसुरभिपवननिर्वापितम् ।

तथा पिबति प्रकृतिकडुकमप्यौषध यथा न तिष्ठति ॥]

अयमर्थ—ज्वरितस्य नायकस्य मुखप्रशार्पमाणतया नायिकया उष्ण जायौषध पू-  
त्कारेण शीतल कृतम् । ततस्तेन तिष्ठमपि तन्नि.शेष पीतमिति ॥

सा तत्र न गता, अह तु निकुञ्जे चिरे स्थित्वा समागत इति वदन्तं जारं दूती ना-  
यिकायास्तत्र गमन प्रतिपादयन्त्याह—

अह सा तहिं तहिं विअ वाणीरवणम्मि चुक्कसंकेआ ।

सुह दंसणं विमग्गइ पन्मट्टणिहाणठाणं व ॥ १८ ॥

१. 'दावेइ पउत्त्यपइअ' इति क पुस्तके, 'दावेइअ' इति च ख पुस्तके पाठ  
२ 'इव' इति क ख घ-पुस्तकेषु नास्ति ३ 'विद्युद्दपोतो' इति घ-पाठ . ४. 'च-  
च्छिआइ' इति ग पाठ . ५. 'पकिदिकडुअम्मि' इति ग-पाठ . ६. 'मुखपुंच्छिकाया  
-वि' इति घ-पाठ . ७. 'निर्वाति' इति ग घ पाठ .

[अथ सा तत्रैव बानीरवने विस्मृतसंकेता ।

तत्र दर्शनं विमौर्गतिं प्रअष्टनिघानस्यानमिव ॥]

अथ त्वद्गमनानन्तरं विस्मृतं संकेतस्थानं यथा सा एतादृशी सा यत्र त्व गतस्तत्रैव बानीरवने त्वामन्वेषयतीति भावः ॥

कृतापरार्धं नायकसहचरं मयाप्रायकोपसर्पणविमुखमभिमुखयितुं काचिदाह—

दृढरोषकलुषिअस्से वि सुअणस्स मुहाहिं विप्पिअं कन्तो ।

राहुमुद्धम्मि त्ति सत्तिणो किरणा अमअं विअ मुअन्दि ॥ १९ ॥ १

[दृढरोषकलुषितस्यापि मुञ्जनस्य सुखार्दप्रियं कुतः ।

राहुमुखेऽपि शशिनः किरणा अमृतमेव मुञ्चन्ति ॥]

कापि जाराभिमत्तगं पादनासमर्थां तत्कृतोपहारं परिहरन्ती कोऽत्र दोष इति वदन्तीं श्रुतीमाह—

अवमाणिओ वि ण तहा दुम्मिज्जइ सज्जणो विहवहीणो ।

पेडिकाउं, असमत्थो माणिज्जन्तो जह परेण ॥ २० ॥

[अवमानितोऽपि न तथा ईयते सज्जनो विभवहीनः ।

प्रतिकर्तुमसमर्थो मन्यमानो यथा परेण ॥]

प्रतिकर्तुं प्रयुपकर्तुम् । मान्यमानो दानादिनां सत्कियमाणः ॥

विश्वासकथनाय प्रोत्साहयन्ती दूती नायिकामन्यापदेशेनाह—

कलहन्तरे वि अविणिग्गाआइं हिअअम्मि जरमुवगाआइं ।

सुअणकआइं रहस्साइं उहइ आउक्खए अग्गी ॥ २१ ॥

[कलहान्तरेऽप्यविनिर्गतानि हृदये जरामुपगतानि ।

मुजनश्रुतानि रहस्यानि दहत्याहुःक्षयेऽपिः ॥]

कलहान्तरेऽपि कलहमध्येऽप्यविनिर्गतान्यप्रकटानि । हृदयान्तरे हृदयमध्ये ज पगतानि बहुकालं स्थितानि । व्याधुःक्षये सत्यमिदं इति । न पुनरन्यसिन्सकामः भावः ॥

१. 'तस्मिन् तस्मिन्नेव' इति ग-पाठः. २. 'अष्टसंकेता' इति ग-पुस्तके 'सुफ-संकेता' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'मौर्गति' इति ग-पाठः. ४. 'विप्रियं' इति ग घ-पाठः. ५. 'पेडिकाउं' इति ग-पाठः. ६. 'दुर्मनायते' इति ग-पाठः. ७. 'सं-मानितो' इति ग-पुस्तके, 'मन्यमानो' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'कृतानि' इति ग घ-पाठः.

इती प्रोपितभर्तृकाएहाङ्गपाय माधवीलताकुञ्जगहनत्वेन दिवैवाभिसरणयोग्यताम्,  
नायिकायाश्च वसन्तकालप्राप्तयोत्कण्ठातिशयेन सुसाध्यता प्रतिपादयन्ती नायकमाह—

सुम्बीओ अङ्गणमाहवीणं दारगगलाउ जाआउ ।

आसासो पन्थप्पलोअणे वि पिट्टो गैअवईणम् ॥ २२ ॥

[स्वका अङ्गणमाधवीनां द्वारगला जाताः ।

आभासः पान्थप्रलोकनेऽपि नैद्ये गतपतिकानाम् ॥]

सुम्बीति स्वके देशी । यद्वा पन्थप्रलोअणे वत्सप्रलोकने । अर्थात्पत्युः । एतेन वस-  
तोऽपि संवृत्तो वत्सप्रलोकनविनोदोऽपि नष्ट इति नायिकाया उत्कण्ठातिशयो ध-  
नेतः ॥

सखी सख्याः कान्तं प्रत्यनुरागातिशयं नयनप्रशंसां वाह—

पिअदंसणसुहरसमउलिआई जइ से ण होन्ति णअणाई ।

ता केण कण्णरईअं लक्खिज्जइ कुँवलअं तिस्सा ॥ २३ ॥

[प्रियदर्शनसुखरसमुकुलिते यदि तस्या न भवतो नयने ।

तैवा केन कर्णरचितं लक्ष्यते कुन्तल्यं तस्याः ॥]

आद्यस्य नयनपदेन द्वितीयस्य च कुन्तलयपदेनान्वयात्तस्या इति पदद्वयस्य न वैय-  
र्थ्यमिति ध्येयम् ॥

अभ्युदयहेतुरपि कार्यवशादुद्रेग जनयतीति प्रतिपादयन्नागरिकः सहचरमाह—

चिक्खिअल्लसुत्तहल्लसुहकड्डणसिठिले पँइम्मि पासुत्ते ।

अप्पत्तमोहणसुहा घणसमअं पामरी सवइ ॥ २४ ॥

[कर्दममद्गलमुखकर्षणशियिरे पैल्यौ प्रसुभे ।

अप्राप्तमोहनसुखा घनसमय पामरी शपति ॥]

चिक्खिअल्लः कर्दमस्तत्र खुतं मग्न सद्गलमुख तस्य कर्णेन शिथिले मान्ते पल्यौ  
धमवशात्सुप्ते सति अप्राप्त मोहनसुखं सुरतसुखं यथा सा पामरी घनसमय शपति । नि-  
न्दतीत्यर्थः । यद्वा विद्यमानेऽपि पल्यौ हल्लिकवध्वाः सुलभत्वं प्रतिपादयन्त्या दूष्य जायं  
प्रतीयमुक्तिः ॥

१. 'पन्थहिअपलोअणे' इति क-पाठः. २. 'गअपइआण' इति क-पुस्तके, 'गअव-  
ईण' इति च ग-पुस्तके पाठः. ३. 'विगतो' इति घ-पाठः. ४. 'लग' इति क-पाठः.  
५. 'कुअलअं' इति क-पाठः. ६. 'तत्केन' इति घ-पाठः. ७. 'पिअम्मि' इति ग-  
पाठः. ८. 'कर्दमाक्षित' इति ग-पाठः. ९. 'प्रिये' इति ग-पाठः.

गमनोद्यतस्य भर्तुर्गमनाक्षेपाय विरहदुःसहत्वं प्रकाशयन्ती कापि स्वरशरनमस्कार-  
शब्देनाह—

दुष्मेन्ति देन्ति सोकखं कुणन्ति अणुराजअं रमावेन्ति ।

अरद्दरइवन्धवाणं णमो णमो मअणवाणाणम् ॥ २५ ॥

। [दुष्न्वन्ति ददति सौख्यं कुर्वन्त्यनुरागं रमयन्ति ।

अरतिरतिबन्धवेभ्यो नमो नमो मदनबौणेभ्यः ॥]

विरहे दुःखदातृत्वात्संगमे च सुखदातृत्वादारतिरतिबन्धवत्वम् ॥

कापि कामबाणव्यापारवैचित्र्यवर्णनेन कमपि युवानं प्रत्यागतो मन्मथव्यथामाह—

कुसुममआ वि अइखरा अलद्धफंसा वि दूसहपआवा ।

भिन्दन्ता वि रइअरा कामस्स सरा घट्टुविअप्पा ॥ २६ ॥

[कुसुममया अप्यतिखरा अलब्धस्पर्शा अपि दुःसहप्रतोषाः ।

भिन्दन्तोऽपि रतिकराः कामस्य शिरा बहुविकल्पाः ॥]

बहुप्रकारा इत्यर्थः ॥

उत्कृष्ठाधिनोदनार्थं प्रोषितमर्तुवा प्रियगुणानाह—

ईसं जणेन्ति दीवेन्ति मम्महं विप्पिअं संहवेन्ति ।

विरहेण देन्ति मरिउं अहो गुणा तस्स बहुमग्गा ॥ २७ ॥

[ईर्ष्या जनयन्ति दीर्षयन्ति मन्मथं विप्रियं सौह्यन्ति ।

विरहे न ददाति मर्तुमहो गुणास्तस्य बहुमार्गाः ॥]

ईर्ष्या जनयन्तीत्यनेनाव्यवनिताभिः काम्यमानत्वात्सोन्दर्यातिशयः । दीर्षयन्ति मन्म-  
थमिति मुरतकलाकौशलम् । विप्रियं साहयन्तीत्यनुनयवाद्वाचानुषंगम् । विरहे न ददाति  
मर्तुमित्यनेन पुनः समागमाशानिबन्धः प्रेमसद्भावश्च व्यज्यते । तस्य प्रियस्य गुणा ब-  
हुमार्गा बहुप्रकाराः । 'तस्य कामशरस्य गुणा इत्यर्थः' इति कथितम् ॥

त्वय्यनुरक्षा सा बायनकदानव्याज्रेण एह एहं प्रमन्ती तवापि एहं गता । तत्रापि  
त्वं तया न एह इति वृत्ती शोपालम्भ कमप्याह—

णीआइँ अज्ज जिक्खिअ पिणद्धणघरद्धओइँ वराईँए ।

घरपरिवाडीअ पहेणआइँ तुह् इंसणासाए ॥ २८ ॥

१. 'दुर्मनायन्ते' इति ग-पुल्लके, 'द्वयन्ति' इति च घ-पुल्लके पाठः. २. 'धारयन्ति'  
इति ग-पाठः. ३. 'अनुरागं' इति घ-पाठः. ४. 'अमिरति बन्धवाना' इति ग-पाठः.  
५. 'बाणानाम्' इति ग-पाठः. ६. 'विभारा' इति ग-पाठः. ७. 'भिन्दन्ता' इति  
ग-पाठः. ८. 'बाणा' इति ग-पाठः. ९. 'दीवेन्ति' इति ग-पाठः. १०. 'दययन्ति'  
इति घ-पाठः. ११. 'एहयन्ति' इति ग-पुल्लके, 'साधयन्ति' इति च घ-पुल्लके पाठः.

[नीतान्यद्य निष्कृप पिनद्धनवरङ्गकया वराक्या ।

गृहपरिपाठ्या प्रहेणकानि तव दर्शनाशया ॥]

नवरङ्गं नूतनरक्तवस्त्रम् । प्रहेणकानि वायनकानि । 'प्रहेणकं वायनकम्' इति हारावली । अयं भावः—धन्यस्त्वमिति यमुत्सवव्याजेन गृहगृहभ्रमणखेदमगणयन्ती सा त्वां दिदक्षते । अतस्तामात्मदर्शनेनानुकम्पस्वेति ॥

दरिद्रनायकासक्त्या नायिकां तदक्षणसूचनेन सखी निवारयितुमाह—

सूक्ष्महेमन्तम्मि दुग्गओ पुष्फुआसुअन्धेण ।

धूमकविलेण परिविरलतन्तुणा जुण्णवडएण ॥ २९ ॥

[सूच्यते हेमन्ते दुर्गतः करीपाप्रिसुगन्धेन ।

धूमकविलेन परिविरलतन्तुना जीर्णपटकेन ॥]

पुष्फुआ इति करीपाप्रौ देशी ॥

शिशिरसमये प्रवासोद्यतस्य नायकस्य गमनाद्येपाय नायिका शिशिरप्रवासिनोऽवस्य वर्णयति—

✓ सरत्तिप्पिरंउड्डिहिआइँ कुणइ पहिओ हिमाग्गमपहाए ।

आअमणजलोद्धिअहत्यफंसमसिणाईँ अङ्गाइँ ॥ ३० ॥

[तीक्ष्णपलालोद्धिखितानि करोति पथिको हिमागमप्रभाते ।

आचमनजलाद्रितहस्तस्पर्शमसृणान्यङ्गानि ॥]

सिप्पिरं पलालः । ओद्धिओ आद्रितः । देशी द्वयम् । यदीदानीं त्वया गम्यते तव

सत्वापीयमवस्था भविष्यतीति भावः ॥

परिश्रुहीतोत्तमस्त्रीकमधर्मं चौरं कामुकजनेऽभिद्रवति सति कोऽप्युत्कृष्टनायिकाप रिप्रहरसिकस्य निकृष्टस्य निषेधावान्यापदेशेनाह—

✓ णक्खक्खुड्डिअं सहआरमञ्जरिं पामरस्स सीसम्मि ।

बन्दिम्मिव हीरतिं भमरजुआणा अणुसरन्ति ॥ ३१ ॥

[नखोत्खण्डितां सहकारमञ्जरीं पामरस्य शीघ्रं ।

बन्दीमिव, हियमाणां भ्रमरसुवानोऽनुसरन्ति ॥]

त्वयाप्युत्तमस्त्रीपरिग्रहे कृते युवान उपद्रावविष्यन्तीति भावः । यद्वा विपद्भ्रष्टाव

१. 'परिपाला पथिनयनानि' इति घ पाठः. २. 'धुम्म' इति ग पाठः. ३. 'पं रत्त' इति ग-पाठः. ४. 'सुगन्धिना' इति ग पाठः. ५. 'सिप्पिरंउड्डिहि' इति क-पाठः. ६. 'पुस' इति क-स्व-पाठः. ७. 'तीक्ष्णतृणाप्रो' इति ग-पुस्तके, 'सरपलाल' इति च घ-पुस्तके पाठः.

कस्याधिप्रायिकायाः सखी तस्या विपदुद्धरणायान्यापदेशेन नायकमाह—नवस्रग्द्वनपा-  
मरशिरोवस्थानरूपविपत्यतितां सहकारमञ्जरीं तिर्यञ्चो भ्रमरा अप्यनुसरन्तीति रतिक-  
शिरोमणेश्वरीदासीन्यमनुचितमित्याशयः ॥

विदिताभिप्रायोऽसि मयेति व्यञ्जयन्ती दूती नायक विश्वासयितुमाह—

सूरच्छलेण पुत्तअ कस्स तुमं अज्जलिं पणामेसि ।

हासकढक्खुम्मिस्सा ण होन्ति देवान्णं जेकारा ॥ ३२ ॥

[सूर्यच्छलेन पुत्रक कैसै त्वमज्जलिं प्रणामयसि ।

हासकटाक्षोन्मिथा न भवन्ति देवानां जेयकाराः ॥]

जयकारा जयजयेत्यादिकाः स्तुतयः । जेकारो नमस्कारे देशीति कथित् ॥

चौरैरतप्रशंसया दूती नायिकासुत्कण्ठयितुमाह—

सुहविज्झविअपईवं णिरुद्धसासं सिसद्धिओह्णवम् ।

सवहसअरक्खिअओट्टं चोरिअरमिअं सुहावेइ ॥ ३३ ॥

[सुखविभ्रान्नापितप्रदीपं निरुद्धकाष्ठं ससद्धितोहणम् ।

शपथशतरक्षितोष्टं चोरिकारमितं सुखयति ॥]

मुषेन मुखपातेन विष्मापितो निर्वापितः प्रदीपो यत्र तत् ॥

रहस्यकथया दूती नायिकां विश्वासयितुमाह—

गेअच्छलेण भरिअं कस्स तुमं रुअसि णिअमरुक्कण्ठम् ।

मण्णुपडिअरुद्धकण्ठद्वणिन्तखलिअक्खरुह्णवम् ॥ ३४ ॥

[गियच्छलेन स्मृत्वा कस्य त्वं रोदिपि निर्भरोत्कण्ठम् ।

मनुप्रतिरुद्धकण्ठार्धनिर्येस्खलितादारोह्यापम् ॥]

कस्य स्मृत्वा त्वं रोदिपि । नैवविध गीतं भवतीति मया ज्ञातम् । यदर्धं खिण्ये तमहं  
पदिष्यामीति भावः ॥

स्वपदवी प्रतिपेशिजारे प्रति स्वावसरं क्यापयितुमाह—

यहलतमा हजराई अअ पडत्यो पई घरं सुण्णम् ।

तह जग्गेसु सअज्जिअ ण जहा अम्हे सुंसिज्जामो ॥ ३५ ॥

१. 'दिष्वाण' इति क-पाठः. २. 'जेकारा' इति ख-पुस्तके, 'जेकारा' इति च  
-मुस्तके पाठः. ३. 'कस्य' इति ग-पाठः. ४. 'हास' इति घ-पाठः. ५. 'जो-  
-ता' इति ङ-पाठः, 'जेकाराशब्दो नमस्कारे वर्तते' इति कुचवालदेशः. ६. 'तसं-  
-दकावम्' इति क-ग-पाठः. ७. 'निर्भरोत्' इति ग-पाठः. ८. 'चोरित' इति  
-पाठः. ९. 'निर्गच्छत्' इति ग-पाठः. १०. 'सुविज्जामो' इति क-पाठः.

[बहुलतमा हतरात्रिरथ प्रोषित पतिर्गृह शून्यम् ।

तथा जागृहि प्रतिवेशिन्न यथा वैय मुष्यामहे ॥]

बहुल तमो यस्यामित्यनेन गाढाभकार आगच्छन्त कोऽपि न लक्ष्यतीति सूचितम् ।  
अथ प्रोषित इत्यनेन तदागमनशङ्का निरस्ता । गृह शून्यमित्यनेनेदं स्वच्छदमाग-  
च्छेति ध्वनितम् ॥

प्रोषितमर्तुकाया सखी तत्कान्तस्यागमनत्वरार्थं तत्समीपगामिन पथिकमाह—

संजीवणोसहिन्मिव सुअरस रक्खइ अण्णवावारा ।

सासू णवन्मदंसणकण्ठागज्जीविम सोहूम् ॥ ३६ ॥

[संजीवनौषधिमिव सुतस्य रक्षत्यनन्यव्यापारा ।

शथूर्नवाभ्रदर्शनकण्ठागतजीवितां क्षुषाम् ॥]

शु क्षुषां सुतस्य संजीवनौषधिमिव रक्षतीति संबन्ध ॥

शुद्धता प्रातरागतं नखदन्तस्यताद्यशित कान्तं सेष्यमाह—

णूणं हिअअणिहित्ताइ वससि जाआइ अम्ह हिअअम्मि ।

अण्णह मणोरहा मे सुहअ कइ तीअ विण्णाआ ॥ ३७ ॥

[नून हृदयनिहितया वससि जाययासाक हृदये ।

अन्यथा मनोरथा मे सुभग कथ तथा विशाता ॥]

जायया सहासाक हृदये वससि । अन्यथा नखशतादिक यन्मया चिकीर्षित तत्तया  
कथ कृतमित्यर्थ ॥

शुद्धी नायिकाया अनुरागातिशय सूचयती नायकमाह—

वइ सुहअ अईसन्ते तिरसा अच्छीहिं कण्णलगोहिं ।

दिण्ण घोळिरवाइहिं पाणिअ दंसणसुहाणम् ॥ ३८ ॥

[त्वयि सुभग अहृदयमाने तस्मा अश्लिष्यां कर्णलभाम्याम् ।

दत्त पूर्णनशीलषोषाम्यां पानीय दर्शनमुमेम्य ॥]

अहृदयमाने दंसंनपयमतिक्रम्य गते । कर्णलभाम्यां स्वरसनकोतुकविकसिताभ्यामि-

१ 'बहुलाभकारा' इति ग-पाठः. २. 'अस्मान्मुष्णीयु' इति ग-पुस्तके, 'बन्  
शमुद्रिजाम' इति क घ-पुस्तके पाठः. ३. 'संजीवनौषधिमिव' इति क-ग-पाठः.  
४ 'कण्ठेइत' इति घ-पाठः. ५. 'तागृहअ' इति ग-पुस्तके, 'तागृभ' इति क-  
पुस्तके एत. ६ 'मे हृदय कथ' इति क ख-पुस्तकयो, 'मे हृदय कथ' इति घ  
पुस्तके पाठः. ७ 'अरसते' इति क-पाठः. ८ 'व्यतिक्रान्ते' इति ग-पाठः.  
९ 'पूर्णमानभ्यां' इति ग-पाठः. १०. 'वाशभ्यां' इति घ-पाठः.

त्यर्थः । अतः परं त्वदर्शनं दुर्लभमिति मत्वा तस्यै परलोकगताय जलं दत्तमित्युपेक्षा ।  
यद्वा त्वत्प्रेक्षापदं दत्तं तथा, किंतु सुखाय जलाप्रतिदत्त इत्यपडुक्तिः ॥

श्रेयितभर्तृका कान्तं प्रति गायया सदेशमाह—

उपेक्ष्वागर्तुअमुहदंसणपडिरुद्धजीविआसाइ ।

दुहिआइ मए कालो केत्तिअमेत्तो व्व णेअव्वो ॥ ३९ ॥

[उत्प्रेक्षागतत्वनमुखदर्शनप्रतिरुद्धजीविताशया ।

दुःखितया मया कालः कियन्मानो वै नेतव्यः ॥]

उत्प्रेक्षया भावनयागतस्य प्राप्तस्य तव मुपदर्शनेन प्रतिरुद्धा स्थापिता जीविताशा  
यस्यास्तया । अन्यथा जीविताशा गच्छेदेवेति भावः ॥

गलितरूपयीवनां कामपि कुलटा कुटन्याह—

बोलीणालक्खिअरूअजोव्वणा पुत्ति कं ण दुम्भेस्सि ।

दिट्ठा पणट्ठपोराणजणवआ जम्मभूमि व्व ॥ ४० ॥

[व्यतिक्रान्तलक्षितरूपप्रसूयता पुत्रि कं न दुंत्तोषि ।

दृष्टा प्रणष्टपौराणजनपदा जन्मभूमिरिव ॥]

व्यतिक्रान्तमत एवालक्षितं रूपं यौवन च यस्याः सा । जनपदो लोकः ॥

वयस्यस्याभिमतं संपरस्वत इति नग्यकसहचरेण पृष्टा दूती तमाह—

परिओसविअसिएहिं भणिअं अच्छीहिं तेण जणमज्जे ।

पडिक्खणं तीअ वि उव्वमन्तसेएहिं अज्जेहिं ॥ ४१ ॥

[परितोषविकसिताभ्यां भणितमश्विभ्यां तेन जनमध्ये ।

प्रतिपन्नं तयाप्युद्धमत्सेदैरज्जैः ॥]

भणितमर्थास्वाभिमतम् । प्रतिपन्नमश्वीकृतम् ॥

परस्परानुरागवतोरपि कयोश्चित्तमागमयोग्यसचेतस्थलाभावादभिप्रेतसिद्धिर्न जा-  
तेति नागरिकः सहचरमाह—

एक्काकमसंदेसाणुराअवंडुन्तकोउह्लाई ।

दुक्खं असमत्तमणोरहाई अंचलन्ति मिहुणाइं ॥ ४२ ॥

१. 'तुह' इति ग-पाठः. २. 'दुहदया' इति ग-पाठः. ३. 'इति' इति ग-पुस्तके,  
'इव' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'बोलीणोलेखिअ' इति ग-पाठः. ५. 'दिट्ठपणट्ठ'  
इति क-पाठः. ६. 'व्यतिक्रान्तोपलक्षित' इति ग-पाठः. ७. 'दुर्मेनायमाना भवसि'  
इति ग-पुस्तके, 'दुर्मेसि' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'दृष्टा प्रनष्ट' इति ग-घ-पाठः.  
९. 'वच्छन्त' इति क-पाठः. १०. 'अचन्ति' इति ग-पाठः.



[अन्योन्यसंदेशानुरागनर्घमानकौतूहलानि ।

दुःखमसमाप्तमनोरथानि तिष्ठन्ति मिथुनानि ॥]

प्रियं प्रति जातमनुरागं गोपयन्तीं नायिकां सखी आह—

जैह सो ण बल्लहो द्विज गोत्तमगहणेण तस्स सखि कीस ।

होइ मुहं ते रविअरफंसविसदं व तामरसम् ॥ ४३ ॥

[यदि स न बल्लभ एव गोत्रमहणेन तस्य सखि किमिति ।

भवति सुखं तव रविकरस्पर्शविकमितमित्र तामरसम् ॥]

गोत्रं नाम । विसदं विकसितम् ।

कथं क्वपिता त्व प्रसन्नासीति मातुलान्या पृथा कापि मानापनयहेतुमाह—

माणदुमपरुषपवणस्स मामि सध्वङ्गणिं बुद्धअरस्स ।

अवऊहणस्स भदं रइणाडअपुच्चरङ्गस्स ॥ ४४ ॥

[मानदुमपरुषपवनस मातुलानि सर्वाङ्गनिर्भूतिकरस्य ।

अनगूहनस्य भद्रं रतिनाटकपूर्वरङ्गस्य ॥]

अनगूहनस्यालिङ्गनस्य । भद्रं भवत्विति शेषः । प्रियालिङ्गनान्मानोऽपगत इति

भावः ॥

कनपि युवान प्रति जातानुरागा कापि स्वहृदयनिषेधच्छेदेन संगमोत्सुक्यमाह—

णिअआणुमाणणीसङ्क द्विजअ दे विरम एत्ताहे ।

अमुणिअपरमत्यजणाणुलग्ग कीस म्ह लहुएसि ॥ ४५ ॥

[निजकानुमाननि शङ्क हृदयविशेषणम् । स्वमिव परमपि परदुःखदुःखितं ज्ञात्वा

अज्ञातपरमार्थजनानुलभ किमित्यकाङ्क्षयमि ॥]

निजकानुमानेन निःशङ्केति हृदयविशेषणम् । स्वमिव परमपि परदुःखदुःखितं ज्ञात्वा  
त्यक्तमनोरथमङ्गभयेत्यर्थः । देशन्दः संरोधने । अज्ञातपरमार्थे परव्ययानभिज्ञे अने-  
ऽनुत्तम भाषण ॥

१. 'एकैकमसंदर्शनानुराग' इति ग-पुस्तके, 'एकमसंदेशानुराग' इति च घ-  
पुस्तके पाठः. २. 'सन्ति' इति घ-पाठः. ३. इयं सटीका याया क पुस्तके नास्ति.  
४. 'मिथुदि' इति ग-पाठः. ५. 'ममिनि' इति ग पुस्तके, 'मातुलि' इति घ घ-  
पुस्तके पाठः. ६. 'हे हृदय' इति क-ख-ग-पाठः. ७. 'विरमैतावतीव' इति ग-पाठः.

जारव्यामोहनाय दूती नायिकायाः सौन्दर्यातिशयं व्यापयितुमाह—

ओसंहिभजणो पङ्खा सलाहमाणेण अइचिरं हसिओ ।

चन्दो त्ति मुज्झ वजणे विईण्णकुसुमज्जलिविलक्खो ॥ ४६ ॥

[आवसथिकजनः पत्या स्नायमानेनातिचिरं हसितः ।

चन्द्र इति तव वदने वितीर्णकुसुमाञ्जलिविलक्षः ॥]

आवसथिकश्चन्द्रार्घदानादिव्रतनियमस्थो जनधन्द्रधमेण त्वन्मुखे प्रक्षिप्तपुष्पाञ्जलिः  
पत्या विहसित इत्यर्थः ॥

किमिति दुर्बलासीति सखीभिः पृष्टया त्वया किमुत्तरं दीयत इति धूर्तनायकेनोक्ता  
नायिका तमाह—

छिज्जन्तोहिं अपुदिणं पच्चक्खंमि वि तुमम्मि अक्खेहिं ।

बालअ पुच्छिज्जन्ती ण आणिमो कस्स किं भणिमो ॥ ४७ ॥

[क्षीयमाणैरनुदिनं प्रत्यक्षेऽपि स्वल्पज्ञैः ।

बालक पृच्छयमाना न जानीमः कस किं भणामः ॥]

बालक उचितानभिज्ञ । क्षीयमाणैरज्ञैरुपलक्षिता । पृच्छयमाना किमिति दुर्बला-  
सीति शेषः । पूर्वं तव प्रवासो दुर्बलत्वे कारणमासीत्, अधुना तु सनिहिते त्वमि तव  
दुधेशमप्रतीयतीषु सखीषु किं वक्तव्यं तत्र जानीम इति भावः । प्राकृते वचनस्यानि-  
यमात्पृच्छयमानैरेकवचनं जाभीम इति बहुवचनं च न विरुद्धमिति ध्येयम् ॥

प्रथमतः कृतशीलखण्डनं ततो मन्दादरं कमपि नायकमनुकूलयितुं दूती सोपा-  
रम्भमाह—

अङ्गाणं तणुआरअ सिक्खावअ दीहरोइअव्वाणम् ।

विणआइकमआरअ मा मा णं एम्हसिज्जासु ॥ ४८ ॥

[अङ्गानां तनुकारकं शिक्षकं दीर्घरोदितव्यानाम् ।

विनयातिक्रमकारकं मा मा एनां प्रसरिष्यसि ॥]

तन्विति भावप्रधानो निर्देशः । तनुत्वकारकेत्यर्थः । विनयस्य शीलस्यातिक्रमः  
सङ्गर्भं तत्कारकं ॥

१. 'सुमुहि सहिभणो' इति ग-पाठः. २. 'विमुक्' इति क-पुस्तके, 'विक्रिण्ण'  
इति च ग-पुस्तके पाठः. ३. 'सुमुधि सखीजनो' इति ग-पाठः. ४. 'विधीर्णं' इति  
ग-पाठः. ५. 'क्षीयमाणैः' इति ग-पाठः. ६. 'त्वयाज्ञैः' इति ग-पाठः. ७. 'तनुत्व-  
कारक' इति घ-पाठः. ८. 'शिक्षापक' इति ग-घ-पाठः. ९. 'प्रमार्जय' इति ग-  
पुस्तके, 'प्रभंशय' इति च घ-पुस्तके पाठः.

प्रवासोद्यतस्य नायकस्य गमनाशेषाय काचिदाह—

अण्णह ण तीरइ ष्चिअ परिवड्ढन्तगरुअं पिअअमस्स ।

मरणविणोएण विणा विरमावेउं विरहदुक्खम् ॥ ४९ ॥

[अन्यथा न शक्यत एव परिवर्धमानगुरुकं प्रियतमस्य ।

मरणविनोदेन विना विरमयितुं विरहदुःखम् ॥]

प्रियतमस्य विरहदुःखं प्रियतमविरहेण जातं दुःखं स्वस्य मरणविनोदेन विना अन्यथा प्रकारान्तरेण विरमयितुं न शक्यत एवेत्यर्थः ॥

काप्यात्मनोऽनुरागं तस्य चान्यासक्तिं सूचयन्ती नायकमाह—

वण्णन्तीहिं तुह गुणे बहुसो अम्हेहिं छिञ्छईपुरओ ।

वालअ सअमेअ कंओसि दुहोहो कस्स कुप्पामो ॥ ५० ॥

[वर्णयन्तीभिस्तव गुणान्वद्भुशोऽस्मामिरसतीपुरतः ।

बालक स्वयमेव कृतोऽसि दुर्लभः कैसौ कुप्यामः ॥]

छिञ्छई असती । त्वद्गुणमुखरायाः स्वरूत एवाय ममानर्थ इति भावः ।

कापि स्वसौभाग्यप्रकटनायात्मनः प्रियस्य चान्योन्यानुरागमाह—

जाओ सो वि विलक्खो मए वि हसिऊण गाढमुवगूढो ।

पढमोसरिअस्स णिअंसणस्स गण्ठि चिमग्गन्तो ॥ ५१ ॥

[जातः सोऽपि विलक्षो मयापि हसित्वा गाढमुपगूढः ।

प्रथमापसृतस्य निवसनस्य ग्रन्थि विमोर्गयमाणः ॥]

प्रथमेलानुरागातिशयेन प्रियस्पर्शात्पूर्वमेव स्खलितस्वेल्यर्थः । वैलक्ष्यापनयनाय मयापि गाढमालिङ्गित इति भावः ॥

अन्यासक्तं नायकमनुकूलयितुं इती नायिकाया विरहवैधुर्यमाह—

कण्डुज्जुआ वराई अज्ज तए सा कआवराहेण ।

अलसाइअरुण्णविअम्भिआइँ दिअहेण सिक्खविआ ॥ ५२ ॥

[कण्डर्जुका वराकी अथ त्वया सा कृतापराधेन ।

अलसायितरुदितविमृन्मितानि दिवसेन शिक्षिता ॥]

१. 'परिवड्ढन्तस्स गरअपेम्मस्स' इति क-ख-पाठः. २. 'परिवर्धमानस्य गुरु कप्रेणः' इति घ-पाठः. ३. 'कस्स कुप्पामि' इति ग-पाठः. ४. 'निअंसणशब्द परिधानवज्रवाचकः' इति कुलबालदेवः. ५. 'विमोर्गन्' इति ग-पुस्तके, 'विमृगमाण इति घ-पुस्तके पाठः. ६. 'सिक्खविआ' इति ग-पाठः. ७. 'कर्णकजुका' इति घ-पाठ

काण्डवदशुका । 'कण्णुजशुभा' इति पाठे कर्णकशुका कर्णदुर्बलेत्यर्थः । 'कन्या  
कशुका इत्यर्थः' इति कथित् ॥

वापि दाक्षिण्यादनुनयन्तं शठं नायकमाह—

अवराद्देहिं वि ण तथा पत्तिअ जह मं इमेहिं दुम्मेसि ।

अवहत्थियअसत्तमावेहिं सुहअ दक्खिण्णभणिएहिं ॥ ५३ ॥

[अपराधैरपि न तथा प्रतीहि यथा भोगेभिर्दुनोपि ।

अपहस्तितसद्भावैः सुभग दाक्षिण्यमणितैः ॥]

निद्राव्याजेन प्रियाशयजिज्ञासया परिभ्रमन्ती भुजा निर्भर्त्सयन्ती नायिकां नायक  
आह—

मा जूर पिआलिङ्गणसरहसभमिरीणं वाहुलइआणम् ।

तुद्धिक्कपरुण्णेण अ इमिणा माणंसिणि सुहेण ॥ ५४ ॥

[मा कुप्यस्व प्रियालिङ्गनसरभसन्नमणशीलाम्या वाहुलतिकाम्याम् ।

तूष्णीकप्ररुदितेन कोनेन मनस्विनि सुखेन ॥]

वाहुलतिकाम्यामित्यत्र 'कुप्यद्देर्घ्यासूयार्थानां यं प्रति क्रोधः' इति चतुर्थी । अत्र  
सापरार्थं प्रियं प्रति क्रोधाभावेन विशेषोक्तिः । अदोषो दोषो प्रति क्रोधेन च विभावना  
दृश्यते । तादृशेण तु 'विशेषोक्तिरसंश्लेषेण कारणेषु फलवचनं' 'क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि  
फलव्यक्तिर्विभावना' इति काव्यप्रसादाकारोक्तं दृश्यम् ॥

पुष्पावचयच्छलेन सवेतस्थानं गच्छन्त वामुक क्वपि जरत्सुहनी सपरिहासमाह—

मा वञ्च पुष्फलाविर देवा उअअज्जलीहिं तूसन्ति ।

गोआअरीअ पुत्तअ सीलुम्मूलाइं कूलाइं ॥ ५५ ॥

[मा व्रज पुष्कलयनशील देवा उदकाज्जलिभिस्तुष्यन्ति ।

गोदावरी. पुत्रक शीलान्मूलानि कूलानि ॥]

पुष्पाणां लवनं छेदनम् । शीलं सञ्चरितसुन्मूलयन्ति निर्मूलं कुर्वन्तीति तथामृतानि ॥

कसिन्नपि यूनि जाताभिलाषां स्त्राभिलाषं लब्धया गोपयन्ती नायिकां सखी आह—

वअणे वअणम्मि चलन्तसीसमुण्णावहाणहुंकारम् ।

सहि वेन्ती पीसासन्तरेसु कीस म्हे दुम्मेसि ॥ ५६ ॥

१. 'दुम्मेसि' इति ग-पाठः. २. 'मामेतैरपहुर्मनायसे' इति ग-पुस्तके, 'मामेभिर्नो-  
दुम्मेसि' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'जल' इति ग-पाठः. ४. 'अयि सुवसु मणंसिणि  
हुंकारम्' इति ग-पाठः. ५. 'अयि सपिहि मनस्विनि सुखेन' इति ग-पाठः. ६. 'पि-  
सासन्तरेण' इति ग-पाठः.

प्रवासोद्यतस्य नायकस्य गमनाक्षेपाय काचिदाह—

अण्णह ण तीरइ खिअ परिवहुन्तगरुअं पिअअमस्स ।

मरणविणोएण विणा विरमावेउं विरहदुक्खम् ॥ ४९ ॥

[अन्यथा न शक्यत एव परिवर्धमानगुरुकं प्रियतमस्य ।

मरणविनोदेन विना विरमयितुं विरहदुःखम् ॥]

प्रियतमस्य विरहदुःखं प्रियतमविरहेण जातं दुःखं स्वस्य मरणविनोदेन विना अन्यथा प्रकारान्तरेण विरमयितुं न शक्यत एवेत्यर्थः ॥

काप्यात्मनोऽनुरागं तस्य चान्यासक्तिं सूचयन्ती नायकमाह—

वण्णन्तीहिं तुह गुणे बहुसो अम्हेहिं छिञ्छईपुरवो ।

वालअ सअमेअ कंओसि दुल्लहो कस्स कुप्पामो ॥ ५० ॥

[वर्णयन्तीभिस्तव गुणान्बहुशोऽस्माभिरसतीपुरतः ।

वालक स्वयमेव कृतोऽसि दुर्लभः कैस्यै कुप्यामः ॥]

छिञ्छई असती । त्वद्गुणमुत्तरायाः सकृत् एवायं ममानर्थे इति भावः ।

कापि स्वसौभाग्यप्रकटनायात्मनः प्रियस्य चान्योन्यानुरागमाह—

जाओ सो वि विलक्खो मए वि हसिऊण गाढमुवगूढो ।

पढमोसरिअस्स णिअंसणस्स णिण्ठ विमग्गन्तो ॥ ५१ ॥

[जातः सोऽपि विलक्षो मयापि हसित्वा गाढमुपगूढः ।

प्रथमापसृतस्य निवसनस्य अस्थि विमोर्गयमाणः ॥]

प्रथमेत्यनुरागातिशयेन प्रियस्पर्शात्पूर्वमेव स्पलितस्येत्यर्थः । वैलक्ष्यापनयनाय मया गाढमालिङ्गित इति भावः ॥

अन्यासक्तं नायकमनुकूलयितुं दूती नायिकाया विरहवैधुर्यमाह—

कण्डुञ्जुआ वराई अज्ज तए सा कआवरोहेण ।

अलसाइअरुण्णाविअम्भिआई दिअहेण सिक्खविआ ॥ ५२ ॥

[कण्डर्जुका वराकी अद्य त्वया सा कृतापराधेन ।

अलसायितरुदितविजृम्भितानि दिवसेन शिशिता ॥]

१. 'परिवहुन्तस्स गहअपेम्मस्स' इति क-ख-पाठः. २. 'परिवर्धमानस्य गुरुकप्रेम्णाः' इति घ-पाठः. ३. 'कस्य कुप्यामि' इति ग-पाठः. ४. 'णिवंसनशब्दः परिधानवस्त्रवाचकः' इति कुलवालेदेवः. ५. 'विमोर्गन्' इति ग-पुस्तके, 'विमृगमाणः' इति घ-पुस्तके पाठः. ६. 'सिक्खदया' इति ग-पाठः. ७. 'कर्णकजुका' इति घ-पाठः.

काण्डवहजुका । 'कण्णुज्जुआ' इति पाठे कर्णेऋजुका कर्णदुर्वरेत्यर्थः । 'कन्या  
ऋजुका इत्यर्थः' इति कश्चित् ॥

कापि दाक्षिण्यादनुनयन्त शठ नायकमाह—

अवराद्धेहिं वि ण तहा पत्तिअ जह मं इमेहिं दुम्भेसि ।

अवहत्थियअसत्तमावेहिं मुहअ दक्खिण्णभणिण्हिं ॥ ५३ ॥

[अपरार्थैरपि न तथा प्रतीहि यथा भौमेभिर्दुनोपि ।

अपहस्तितसद्भावे सुभग दाक्षिण्यभणितै ॥]

नेत्राभ्यानेन प्रियाशयजिज्ञासया परिभ्रमन्ती भुनो निर्भर्त्सयन्ती नायिका नायक

मा जैर पिआलिङ्गणसरहसभमिरीणं वाहुलद्दआणम् ।

तुह्विकपरुण्णेण अ इमिणा माणंसिणि मुहेण ॥ ५४ ॥

[मा कुप्यस्व प्रियालिङ्गनसरभसभ्रमणशीलाम्या वाहुलतिकाम्याम् ।

तूष्णीकप्ररुदितेन चैनेन मनस्विनि मुखेन ॥

वाहुलतिकाम्यामित्यत्र 'कुप्यदुहेर्ध्यांसूयाधांश्च य प्रति कोप' इति चतुर्थी । अत्र  
राध प्रिय प्रति क्रोधाभावेन विशेषोक्तिः । अदोषो दोषो प्रति क्रोधेन च विभावना  
व्या । तद्वक्षणं तु 'विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलवच' 'क्रियाया प्रतिषेधेऽपि  
श्र्यक्तिर्विभावना' इति काव्यप्रकाशकारोक्तं द्रष्टव्यम् ॥

पुष्पार्चनचञ्चलेन सकेतस्थान गच्छन्त कामुक कापि जरत्कुनी सपरिहासमाह—

मा वच पुष्पलाविर देवा उअअञ्जलीहिं तूसन्ति ।

गोआअरीअ पुत्तअ सीलुम्मूलाइं कूलाइं ॥ ५५ ॥

[मा व्रज पुष्पलवनशील देवा उदकाञ्जलिमिस्तुष्यन्ति ।

गोदावर्या पुत्रव शीलो मूलानि कूलानि ॥]

पुष्पाणां लवन छेदनम् । शील सचरितमु मूलवन्ति निर्मूलं कुर्वन्तीति तथा मूलानि ॥

कस्मिन्नपि मूनि जाताभिलाषां स्त्राभिलाष लब्धया गोपयन्ती नायिका सखी धाह—

घअणे चअणम्मि चलन्तसीसमुण्णावहाणहुंकारम् ।

सहि देन्ती षीसासन्तरेसु कीस म्हु दुम्भेसि ॥ ५६ ॥

१. 'दुम्भेसि' इति ग-पाठ . २. 'नामेतैरपदुर्मनायसे' इति ग-मुख्ये, 'मानेभिर्नो-  
ति' इति घ-मुख्ये काठ . ३ 'जूल' इति ग पाठ . ४ 'अयि सुवसु मणसिलि-  
न' इति ग पाठ . ५ 'अयि स्वपिहि मनस्विनि मुखेन' इति ग-पाठ . ६. 'पि-  
पन्तरेण' इति ग-पाठ .

[वचने वचने चलच्छीर्षशून्यावधानहुंकारम् ।

सखि ददती निःश्वासान्तरेषु किमित्यस्मान्दुर्नोपि ॥]

कृतापराध कान्त प्रति प्रियाया अनङ्गीकारं घोषयन्ती दूती आह—

सद्भावं पुच्छन्ती बालञ्च रोधाविआ तुह पिआए ।

णत्थि च्चिअ कअसवहं हासुम्मिस्सं भणन्तीए ॥ ५७ ॥

[सद्भावं पृच्छन्ती बालञ्च रोदितां तत्र प्रियया ।

नास्त्येव कृतशपथं हासोन्मिथं भणन्त्या ॥]

रोदिता अहमिति शेषः । नास्त्येवेत्यनन्तरं दूतीति शेषः । अपि नाम स्थिरश्लेषोऽयं  
तत्र पतिरिति पृष्टे नास्त्येव सद्भावं इति ऋषयन्त्या रोदिताहमिति भावः ॥

संकल्पमानात्सात्त्विकभावा भवन्तीति कापि खवैदग्ध्यं ह्यापयितुं सखीमाह—

एत्थ मए रमिअव्वं तीअ समं चिन्तिअण हिअप्पण ।

पामरकरसेओहो णिवअइ तुवरी धविज्जन्ती ॥ ५८ ॥

[अत्र मया संन्तव्यं तथा समं चिन्तयित्वा हृदयेन ।

पामरकरसेदार्या निपतति तुवरी उप्यगाना ॥]

सममित्यनन्तरमितीति शेषः । इति चिन्तयित्त्वोप्यमानेति योजना । तुवरी आढरी ।  
'आढरी तु तुवर्यां स्त्री परिमाणान्तरे त्रिषु' इति मेदिनी ॥

काव्यात्मनः पत्नौ कस्याधिदत्तुरागं सूचयन्ती सखीमाह—

गह्वइमुओषिएसु वि फलहीवेण्ठेसु उअह बहुआए ।

मोहं भमइ पुल्लओ विरलंगसेअहुली हत्थो ॥ ५९ ॥

[गृहपतिमुतावचितेष्वपि कर्पासवृन्देषु पश्यत वप्याः ।

मोघं जमति पुलनितो विरलंगसेदाहुर्दिसः ॥]

१. 'निःश्वासान्तरेण' इति ग-पाठः. २. 'दुर्मनायते' इति ग-पाठः. ३. 'हा  
न्नीसं' इति ग-पाठः. ४. 'रोदितामि' इति ग-पाठः. ५. 'उहा' इति ग-पाठः.  
६. 'अविचन्ती' इति र-पाठः. ७. 'रमितव्य' इति घ-पाठः. ८. 'तुवरी वयमानर  
इति ग-पुस्तके, 'ओगादकी उप्यमाना' इति च घ-पुस्तके पाठः. ९. 'खण्डेसु' इति  
क-पुस्तके, 'वाटेसु' इति च ख-पुस्तके पाठः. १०. 'गलन्त' इति ग-पाठः. ११.  
'वाटेसु' इति घ-पाठः. १२. 'गलन्त' इति ग-घ-पाठः.

दोऽप्यारमनो विश्वं ख्यापयन्सखायमाह—

अजं मोहणसुहिअं मुअत्ति मोत्तू पलाइए हल्लिए ।

दरुक्कडिअवेण्टभारोणआइ हसिअं व कैलहीए ॥ ६० ॥

[आर्यो मोहनसुखितां मृतेति मुक्त्वा पलायिते हल्लिके ।

• दरस्फुटितवृन्तभारवतया हसितमित्र कार्पासा ॥]

आर्यो तरुणीं गुरतसेदेन निमीलितनयनां मृतेति ह्लात्वा हल्लिके पलायिते सति श्व-  
स्फुटितवृन्तभारया सखावशादिबावनतया कार्पासा हसितमित्र ॥

काप्यात्मनो निन्दाहलेन वान्तं प्रलनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती सखीमाह—

णीसामुक्कम्पिअपुलइएहि जाणन्ति णच्चिअं घण्णा ।

अम्हारिसीहि दिट्ठे पिअम्मि अप्पा वि वीसरिओ ॥ ६१ ॥

[नि. भासोत्कम्पितपुलरितैर्जानन्ति नर्तितुं घन्याः ।

अस्मादशीभिर्दृष्टे प्रिये आत्मापि विस्मृतः ॥]

अत्र ता अधन्या वयं तु घन्या इति व्यतिरेकालंकारो व्यङ्ग्यः ।

इदं सिद्धये दूती नायिकाया व्याजमुक्तिमाह—

तणुएण वि तणुइअइ तीएण वि रिअए बला इम्णिणा ।

मन्मत्थेण वि मज्जेण पुत्ति कह मुअइ पडिवक्खो ॥ ६२ ॥

[तनुकेनापि तनूयते क्षीणेनापि क्षीयते बलादनेन ।

मध्यस्थेनापि मध्येन पुत्रि कथं तत्र प्रतिपद्यः ॥]

यो हि मध्यस्थत्वारिणुषुक्तः स परं न पीडयति । अयं तु तव मध्यस्तनुरपि क्षी-  
णोऽपि मध्यस्थोऽपि परं पीडयतीत्यभिप्रायस्योक्तो विरोधाभासः ॥

कान्यात्मनो वैदग्ध्यमनुरागं च सूचयन्ती कम्प्याह—

वाहिव्व वेअरहिओ धजरहिओ मुअणमज्जवासो व्व ।

रिअरिद्धिअंसणम्मि व दूसहणीओ तुह विओओ ॥ ६३ ॥

१. 'मोत्तू' इति रा ग-पाठः. २. 'पुत्तिअ' इति क-ग-पाठः. ३. 'कलहीहि'  
इति ग-पाठः. ४. 'इभरपुता' इति ग-पुस्तके, 'वरतनुं' इति च घ-पुस्तके पाठः.

५. 'कणभारवतया' इति ग-पुस्तके, 'हन्तभारवतयेन' इति च घ-पुस्तके पाठः.  
६. 'दरुक्कडि कार्पासाः । वेण्टस्फुटित कार्पासकले एतैते' इति कुल्लयालदेवः. 'कार्पासेन' इति  
सं पाठः. ७. 'घानेन सन्निवए' इति ग-पाठः. ८. 'तनुकेनापि तनुः कियते क्षामः  
व वते एनेम' इति ग-पाठः.



[व्याधिरिव वैधरहितो घनरहित सजनमैघ्यवास इव ।  
रिपुऋद्धिदर्शनमिव दु सहनीयस्तव वियोग ॥]

प्रिय प्रति नायिकाया सुदेशगाचेयमिति केचित् ॥

वेश्यामाता खदुहितु पीनोन्नतपयोधरता प्रतिपादयन्ती चाद्रकला राजानमनुकूल-  
यित्तुमाह—

कोत्थ जअम्मि समत्यो थइउ <sup>१</sup>पित्थिण्णणिम्मल्लुत्तुङ्गम् ।

हिअअं तुज्ज णराहि व गअणं च पओहर मोत्तुम् ॥ ६४ ॥

[कोत्थ जगति समर्थ स्थायितु विस्तीर्णनिर्मलोत्तुङ्गम् ।

हृदय तव नराधिप गौगन च पयोधरान्मुक्त्वा ॥]

पयोधर स्तन । पक्षे मेघ ॥

सुकेतस्थानगत जार कुट्टनी समाश्रातयित्तुमाह—

आअण्णेइ अवअणा बुडङ्गहेट्टम्मि दिण्णसकेआ ।

अग्गपअपेत्थिआणं मम्मरअ जुण्णपत्ताणम् ॥ ६५ ॥

[आकर्णयत्यसती पुञ्जाधो दत्तसकेता ।

अग्रपदप्रेरिताना मर्मरव जीर्णपञ्जाणाम् ॥]

मर्मर पत्रप्वनि । 'अथ मर्मर । स्तनिते वस्त्रपर्णानाम्' इत्यमर ॥

भुजगप्रलोमनार्थं दूती वस्त्राधिन्मुखसौरभ वर्णयति—

अहिलेन्ति सुरहिणीससिअपरिमलावद्धमण्डल भमरा ।

अमुणिअचन्दपरिहवं अपुव्वकमल मुह विस्ता ॥ ६६ ॥

[अभिलीयते सुरभिनि शसितपरिमलावद्धमण्डल भमरा ।

अज्ञातचन्द्रपरिमवमपूर्वकमल मुख तस्या ॥]

भमरा भ्रमणशीला कामुका मृश्राथ । सुरभि यन्ति शसित तस्य परिमलेनावद्ध म  
ण्डल यस्मिन्कर्मणि यथा भवतीति क्रियाविशेषणम् । 'अहिलेन्ति अभिपन्तीत्यर्थं  
इति कथित् ॥

१ 'धोपधरहितो' इति ग-पाठ . २ 'दृहदास' इति ग पाठ ३ 'पित्थिण्ण  
णिम्मल समुत्तुङ्गम्' इति ग-पाठ ४ 'क समर्थो भवति पिधापयितु विस्तीर्णं निर्मल  
समुत्तुङ्गम्' इति ग पाठ ५ 'गगनमिव' इति ग घ-पाठ ६ 'पयोधरी' इति  
ग पाठ . ७ 'अद्विष्टणा' इति ग-पाठ . ८. 'आकर्णयत्यतिनिपुणा' इति ग-पाठ  
९. 'कुञ्जतले' इति घ-पाठ १०. 'मण्डला भमरी' इति घ पाठ ११. 'अभिलपति  
सुरभिनिर्मयित' इति ग-पाठ

दूती नायिकाया अनुरागातिशय सूचयन्ती नायकमाह—

धीरैवलम्बिरीअ वि गुरुअणपुरओ तुमम्मि बोलीणे ।  
पट्टिओ से अच्छिणिमीलणेण पम्हट्टिओ बाहो ॥ ६७ ॥

[धीरैवलम्बनशीलाया अपि गुरुजनपुरतस्त्रयि व्यतिक्रान्ते ।  
पतितस्तस्या अक्षिनिमीलनेन पक्ष्मस्थितो वाष्पः ॥]

गुरुजनलज्जया तथा नातुगमन कृतम्, वाष्पेण पुन कृतमेवेति भावः ॥  
मानिन्या स्वस्मिन्ननुरागातिशयं स्वसौभाग्य च सूचयन्नागरिकः सहचरमाह—

भरिमो से सअणपरम्भुहीअ विअलन्तमाणपसराए ।  
कइअवसुत्तुवत्तणर्थेणकलसप्पेहणसुहेट्टिम् ॥ ६८ ॥

[सारासक्तस्या. शयनपराङ्मुख्या विगलन्मानप्रसराया ।  
कैतवसुप्तोद्धर्तनस्तनकैलशप्रेरणसुखकेलिम् ॥]

कस्याधिदत्त जारेण कर्दमेनोक्षित धीक्ष्य कर्दमदातरि तस्या अनुरागातिशयं सूच-  
यन्ती सखी सपरिहास तामाह—

फरगुच्छणणिहोसं केण वि कइमपसाहणं दिण्णम् ।  
थणअलसमुहपलोद्धन्तसेअधोअ किणो धुअसि ॥ ६९ ॥

[फैलगुनोत्सवनिर्दोष केनापि कर्दमप्रसाधन दत्तम् ।  
स्तनकलशमुखर्षलुठत्वेदघौतं किमिति धावयसि ॥]

धावयसि क्षालयतीत्यर्थः ॥

त्वद्वचनादह तत्समीप गत, तथा तु मां विलोकयामि च किञ्चिदुक्तमिति नायकेनो-  
दूती तमाह—

किं ण भणिओ सि वालअ गामणिधूआइ गुरुअणसमकरांम् ।  
अणिमिसमीसीसिवलन्तवअणणअणद्धदिट्ठेहिं ॥ ७० ॥

१. 'धीरमथिलम्बिरी' इति ख-पाठः. २. 'धीरैमवलम्बन्त्या' इति ग पाठः. ३. 'थण-  
जुअलसमुहप्रेरण' इति ख-पुस्तके, 'थणकलसापीडन' इति च ग पुस्तके पाठः. ४. 'कलशा-  
लिह्नगुत्तकेलिम्' इति ग पुस्तके, 'कलशापीडनगुत्तम्' इति च घ-पुस्तके पाठः.  
५. 'धुत्तण' इति ग घ-पाठः. ६. 'प्रवर्तमान' इति ग घ-पाठः. ७. 'धावयसि' इति  
क-ख-पाठः.

[किं न भणितोऽसि बालक आमणीपुत्र्या गुरुजनसमक्षम् ।  
अनिमिषरीषदीपद्वलद्वदननयनार्धदृष्टैः ॥]

बालकः इति तानभिह । ईषदीपद्वलद्वदनं च नयनार्धदृष्टानि चेति कर्मधारयः ।  
दृष्टानि निरीक्षणानि । कदाहनिरीक्षणेन संभावित एवापि । श्वशुरादिदर्शनाविभूतः  
त्रपया वाचा केवलं नोक्तोऽसीति भावः ॥

उक्तमेवायं मङ्ग्यन्तरेणाह—

णअणन्मन्तरघोलन्तवाहभरमन्थराइ दिट्टीए ।

पुणरुत्तपेच्छिरीए घालअ किं जं ण भणिओ सि ॥ ७१ ॥

[नयनाभ्यन्तरघूर्णमानवाष्पभरमन्थरया दृष्टया ।

पुनरुत्तप्रेक्षणशीलया बालक किं यत्न भणितोऽसि ॥]

कयापि तादृश्यावस्थायां भुरतसमये गणपतिरुपधानीकृतः, सैव वार्धकावस्थायां ए  
मेव गणपतिं पूजयन्ती जरासुपालभवे—

जो सीसम्मि विइण्णो मज्झ जुआणेहिं गणवई आसी ।

तं त्विअ एहं पणमामि हतजरे होहि संतुठा ॥ ७२ ॥

[यः शीर्षे त्रितीणो मम युवभिर्गणपतिरासीत् ।

तमेवेदानीं प्रणमामि हतजरे भव संतुष्टा ॥]

कापि मृतचौरिकामहिलां शोचन्तं कमप्यन्यापदेशेनाह—

अन्तोहुत्तं डंज्जइ जाआसुण्णे घरे हलिअउत्तो ।

उक्खाअणिहाणाइं व रमिअट्टाणाइं पेच्छन्तो ॥ ७३ ॥

[अन्तरभिमुखं दक्षते जायाशूत्ये गृहे हालिकपुत्रः ।

उत्खातनिधानानीव रमितस्थानानि पश्यन् ॥]

अन्तरभिमुखं हृदय एवेत्यर्थः । मृतधर्मपत्नीकः पामरोऽपि बाह्याकारेण दुःखं ना-  
विष्कारोति, त्वं तु विशोऽपि सन्मृतचौरिकामहिलां प्रति शोचसीत्युक्तमिति भावः ॥

१. 'धुपमा' इति ग-पुस्तके, 'हुहिजा' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'अनिमिष-  
वियोगवदनवलित' इति ग-पाठः. ३. 'द्वेच्छिरीए' इति ग-पाठः. ४. 'भ्लेच्छित्तकवा'  
इति ग-पाठः. 'भ्लेच्छित्तं पुत्रमापितम्' इति कुलबालदेवः. ५. 'द्वियत्न' इति ग-घ-  
पाठः. ६. 'सिरसि' इति ग-पाठः. ७. 'भुवइ' इति ग-पाठः. ८. 'अन्तरा दपवे'  
इति ग-पुस्तके, 'अन्तर्भूतं दपवे' इति च घ-पुस्तके पाठः. ९. 'प्रेक्षन्' इति ग-पाठः.

मान धरस्वेति शिष्यतीं सखीं काचिदाह—

णिद्रामङ्गो आवण्डुरत्तण दीहरा अ णीसासा ।

जाअन्ति जस्स विरहे वेण सम कीरिसो माणो ॥ ७४ ॥

[निद्रामङ्ग आपाण्डुरत्व दीर्घाश्च निश्वासा ।

जायन्ते यस्य विरहे तेन सम कीदृशो मान ॥]

कथं वृषितासीति नायकेन पृष्टाया धीरानाधिकार्या उक्तिरियमिति केचित् ॥

कृतापराध कात वापि सप्रणयरोपमाह—

वेण ण मरामि मण्णुहिं पूरिआ अज्ज जेण रे सुहअ ।

तोग्गअमणा मरन्ती मा तुज्ज पुणो वि'लग्गिस्सं' ॥ ७५ ॥<sup>१</sup>

[तेन न म्रिये मन्नुमि पूरिताय येन रे सुभग ।

त्वद्गतमना म्रियमाणा मा तव पुनरपि'ल्लेगिष्यामि ॥]

चद्रतचित्ताया मम मरणमेव युक्तम्, परं तु तत्र स्मरणायदि मम मरण भवति तदा

मातरैऽपि त्वमेव मम पतिर्दुःखो भविष्यसीति भीला न म्रियेऽहमिति भाव ॥

कापि धैर्यमनुराग च व्यग्रयती कृतापराध कातमाह—

अवरज्जसु वीसद्ध सब्ब ते सुहअ विसहिमो अम्हे ।

गुणणिच्चमरम्मि हिअए पत्तिअ दोसा ण माअन्ति ॥ ७६ ॥

[अपराध्यस्व विसंन्ध सर्वे ते सुभग त्रिषहामहे वयम् ।

गुणनिर्भरे हृदये प्रतीहि दोषा न मान्ति ॥]

अपराध्यस्वपराध कुः । शुभैर्यौत्वदीयैर्निर्भरे पूर्णे हृदये दोषा न मान्ति अवकाश

न उभाते । अनुरक्तेन दोषो न गृह्यत इति भाव ॥

नायिकाया विरहोर्तं प्रतिपादयती कृती नायक त्वरयितुमाह—

भैरिउचरन्तपसग्गिअपिअंभरणपिसुणो वराईए ।

परिवाहो विअ दुक्खस्स चहइ णअणट्ठिओ वाहो ॥ ७७ ॥

[श्रितोच्चरन्तपियसस्मरणपिशुभो वराक्या ।

परिवाह इव दुःखस्य चहति नयनस्थितो नाय ॥]

१ 'केरियो' इति ग पाठ २ 'दीर्घे च निश्वापितम्' इति ग पाठ ३ 'त्वद्गतमनस्क' इति ग पाठ ४ 'ल्लेगिष्ये' इति ग पाठ ५ 'विषस्य' इति घ-पाठ.  
६ 'विषग्रामहे' इति ग पाठ ७ 'भरिउचरन्त' इति ख पाठ ८ 'श्रितोद्गियमाण' इति ग पुस्तके, 'श्रितोद्गस्य' इति च ख पुस्तके पाठ ९ 'सूबद्धे' इति ग पाठ.  
१०. 'परिवाहीव' इति ग पाठ ११ 'स्थित वारणम्' इति ग पाठ

कृतः पूर्णः । उचरन्निर्गच्छन् । प्रसृतः प्रवृद्धः । तथा त्रियसंस्तरणस्य विशुनः सू-  
चकः । एतच्च परीवाहवाष्पयोरुभयोरपि विशेषणम् ॥

नायिकाया अनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती दूती नायकमाह—

जं जं करेसि जं जं जप्पसि जह तुम णिअच्छेसि ।

तं तमणुसिक्खिरीए दीहो दिअहो ण संपडइ ॥ ७८ ॥

[यद्यत्करोषि यद्यज्जल्पसि यथा त्वं निरीक्षसे ।

तैत्तदनुशिखणशीलाया दीर्घो दिवसो न संपद्यते ॥]

त्वचेष्टितमनुकुर्वत्यास्तस्या, दिवसो लघुर्भवतीत्यर्थः ॥

काचित्पयिकेन समं रात्रौ कृतसंभोगा तद्गुणातिशयेन निरहकातरा प्रभाते रोदिति  
नागरिकः स्वस्य विश्ववक्ष्यापनाय सहचरमाह—

भण्ढन्तीअ तणाइं सोत्तुं दिण्णाइं जअइं पहिअस्स ।

ताइं चेअ पहाए अज्जा आअट्टइ रुअन्ती ॥ ७९ ॥

[भर्त्सयन्त्या तृणानि स्वतुं दत्तानि यानि पयिकस ।

तान्येव प्रभाते आर्या आकर्षति रुदती ॥]

भण्ढन्ती भर्त्सयन्ती । पडइं कुर्वाणेत्येति यावत् ॥

कोऽपि सहचरस्य गाम्भीर्यशिक्षार्थं सत्पुरुषप्रशंशामाह—

वसणम्मि अणुत्विग्गा विहवम्मि अगत्विआ मए धीरा ।

होन्ति अहिण्णसहावा समेसु विसमेसु सप्पुरिसा ॥ ८० ॥

[व्यसनेऽनुद्धिप्सा विभवेऽगर्विता मये धीराः ।

भवन्त्यभिघ्नस्तमायाः समेषु विषमेषु सत्पुरुषाः ॥

केनापि प्रवादिना पुरदेण प्रेयसीं रग्गुवा प्रभाते गानं कृतम्, तच्छ्रवणेनोदीनिपदि  
रहानला काचि श्रेयिन्मर्तुंका सखीमाह—

अज्ज सहि केण गोसे कं पि मणे वल्लहं भरन्तेण ।

अम्हं मअणसराहअहिअअव्वणफोडनं गीअम् ॥ ८१ ॥

१. 'निर्भयसि' इति ग-पाठः. २. 'तत्तदनुशिखन्त्या' इति ग-पाठः. ३. 'स  
विषु' इति घ-पाठः. ४. 'श्रमणाना आकर्षयते' इति ग-पाठके 'वस्तनुराकर्षति'  
इति च घ-पाठके पाठः. ५. 'विभवे' इति ग-पाठः. ६. 'पौर्यान्विताः' इति ग-पाठः.

[अथ सखि केन प्रातः कामपि मन्ये बहूमां स्मरता ।

अस्माकं मदनशराहतहृदयव्रणस्कोटनं गीतम् ॥]

तद्दृष्टदर्शनेनास्माकं विरहदुःखं स्फुटितव्रणवदधिकं जातमिति भावः ॥

आयतिखेदकरं तदात्वेऽपि खेदयतीति निर्दोष्यन्कोऽपि सहचरमाह—

उदन्तमहारम्भे घणए ददूण शुद्धबहुआए ।

ओसण्णकवोलाए णीससिअं पढमघरिणीए ॥ ८२ ॥

[उत्तिष्ठन्महारम्भौ स्तनी दृष्ट्वा सुग्धवध्याः ।

अवसन्नकपोलया निःश्वसितं प्रथमगृहिण्या ॥]

अवसन्नकपोलया शुष्ककपोलया । पतितस्तनीं मां पिहायातः परमस्यामन्योन्या-  
ल्लिष्टपनपीनकुचायामासक्तो भविष्यति कान्त इति चिन्तयेति भावः ॥

कापि मन्दक्षेहं नायकमनुकूलयितुमन्यापदेशेनाह—

गरुअदुहाउलिअस्स वि बहहकरिणीमुहं भरन्तस्स ।

सरसो मुणालकवलो गअस्स हत्थे च्चिअ मिलाणो ॥ ८३ ॥

[गुरुकलुधाकुलितस्यापि बहमकरिणीमुखं स्मरतः ।

सरसो मृणालकवलो गजस्य हस्त एव म्लानः ॥]

मदविमोहितबुद्धिना विरथा गजेनापि प्रियास्नेहातिशयान्मृणालकवलस्त्यक्तः ।  
पुनर्मांमपहाय महिलासदृशं रमयतीति ज्ञातस्त्व खेद इत्युपालम्भो व्यङ्ग्यः ॥

वाचापि प्रियो नोद्वेजयितव्य इति सखीं शिक्षयितुं कापि धीराया नायिकायाः ।  
यकेन सहोक्तिप्रत्युक्तिकौशलमाह—

पसिअ पिण्णुं का कुँविआ; सुअणुं तुमं; परअणम्मि को कोवे; ।

को हु परो नाथ; तुमं; कीस अपुण्णाण मे सत्ती ॥ ८४ ॥

[प्रसीद प्रिये का कुपिता सुतनु त्वं परजने कः कोपः ।

कः खलु परो नाथ त्वं किमित्यपुण्यानां मे शक्तिः ॥]

विप्रलब्धाया अनुरागातिशयं विरहार्तं च प्रतिपादयन्ती दूती नायकमाह—

एहिसि तुमं त्ति णिमिसं व जग्गिअं जामिणीअ पढमदम् ।

सेसं सेतावपरव्वसाइ वरिसं क्क वोलीणम् ॥ ८५ ॥ वे ।

१. 'प्रभाते किमपि' इति ग-पाठः. २. 'कपोलाया.' इति घ-पाठः. ३. 'गृहिण्याः'  
इति घ-पाठः. ४. 'स्मरमाणस' इति ग-पाठः. ५. 'कुविदा' इति ग-पाठः. ६. 'प-  
रिजने' इति घ-पाठः.

[ऐष्यसि त्वमिति निमिपमिव जौगरितं यामिन्याः प्रथमार्धम् ।

शेष सतापपरवशाया वर्षमिव व्यतिक्रान्तम् ॥

भूतादिप्रत्येयं स्त्री परिभ्रमतीति राश्रमान जनं प्रति प्रोषितभर्तृकाया सए  
काचिदाह—

अवलम्बह, मा शङ्कह, ण इमा गहलह्विआ परिवभमह, ।<sup>१</sup>

अस्थङ्गज्जिउवभन्तहित्यहिअआ पहिअजाआ ॥ ८६ ॥

[अवलम्बध्व मा शङ्कध्व नेय ग्रहलह्विता परिभ्रमति ।

आकस्मिकगर्जितोद्भ्रान्तप्रसहदया पथिकजाया ॥]

हित्य प्रसम् । प्रहा भूतादय ॥

स्वस्य गुणोत्कर्षं क्लृपयन्ती काप्यनेकक्षीलम्पटं कान्तं मधुकरव्याजेनोपालभते—

केसररअविच्छेदुं मअरन्दो होइ जेन्तिओ कमले ।

जइ अमर तेन्तिओं अण्णहिंपि वा सोहसि भमन्तो ॥ ८७ ॥

[केसररंज समूहे मकरन्दो भवति यान्त्वमले ।

यदि अमर तावानन्यनापि तदा शोभसे अमन् ॥]

विच्छेदुं समूहं ।

‘रम्याणां विकृतिरपि श्रियं तनोति’ इति निर्दोषान्कोऽपि उक्तायमाह—

पेच्छन्ति अणिमिसच्छा पहिआ हलिअरस पिट्टपण्डुरिअम् ।

धूअं दुद्धसमुदुत्तरन्तलच्छि विअ सअह्वा ॥ ८८ ॥

[मिधन्तेऽनिमिषाक्षाः पथिका हलिकस्य पिष्टपाण्डुरिताम् ।

दुहितार दुग्धसमुद्रोत्तरलक्ष्मीमिव सनृष्णाः ॥]

धूआ दुहिता । पिष्टं तण्डुलादे । यथानिमिषाक्षा देवा लक्ष्मीमपश्यत्तया पथिका  
अपीमामित्यर्थ । हलिकमुतामपि साभिलाष पर्यतामेया वासो न देय इति सहचरं  
प्रति नागरिकस्योच्चिरिति केचित् ॥

कल्हान्तरिताया. खेदातिशय सूचयन्ती इती तत्कान्तमाह—

कस्स भरिसि त्ति भणिए को मे अत्थि त्ति जम्पमाणाए ।

उच्चिगगरोइरीए अम्हे वि रुआविआ तीए ॥ ८९ ॥

१. ‘आगमिष्यसि’ इति ग-पाठ. २. ‘जायत’ इति ग-पाठ. ३. ‘अल्पेक’ इति  
ग-पाठ. ४. ‘नमर होइ तेन्तिओ’ इति क ग-पाठ. ५. ‘रजोमिष्टुते’ इति ग घ  
पाठ ६. ‘तावानन्यस्मिन्’ इति घ-पाठ.:

[कस्य सरसीति भणिते को मेऽस्तीति जल्पमानया ।

उद्विधरोद्धनशीलया वयमपि रोदितास्तया ॥]

मानप्रदिलां नायिका भयं दर्शयन्ती सरसी मानभङ्गाय सरोपमाह—

पाअपडिअं अहव्वे किं दाणिं ण उट्टवेसिं भत्तारम् ।

एअं विअ अयसाणं दूरं पि गअस्स पेम्मस्स ॥ ९० ॥

[पादपतितममव्ये निमिदानीं नोत्यापयसि भर्तारम् ।

एतदेवावसानं दूरमपि गतस्य प्रेम्णः ॥]

अमव्ये इति सप्रणयरोप संशोधनम् । अगृहीताजुनया द्वेष्या मन्त्रिभ्यसीति भावः ॥

आत्मनो विपरीतरताभिलाष सूचयन्ती नायिका वान्तमाह—

तडविणिहिअग्गहत्था वारितरङ्गेहिं धोलिरणिअम्वा ।

सालूरी पडिविम्बे पुरिसाअन्तिव्व मडिहाइ ॥ ९१ ॥

[तद्विनिहितप्रहृष्टा वारितरङ्गैर्दूरानशीकृजितम्बा ।

शालूरी प्रतिविम्बे पुरुषायमाणेव प्रतिमाति ॥]

शालूरी भेकी । प्रतिविम्बे अर्थाः स्त्रीये ॥

कुसुम्भवाटिकायां कृनसकेता काचिदात्मनघोरैरतगोपनार्थमाह—

सिक्करिअमणिअमुह्वेविआइं धुअहत्थसिञ्चिअव्वाइं ।

सिक्करन्तु वोडहीओ कुसुम्भ तुम्ह प्पसाएण ॥ ९२ ॥

[सीत्कृतमणितमुखेपितानि धुतहस्तशिञ्जितव्यानि ।

शिञ्जन्तु कुमारीः कुसुम्भ कुम्भमल्पसादेन ॥]

वोडही 'कुमारी' तदणी वा । सीत्कृत सीत्कारः । मणित रतिवृत्तविशेषः । मुखेपितमधरादिधुननम् । एतानि नखक्षतमुष्वाघाताधरखण्डनैरपि भवन्ति कण्टकक्षतेन च भवन्ति । तथा च सीत्कारादयो नैम कुसुम्भकण्टकक्षताज्जाता न तु गुरतेनेत्याशयः ॥

१. 'जल्पन्त्या' इति घ-पाठः. २. 'उद्धटे रोदन्त्या' इति ग-पाठः. ३. 'माणस्स' इति ग-पाठः. ४. 'इदमेव' इति ग-पाठः. ५. 'दूरं गतस्य' इति घ-पाठः. ६. 'मानस्य' इति ग-पाठः. ७. 'मुहपरिवेविआइ' इति ख-ग-पाठः. ८. 'मुहपरिवेपितानि' इति ग-पाठः. ९. 'शिञ्जितानि' इति ग-पाठः. १०. 'शिञ्जन्तु प्राम्या' इति ग-पाठः. ११. 'तदप्यः' इति घ-पाठः. १२. 'युम्भाक' इति ग-पाठः.



काप्यात्मनो जारं प्रत्यगुरागातिशयं श्रावयन्ती नितम्बोपालम्भव्याजेनाह—

जेत्तिअमेत्ता रच्छा णिअम्ब कह तेत्तिओ ण जाओसि ।

जे छिप्पइ गुरुअणलज्जिओ सरन्तो वि सो सुहओ ॥ ९३ ॥

[यौवत्प्रमाणा रथ्या नितम्ब कथं तौवन्न जातोऽसि ।

येन स्पृश्यते गुरुजनलज्जापसृतोऽपि स सुमग ॥]

वृणरुतापृह सक्केतस्मानमिति जारं श्रावयन्ती काप्याह—

मरगअसूईविद्धं व मोत्तिअं पिअइ आअअर्गीओ ।

मोरो पाउसआले तणगगळगं सअअधिन्दुम् ॥ ९४ ॥

[मरकतसूचीविद्धमिव मौक्तिकं पितल्यायतग्रीवः ।

मयूरः श्रावृट्टाले वृणाग्रलभमुदकविन्दुम् ॥]

अत्र मरकतसूच्या मौक्तिकवेधस्यासमावितसोपमया दुष्प्रापनायिकाप्राप्तिं नायकस्य दूती सूचयतीति केचित् ॥

अभिचारिकायाः वृष्णपक्षाभिचारोचितं नीलकण्ठकं श्रावयन्ती दूती नायकमुत्तरं लयितुमाह—

अज्जाइ णीलकञ्चुअभरिउव्वरिअं विहाइ थणवट्टम् ।

जलभरिअजलहरन्तरदरुगअं चन्द्रविम्ब व्व ॥ ९५ ॥

[अर्याया नीलकण्ठकधृतोऽरितं विभाति सनपृष्ठम् ।

जलभृतजलधरान्तरदरोद्गतं चन्द्रविम्बमिव ॥]

कण्ठकं मृता महतादुर्वरितमित्यर्थः ॥

प्रवासोद्यतस्य पर्युग्मनाशेराय कापि वसन्तमासस्य पथिकमयहेतुतां दर्शयति—

राअविरुद्धं व कहं पदिओ पदिअरस साहइ संसट्टम् ।

जत्तो अम्वाण दलं तत्तो दरणिग्गिअं किं पि ॥ ९६ ॥

१. 'जेण छिप्पिउइ गुरुअणलज्जोसरिओ' इति ख पाठः. २. 'यावन्मात्रा' इति ग-पाठः. ३. 'न तावन्मात्रो' इति ग पाठः. ४. 'यत्' इति ग पाठः. ५. 'लज्जापसरन्' इति ग-पाठः. ६. 'श्रीयो' इति क-पाठः. ७. 'ईश्वरगुनाया' इति ग-पाठः. ८. 'मृतोद्गियमाणं' इति ग-पुस्तके, 'मृतोद्गत' इति व घ पुस्तके पाठः. ९. 'अत-परान्तरादोपदुत्तरं' इति ग-पाठः. १०. 'सपट्टो' इति क-पाठः.

[राजविरुद्धामपि कथां पथिकः पथिकस्य कैथयति सशङ्कम् ।  
यैत आम्नाणां दलं तैत् ईषन्निर्गतं किमपि ॥]

दलं पत्रम् । किमप्यङ्कुरः ॥

स्वप्ने प्रियदर्शनेन विरहदुःखं कथं न निनोदयसीति प्रतिवेशिनीभिरुक्ता काचिदा-  
मनोऽनुरागातिशयं श्यापयितुमाह—

धण्या ता महिलाओ जौ दइअं सिविणए वि पेच्छन्ति ।

णिह् ङ्विअ तेण विणा ण एइ का पेच्छए सिविणम् ॥ ९७ ॥

[धन्यास्ता महिला या दयितं स्वप्नेऽपि प्रेक्षन्ते ।

निद्रैव तेन विना नैति का प्रेक्षते स्वप्नम् ॥]

अत्र द्युमधन्याः, श्रद्धं तु धन्येति व्यज्यते ॥

पूर्वं समुद्रस्य कालवशेन गलितविभवस्य कस्यापि मनःसंधाधानाय दूष्यन्वा-  
पदेशेनाह—

परिरद्धकणअकुण्डलगण्डत्थलमणहरेसु सवणेसु ।

तैत्थ वि समअवसेण अ र्पहिरज्जइ तालवेण्टजुअम् ॥ ९८ ॥

[परिरब्धकनककुण्डलगण्डत्थलमणैर्नोहरयोः श्रवणयोः ।

तैत्रोपि समयवशेन [च] परिप्रियते तालवृन्तयुगम् ॥]

तालवृन्त तालपत्रताडकम् ॥

कथमेतादृशे ग्रीष्मे मन प्रिय आगमिष्यतीति चिन्तयन्तीं नायिका सह्याह—

मज्झह्वपत्थिअस्स वि गिम्हे पहिअस्स हरइ संवावम् ।

हिअअट्ठिअजाआमुहमअङ्कजोह्वाजलप्पवहो ॥ ९९ ॥<sup>१</sup>

[मध्याह्नप्रस्थितस्यापि ग्रीष्मे पथिकस्य हरेरिति संतापम् ।

हृदयस्थितजायामुखमृगाङ्कज्योत्स्नाजलप्रवाहः ॥]

१. 'शंसति' इति घ-पाठः. २. 'वाक्-न्याम्नाया दलानि' इति ग-पाठः. ३. 'ता-  
वदीपत्' इति ग-पुस्तके, 'ततो दर' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'जालो' इति ख-  
पाठः. ५. 'पश्यन्ति' इति ग-घ-पाठः. ६. 'कपोलदोक्षणमण' इति ग-पाठः.  
७. 'अण्णअसमअ' इति क-ख-पाठः. ८. 'परिहिम्बइ' इति ख-ग-पाठः. ९. 'प-  
रि-  
बद्ध' इति ग-पाठः. १०. 'कपोलतरल' इति ग-पाठः. ११. 'मनोहरेषु कर्णेषु' इति  
घ-पाठः. १२. 'तयोरपि समय' इति ग-पुस्तके, 'अन्वत्समयमवसत्र परिप्रियते,  
तालवृन्तयुगलम्' इति घ-पुस्तके पाठः. १३. 'तालपत्रयुगम्' इति ग-पाठः. १४. 'ह-  
न्ति' इति ग-पाठः. १५. 'हृदयेस्थित' इति ग-पाठः.

प्राष्टमसासमां मत्वा प्रियां दिदृशुवोऽगणितमोष्ममध्यंदिनदिनेशसंतापाः पयिकाः  
पन्थानमतिवाहयन्तीत्यर्थः ॥

असमयप्रार्थितया कान्तया क्षिप्तं नायक दूती सान्त्वयितुमाह—

भण को ण रुस्सइ जणो पत्थिज्जत्तो अपसकालम्मि ।

रतिवाजडा रुअन्तं पिअं वि पुत्तं सवइ माआ ॥ १०० ॥

[भेण को न रुष्यति जनः प्रार्थ्यमानोऽदेशकाले ।

रतिव्यावृता रुदन्तं प्रियमपि पुत्रं शेषते माता ॥]

एतय चउत्थं विरमइ गाहाण सअं सहावरमणिज्जम् ।

सोऊण जं ण लग्गइ हिअए मधुरसणेण अमअं पि ॥

[अत्र चतुर्थं विरमति गायानां शतं स्वभारमणीयम् ।

श्रुत्वा यत्र लगति हृदये मधुरत्वेनामृतमपि ॥]

पद्यम घातकम् ।

प्रणामकाङ्क्षिणी नायकानुरक्त स्वहृदयमाह—

डङ्गसि डङ्गसु कट्टसि कट्टसु अह फुडसि हिअअ ता फुडसु ।

तह वि पैरिसेसिओ च्चिअ सोहुं मए गल्लिअसच्चावो ॥ १ ॥

[दङ्गसे दसस कप्यसे कप्यस अथ स्फुटति हृदय तस्फुट ।

तथापि पैरिशेरित एव स खलु मया गलितसद्भावः ॥]

परिशेषितः परिच्छिन्नः । निर्घात इत्यर्थः ।

यवक्षेत्रं सकेतस्थानमिति आरं भ्रातृवन्ती काचिदन्येषां भयप्रदर्शनार्थमाह—

दट्टूण रुन्दतुण्णं गजिग्गअं णिअसुअस्म दादग्गम् ।

भोण्डी विणावि कज्जेण गामणिअडे जवे च्चइ ॥ २ ॥

[दट्टा विनालतुण्णैर्दामनिर्गतं निजसुतस दंष्ट्राम् ।

सूत्री विनानि कैर्येण मामनिकटे यवांश्चरति ॥]

१. 'काउला' इति क-पाठः. २. 'वद' इति ग पाठः. ३. 'अदेशकालयोरपि' इति ग पाठः. ४. 'सपति' इति ग घ-पाठः. ५. इयं गाथा ग पुस्तके नास्ति. ६. 'कुट' ग. ७. 'परिशेषितव्यो' ग. ८. 'अत्र मए' ग. ९. 'परिशेषितव्योऽय मया' ग. १०. 'दुन्दुग्गम्' ग. ११. 'दुन्दुग्गम्' ग, 'वृहत्तुग्गम्' घ. १२. 'कार्ये' ग.

द्वन्द्व विशालम् । भोग्डी सूकरी । यवक्षेत्रप्रस्थिताया अभिसारिकाया निवेधार्यं  
इत्या उक्तिरियमिति केचित् ॥

अभिसारभीतां कामप्यनुचूलयितुं दूती नायकस्य ग्रामप्रधानतां निग्रहानुग्रहक्षमतां  
चान्यापदेशेनाह—

हेलाकरग्गअट्टिअजलरिकं साअरं पआसन्तो ।

जअइ अणिग्गअवडवग्गिभरिअगगणो गणाहिर्वई ॥ ३ ॥

[हेलाकराभाकृष्टजलरिकं सागर प्रकाशयन् ।

जयत्यनिग्रहवडवाधिभृतगगनो गणाधिपतिः ॥

हेलया कराभ्रेणाकृष्ट यज्जलं तेन रिक्तम् । जलनिग्रहान्निष्प्रतिबन्धोरिथितेन वडवा-  
पिना श्वेत गगन येन सः । गणाधिपतिर्विनायको मण्डलनायकश्च ॥

कौश्लि क्षामिनी जनानुरघनायात्मनः स्त्रीपरतामसोकपल्लवच्छलेनाह—

एएण चिअ कक्केह्दि तुज्ज सं णत्थि जं ण पज्जत्तम् ।

उवमिज्जइ जं तुह पल्लवेण वरकामिणीहत्थो ॥ ४ ॥

[एतेनैव कक्केहे तत्र तत्रास्ति यन्न पर्यसिम् ।

उपमीयते यत्तत्र पल्लवेण वरकामिणीहस्तः ॥]

कङ्कलिरशोकः ॥

पूर्वगाथार्थमेव भङ्गवन्तरेणाह—

रसिअ विअट्ट विलासिअ समअण्णअ सच्चअं असोओ सि ।

वरज्जुअइचलणकमलाहओ वि जं विअससि सएहम् ॥ ५ ॥

[रसिक विदग्ध विलासिन्समयज्ञ सैत्यमशोकोऽसि ।

वरयुवतिचरणकैमलाहतोऽपि यद्विकसति सत्पुष्पम् ॥]

समय आचार । नायिकाचरणघात. प्रमाद एव मन्तव्य इति नायक शिक्षयितु कु-  
ट्या उक्तिरियमिति केचित् ॥

दौ.साधिकाभिदासस्य जारस्य परिहासकौशलं दूती तत्प्रियामानन्दयितुमाह—

वलिणो वाआवन्धे चोज्जं णिउअत्तणं च पअडन्तो ।

सुरसत्थकआणन्दो वामणरूपो हरी जअइ ॥ ६ ॥

[बलेर्वाचावन्धे आश्रयं निपुणत्वं च प्रकटयन् ।

सुरसार्थकृतानन्दो वामनरूपो हरिर्जयति ॥]

बलेदौल्यविशेषस्य, पक्षे बलिनो बलवतः । वाचा वचनेन बन्धो नियमनं निरु-  
त्तरीकरणं च । चोद्यमाध्वर्यम् । 'चोद्यं स्यादद्भुते प्रश्ने चोदनाहं तु वाच्यवत्' इति मे-  
दिनीकोषात् 'चोद्यं' इत्येव मूलपाठः । निपुणत्वमिश्रितगुप्तिः । सुरसार्थो देवसमूहः शो-  
भनरसवदर्थकं वचनं च । वामनः सर्वाकारो न्यग्भावापन्नश्च । इतिर्विष्णुः परदाराप-  
हारी चेति यथायोग योज्यम् ॥

वापि प्रियवित्तानुरञ्जनार्थं श्रीणा मृतेऽपि पलावनुरागातिशय प्रतिपादयितुमाह—

विज्ञाविज्जइ जलणो गह्वइधूआइ वित्तअसिहो वि ।

अणुमरणघणालिङ्गणपिअजमसुहसिजिरङ्गीए ॥ ७ ॥

[निर्वाप्यते ज्वलनो गृहपतिरुहिम्ना वित्तृतशिखोऽपि ।

अनुमरणघनालिङ्गेनप्रियतमसुस्रसेदशीताङ्ग्या ॥]

ग्राह्ये पूर्वनिपातानियमातिप्रियतमघनालिङ्गेनेति योज्यम् ॥

वापि जारचित्तहरणार्थं पूर्वोक्तमिप्रायिका गायामाह—

जारमसाणसमुब्भवभूइसुहस्फंससिजिरङ्गीए ।

ण समप्पइ णैवकावालिआइ उद्दूलणारम्भो ॥ ८ ॥

[जारमशानसमुद्भवभूतिमुखस्पर्शसेदशीलाङ्ग्याः ।

न समाप्यते नवकापालिक्या उद्दूलनारम्भः ॥]

नवकापालिक्या गृहीताभिनवकापालिकप्रतायाः ।

तत्तत्कारणसोनिष्यादेकस्मिन्ननेके भावा भवन्तीति निदर्शयन्कोऽपि सहचरमाह—

एको पहुअइ यणो वीओ पुलएइ णहमुहालिहिओ ।

पुत्तस्स पिअअमस्स अ मज्झणिसण्णाएँ घरणीए ॥ ९ ॥

[एकः प्रह्वीति सनो द्वितीय पुलकितो मरति नसमुहालिहितः ।

पुत्रस्य प्रियतमस्य च मध्यनिपण्णया गृहिण्याः ॥]

जारं प्रलनवसरप्रकटनपरं दूत्या वचनमिदमिति केचित् ॥

प्रामणीपुत्र्यां सामिलाय. कोऽपि प्रहसनमाह—

एत्ताह्विअ मोहं जणेइ वाळत्तणे वि वट्टन्ती ।

गामणिधूआ विसंकन्दलिव्व वट्टीओं काहिइ अणत्थम् ॥ १० ॥

१. 'विज्ञा विज्जइ' ख. २. 'लित्तित' ग. ३. 'विज्ञा निर्वाप्यते' ख, 'विष्माप्यते'  
ग, 'विनिर्वाप्यते' घ. ४. 'लित्तितप्रियतमसुस्रसेदशीलाङ्ग्या..' ग. ५. 'नवकावालिणी'  
ख. ६. 'पुलकति' घ. ७. 'विगतभ्रम' ग.

[एतावत्येव मोह जनयति बालत्वेऽपि वर्तमाना ।

मामणीर्दुहिता विषकन्दलीत्र वर्धिता करिष्यत्यनर्थम् ॥]

त्रैविक्रमवन्परत्वेन प्रियेण प्रीणिता कापि हरेरूर्ध्वगत चरणं नमस्यन्त्यन्यापदेशे-  
नाह—

अपहुप्पन्तं महिमण्डलमिम णहसंठिअं चिरं हरिणो ।

तारापुष्पप्परश्चिअं व तइअं पअं णमह ॥ ११ ॥

[अप्रभवन्महीमण्डले नम सस्थित चिर हरे ।

तारापुष्पप्रकाराश्रितमिव तृतीय पद नमत ॥]

अप्रभवदसमात् । हरिर्विष्णु परदारापहारी च । तारानेत्रमध्य नक्षत्र च ।

रुसाविदुत्कण्ठितायां सखीभिरुक्त सुप्यतामिति सा तास्नाह—

सुप्पउं तइओ वि गओ जामोत्ति सहीओं कीस मं भणह ।

सेहालिआणं गन्धो ण देइ सोत्तु सुअह तुहे ॥ १२ ॥

[सुप्यता तृतीयोऽपि गतो याम इति सख्य किमिति मा भणय ।

शेफालिकाना गन्धो न ददाति स्वसु स्वपत यूयम् ॥]

परि, कथ तमेव निरनुकोश स्मरसीति सख्योक्ता विरहोत्कण्ठिता तामाह—

कहँ सो ण संभरिज्जइ जो मे तह संठिआइँ अज्जाइँ ।

णिच्चत्तिए वि सुरए णिज्जाअइ सुरअरसिओव्व ॥ १३ ॥

[कथ स न सख्यते यो मम तथासस्थितान्यद्भानि ।

निवर्तितेऽपि सुरते निष्यात्यति सुरतरसिक इय ॥]

निष्यात्यति परयति । तथासंस्थितानीत्यनेनानुभवैकगोचरोऽवस्थाविशेषो धोत्यते ।

कापि जाइँ प्रति संकेतस्थानमाह—

सुक्करन्तवहलकदमघम्मविसूरन्तकमठपाठीणम् ।

दिट्ठ अदिट्ठउव्वं कालेण तल तडाअस्स ॥ १४ ॥

[शुष्यद्बहलवर्दमघर्मसिंधमानकमठपाठीनम् ।

दृष्टमदृष्टपूर्वं कालेन तल तडागस ॥]

कर्ममान्तस्य पाठीनान्त्वेन कर्मधारय । तथा च पूर्वं जलाद्याहरणार्थं लोकानां ग

\* १. 'सुता विरततेर वर्धमाना' ग. २. 'सुप्यतु' ग. ३. 'विशोर्धमाण' ग  
स्थित' घ.

तान्तमाधीव, इदानीं तद्भावादिष्णत्यूह विहरेति भावः । कस्यचिदतिशयप्रम्य पथा  
 रिद्रीभूतस्यान्यापदेशेन कापिदनुशोचनमनया गायया करोतीति चेचिन् । अह सकेत्  
 स्थान गता न त्वमिति जारं प्रयुक्तिर्वा । अतृप्ता सुरतभान्त कान्तमुरसाहपितुपम्य  
 मनस्कं करोतीति वा ॥

. कापि सपरिहास कामपि चाट्टवादमाह—

चोरिअरअसद्धालुइ मा पुत्ति उभमसु अन्धआरम्मि ।

अहिअअरं लक्खिअज्जसि तमभरिए दीवमीहव्व ॥ १५ ॥

[चौर्यरतप्रद्वालीले मा पुत्रि भ्रमान्धकारे ।

अधिकतर लक्ष्यमे तमोभृते दीपशिखेव ॥]

तमोभृते प्रदेश इति शेष ॥

सकेतस्थानदाहादसती दु यित्तेति कारि सहचरमाह—

वाहित्ता पडिवअणं ण देइ रुसेइ एक्कमेकारस ।

असइ कज्जेण विणा पइप्पमाणे णईक्खे ॥ १६ ॥

[व्याहता प्रतिवचन न ददाति रुप्यत्वेकैकस ।

असती कार्येण विना प्रदीप्यमाने नदीपच्छे ॥]

प्रदीप्यमाने दक्षमाने ॥

ए कुलटासीति प्रतिवेशिन्योक्ता कारि तामाह—

आम असइ ए ओमर पइव्वए ण तुह महल्लिअं गोत्तम् ।

किं उण जणस्स जाअव्व च्चिन्दिलं ता ण कामेभो ॥ १७ ॥

[आम असत्यो वयमपसर पतिव्रते न तत्र मणिनिभं मोरम् ।

किं पुनर्जनस जायेत् नापित तावन्न कामयागहे ॥]

आनेति सेषानुमर्ता । पतिव्रते इति सोपलम्भं लघोधनम् । काम जायेत् तस्मिन्  
 वेल्लयं । अथ भावः—भवामो वय कुलटा, किं तुमनायकात्ता । त तु त्वमिन्  
 नापितासचेति । अथ च तव मोरं नाम न मल्लितम्, किं तु कुलमेवेति ॥

काप्यमनोऽनुरागानिश्चय प्रतिपादयन्ती नायकमाह—

णिहं लहन्ति कदिअं सुणन्ति राल्लिअअगरं ण जम्पन्ति ।

जाहिं ण दिट्ठो मि तुमं ताओ विअ मुहअ मुदिआओ ॥ १८ ॥

१. 'चौरिकरतप्रद्वालुके' श घ. २. 'चन्द्रितशब्दो नापिते देशा' इति कुलटादेव-

[निद्रा लभन्ते कथितं शृण्वन्ति स्वलिताक्षरं न जल्पन्ति ।

यामिर्न दृष्टोऽसि त्वं ता एव सुमगं सुखिताः ॥]

एष तु त्वदर्शनाच्चातमन्मथास्तद्विपरीता जाता इति भावः ॥

इती कस्ताधिद्वुरागातिशय प्रतिपादयन्ती नायकमाह—

वालभ तुमाह दिष्णं कण्ठे काऊण घोरसंघाडिम् ।

लैज्जालुइणी वि वहुं धरं गअ गामरच्छाए ॥ १९ ॥

[वालकं त्वया दत्ता कर्णे कृत्वा बेंदरसघाटीम् ।

लैज्जालुरपि वधूर्गृहं गता गामरभ्यया ॥]

घोरं बंदरीकल्म । सघाटी युगलम् । एतेनारारं यत्किंचिदपि त्वया दत्तं धारयतीति  
उपनिशय सूचितः ॥

काचिदप्रियं प्रति गन्तव्यमाना पथात्तापेन सखीभेदमाह—

अहं सो विलङ्घयहिअओ मए अ हव्वाएँ अगहिआणुणओ ।

परवज्जणघरीहिं सुद्धोहिं उवेक्सओ गेन्तो ॥ २० ॥

[अथ स विलङ्घयद्दयो मया अमव्यया अगृहीतातुनय ।

परवाचनर्तनशीलाभिर्युष्माभिरुपेक्षितो नियन् ॥]

अपेति प्रथे । परस वाचपूर्वकं यत्प्रतेन कुमार्गप्रापणं मानशिक्षणरूपं सच्छ्रीलाभिः ।  
नियन् गच्छन् । युष्माभिर्मानशिक्षावसरे मया यदाशङ्कितं तदिदं जातमित्याशयः ॥

विदग्धं कात्प्रलभमाना कापि सखीमाह—

दीसन्तो णअणसुहो णिव्वुइजणओ करेहिं वि छिवन्तो ।

अव्भत्थिओ ण लम्भइ चन्दो व्व पिओ कलाणिलओ ॥ २१ ॥

[हृदयमानो नयनसुखो निर्वृत्तिपवनं कराम्या [अपि] स्पृशन् ।

अभ्यर्षितो न लभ्यते चन्द्र इव प्रियं कलानित्यं ॥]

निर्वृत्तिपवनः सुतापहरः । कराम्या हस्ताभ्याम्, पक्षे करैः शिरसि । अभ्यर्षितः  
प्रार्थितः, पक्षे अभ्यर्षितो गणनस्थितः । कलापन्नुं पठि, पक्षे पठेत् ॥

कापि कालस्य तदेकधनां प्रतिपत्त्यती आरं प्रति संकेतस्नानमत्र धारयति—

जे णीलभमरभग्गोलभा आसि णइअडुण्णत्ते ।

यातेण वज्जुला पिअवअस्स से यण्णुआ जाआ ॥ २२ ॥

१ 'समज्ज' भि 'अया' ग. २ 'बंदरसंघाडिम्' ग. 'बंदरसंघाडिम्' इ. ३ 'लैज्जालुइणी' ग. 'लैज्जालुइणी' ग. ४ 'जे-ओ' ग. ५ 'अणुणुणुणु' ग. ६ 'करेहिं' इ. 'करे' घ. ७ 'विषयना' ग.



[ये नीलभ्रमरभ्रमगुच्छका आसन्नदीतटोत्सङ्गे ।  
कालेन वैकुला प्रियवयस्य ते स्थाणवो जाता ॥]

स्थाणवो निष्पन्नशाखा ॥

अस्थिरब्रह्म नायक प्रत्युद्दिमा कापि दृढप्रेमप्रियप्राप्तीच्छाप्रकाशनच्छलेन कस्य  
वकाशदानायाह—

खणभङ्गुरेण पेम्भेण माउआ हुम्मिअद्ध एत्ताहे ।  
सिखिणअणिहिलम्भेण व दिट्ठपणट्टेण लोअम्मि ॥ २३ ॥

[क्षणमङ्गुरेण प्रेम्णा मानृष्यस्य दूना सा इदानीम् ।

स्वमनिधिलम्भेनेव दृष्टप्रनष्टेन लोके ॥]

काव्यचिरेणैव खण्डितप्रणया धूर्तं कान्तमन्यापदेशेनाह—

चावो सहावसरल विच्छिद्यह सर गुणम्मि वि पटन्तम् ।

वङ्कस्स उज्जुअस्स अ संघन्धो किं चिरं होइ ॥ २४ ॥

[चाप स्वमानसरल विक्षिपति सरं गुणोऽपि पतन्तम् ।

वक्रस्य ऋजुकस्य च संबन्ध किं चिरं भवति ॥]

सरलो ऋजु, पक्षे निष्कपट गुणो मीर्वा । पक्षे सीन्दर्यादि । 'अथ प्रियो ।  
धापो' इत्यमर ॥

कस्याधित्सनयोद्विवस्वाधोत्कर्षं साभिलापं कोऽपि वर्णयति ।—

पदम वामणविधिणा पच्छा हु कओ विअम्ममरणेण ।

धणजुअलेण इमीण् महुमहणेण ध्व वल्लिअन्धो ॥ २५ ॥

[प्रथम वामनविधिना पश्चारखलु कृतो विनृम्भमाणेन ।

स्वमयुगले नैतेत्या मधुमधनेनेव वल्लिवन्ध ॥]

वामन स्वरूप स्वयंघ । वल्लिवल्लिरमुरभेदध । ववयोरभेद ॥

दुष्टो न केवलं साधूनामपकारमात्रं करोति, किं त्वसाधूनामुपकारमपीति कोऽपि  
न्यापदेशेनाह—

माहइकुमुमाहँ कुँलुअच्छिउण मा जाणि णिव्वुओ सिसिरो ।

काअव्वा अज्जवि णिगुणानँ कुन्दानँ वि समद्धी ॥ २६ ॥

१ 'अशोका प्रियावतसस्थानका' श. २. 'विपटपति' घ. ३ 'गुणे वर्णयति' श.  
ग. 'गुणे निपतन्तम्' घ. ४. 'मज्जस' श. ५ 'ममस' श. 'तस्या' घ ६ 'हं  
धुद्विउण' क. 'इण्णइभोण' श.

[मालतीकुसुमानि दग्ध्वा मा जानीहि निर्वृतः शिशिरः ।

कर्तव्याद्यापि निर्गुणाना पुन्दानामपि समृद्धिः ॥]

न केवलं तव दौर्भाग्य मया कृतं किं तु त्वत्सपत्नीना सौभाग्यमपि विधेयमित्यग्नि-  
यवादिनी नायिकां प्रति कुपितनायकेन ध्वनितमिति केचित् ॥

श्लोऽपि, गलितयौवनायाः स्तनावालोक्ष्य सपरिहासमाह—

तुङ्गाणँ विसेसनिरन्तराणँ [सरस]वगलद्धसोहाणम् ।

कअकजाणँ भड्गाणँ घ थणाणँ पडणं वि रमणिज्जम् ॥ २७ ॥

[तुङ्गयोर्विशेषनिरन्तरयोः [सरस]वगलद्धशोभयोः ।

कृतकार्ययोर्भटयोरिव स्तनयोः पतनमपि रमणीयम् ॥]

तुङ्गयोरुन्नतयोर्मानोन्नतयोश्च । विशेषेण निरन्तरयोरन्योन्यलम्बयोः परस्परनिर्वि-  
शेषयोश्च ॥

श्लोऽपि कस्याधियुवत्याः पीनोन्नतौ स्तनी वर्णयति—

परिमलणसुहा गुरुआ अलद्धविवरा सलक्षणहरणा ।

थणआ कब्बालां व ड्य कस्स हिअए ण लग्गन्ति ॥ २८ ॥

[परिमलणसुहा गुरुका अलद्धविवराः सलक्षणाभरणाः ।

स्तनकाः काव्यालापा इव कस्य हृदये न लगन्ति ॥

परिमलनं मदनं विचारश्च । गुरुकाः पीनोन्नता अर्धगुरुवाश्च । विवरं रन्ध्रं दूषणं  
। लक्षणं श्रीफल, दिसाहर्यं पाणिन्यादिप्रोक्तं च । आभरणं हारादिकमुपमानुप्रा-  
देकं च ॥

उपदेयोऽर्थः कदाचिदनुपादेयतां यातीति निदर्शयन्कविदाह—

रिप्पइ हारो थणमण्डलाहि तरुणीअ रमणपरिग्ग्मे ।

अधिअगुणा वि गुणिनो लहन्ति लहुअत्तणं काले ॥ २९ ॥

[क्षिप्यते हारः स्तनमण्डलात्तरुणीभी रमणपरिग्ग्मे ।

अधितगुणा अपि गुणिनो लभन्ते लघुत्वं कालेन ॥ ]

गुणः सूत्रं शौर्यादिकं च ॥

काव्यात्मनः कस्मिन्नप्यनुरागं मन्मथव्यर्षां च सूचयन्ती सतीमाह—

अण्णो को वि मुह्वायो मम्महसिहिणो हला हजासस्स ।

विज्झाह णीरसाणं हिअए सरसाणं शक्ति पज्जलइ ॥ ३० ॥

१. 'मलानानि कृत्वा' वा, 'शब्द'यमानानीव निरृत.' घ. २. घ-पुस्तके तुङ्गाना-  
मित्यारि बहुवचनं सर्वत्र वर्तते. ३. 'रिप्पइ' क.

[अन्यः कौऽपि स्वभावो मन्मथशिम्विनो ह्येला हताशस्य ।

निर्याति नीरमानां हृदये सरसानां शरिति प्रथ्वलति ॥]

हला सति । हताशस्येतुद्वेगभूचरम् । नीरमानामनुरागरदितानां शुष्कानां सरसानां राशिणामार्द्राणां च ॥

कावि मानप्रद्विलासः सहसाः गण्डितं सौभाग्यं मानुलान्यां सस्मियमाह—

तद् तस्स भाणपरिवद्धिअस्स चिरपणअवद्धमूलरम ।

मासि पडन्तस्स सुओ सहो वि ण पेम्मरुक्खरस्स ॥ ३१ ॥

[तथा तस्य मानपरिवर्धितस्य चिरपणवद्धमूलस्य ।

मानुलानि एततः श्रुतः शब्दोऽपि न प्रेमवृक्षस्य ॥]

मानेन साहायेण परिवर्धितस्य । चिरपणय एव वद्धं मूलमस्य । बहुवचनस्य च नुरागस्य कल्पविन्दया इवमुक्तिरिति केचित् ॥

अपृहीतानुनयां गभीं सखो सत्तेदमाह—

पाअपट्टिओ ण गणिओ पिअं भणन्तो वि अप्पिअं भणिओ

यचन्तो वि ण रुद्धो भग कम्म कए कओ माणो ॥ ३२ ॥

[पादपतितो न गणितः विषं मगधप्यप्रियं मणितः ।

वतद्धति न रुद्धो भग कल्प कृते कृतो मानः ॥]

पादपतितोऽर्थात्रिय इति द्रष्टव्यम् । पादपतनादिकमेव मानस्य पदम् । मत्तुः मेवैतर्थाः । अथवा कल्प कृते कं युवानं रमन्ति तु रसना मानस्यल्लेनादगरः यंवारिण गोपालम्भं सत्त्वा पचनम् ॥

सवन्त्या दुषरितं मृषवन्ती कावि गोपालम्भमाह—

पुसइ खणं धुवइ खणं पप्पोहइ खणणं अआणन्ती ।

मुद्धवहू थणवट्टे दिण्णं दइण्ण णहरमअम् ॥ ३३ ॥

[मोन्ठति क्षणं धावति क्षणं मन्कोटयति तैश्चनमवानती ।

मुष्पसू खणवेदे दत्त दयितेन मंगररदम् ॥]

नायकमुष्पसूखणवित्तु भाविद्याया नवयौवन प्रतिपादयन्त्या दृग्ग इवमुक्तिर्थाः ॥

आमनः संकेतस्थानमवर्नं जाइ प्रति धावन्ती कावि खण्डमवमाह—

धोमाहस्से उण्णअपओहरे जोन्णे ठव योलीने ।

पट्टमेइकामधुमुमं धीमइ पळिअं च धरणीए ॥ ३४ ॥

१. 'श्रेयजनकम्' श. २. 'मङ्गलकम्' क. ३. 'अथमत्रवन्ती' इ. ४. 'ध. ५. 'परिगारणे' क.

[वर्षाकाले उन्नतपयोधरे यौवन इव व्यतिक्रान्ते ।

प्रथमैककानाकुसुमं दृश्यते पलितमिव धरण्याः ॥

उन्नतपयोधरे उन्नतमेधे । पक्षे उन्नतस्तने । अहं तां काशभूमिं गता त्व तु नागत इति भावः । यद्वा न केवलं मामेव वार्धकं प्रसवे पश्य धरण्या अधीमामवस्थामिति हसन्तं सिद्धं प्रति जद्वेदस्यायाः कस्याधिविद्यमुक्तिः ॥

प्रवातोयतस्य प्रियस्य गमननिषेधाय कापि वर्षाकालं वर्णयति—

कस्य गअं रइविम्बं कस्य पणट्टाओ चन्दताराओ ।

गअणे बलाअपेन्ति कालो होरं व कट्टेइ ॥ ३५ ॥

[पुत्र गतं रविबिम्बं कुत्र प्रणष्टाश्चन्द्रतारकाः ।

गमने बलाकार्पाङ्गं कालो होरानिवाकर्षति ॥]

होरा कठिनीरेखा । अन्योऽपि ज्योतिर्विस्तूर्यादिप्रहप्रतिगाधनायै कठिनीरेखामा-  
र्षणीत्यर्थः । 'होरा लगेऽपि राश्यर्थे रेखाशास्त्रमिदो' इति मेदिनी ॥

सद्यङ्गं जारं नि.सङ्गं कर्तुं काचिदाह—

अविरलपतन्तणवजलधाराञ्जुघटिअं पअत्तेण ।

अपहुत्तो उअत्तेत्तुं रसइ व मेहो महिं उअह ॥ ३६ ॥

[अविरलपतन्तणवजलधाराञ्जुघटितां प्रयत्नेन ।

अप्रभवद्युत्थेतुं रसतीन भेषो महीं पश्यत ॥]

अविरल पतन्त्यो नवजलधारा एव रज्ज्वत्ताभिर्पटितां बद्धां महीमुञ्चेमुमग्रभवन श-  
ब्दमेधो रसतीय शब्दायत इव । अतिवृष्टौ जलप्रचाराभावात्नि.सङ्गं रमक्षति भावः ॥

कापि क्षान्तानयनाय सती स्वरयितु इदयोव'लम्भन्याजेनात्मपीडा धावयति—

ओ हिअअ ओहिदिअहं तइआ पडिअञ्जिऊण दइअरस ।

अत्थेक्काउल वीसम्भघाइ किं तइ समारद्धम् ॥ ३७ ॥

[हे हृदय अवधिदिवसं तदा प्रतिपद्य दधितस्य ।

अकस्मादाकुल विसम्भघातीन् किं स्वया समारब्धम् ॥]

ओ इति दुःसायुजनपूर्वकं संबोधने । प्रतिपद्यात्रीहृत् ॥

रतप्रवृत्तात्प्रभ्रमसपाया' सपन्दायात्प्रसङ्गदनें प्रघातयन्ती कचिदाह—

जो वि ण आणइ तरस वि क्हेइ भग्गाइ तेण यलजाइ ।

अइउज्जुमा यराइ अह व पिओ से ह्मासाए ॥ ३८ ॥

[योऽपि न जानाति तस्यापि कथयति मासानि तेन बलयानि ।

अतिश्रुतुका चरापी अथवा प्रियस्ता हताशायाः ॥]

• बलयानीत्यनन्तरं इतीति शेषः । अतिश्रुतुका अत्रकाशनीवार्थप्रकाशनात् । अथवेति मया भ्रमानि बलयानीति जतरोऽपि बदेतीति भावः ॥

कोऽपि कस्ताधिहावस्यं वर्णयन्माननधुम्वनाभिलाषं प्रकाशयति—

सामाद् गणअजोऽवणवित्सेसमरिण् कपोलमूलम्भि ।

पिन्नाद् अहोमुष्टेण व कण्ठावअंसेण लावण्यम् ॥ ३९ ॥

[श्यामाया गुरुकुर्यादगभिशेषभूने कपोलमूले ।

पीयनेऽधोमुष्टेनेव कर्णावतंसेन लावण्यम् ॥

श्यामाया उल्लसनादिकाया । यौवनविशेषेण भूते मीठसिते ॥

अल्लामवलां बाग्रमसंभेदयन्ताः कस्ताधिदुत कानि चरतीशिशार्पमाद्—

सेटह्निअसव्वद्दी गोचरगहणेण तम्भ मुहअरस ।

दुहं पट्टाण्णन्ती तरस्मेअ घरद्दणं पप्पा ॥ ४० ॥

[श्वेदेर्द्रांशुलसर्वांशु गोचरगहणेण तम्भ मुमगम् ।

दूती प्रस्थापयन्ती (मंदितान्ती वा) तस्मैव गृहाद्दणं प्राप्ता ॥]

कारि कुमुमसरमरकारश्चट्टेनरमनो दुग्गहां पिरहरेदनां प्रकाशयन्ती कान्तावय माय चरतीचने त्वरदिगुमाद्—

[निजपक्षारोपितदेहभारनिपुणं रसं लभमानेन ।

विकास्य पीयेत मालतीकलिका मधुकरेण ॥]

यद्वा स्वामपीडयन्नेवासौ रमयिष्यतीति नववधूमाश्वासयितुं नायकस्य भववधूसंभोग-  
कौशलमन्यापदेशेन प्रतिपादयन्त्या द्रव्या इयमुक्तिः ॥

विरमिद्विर्णिषीं युवतीं सखी समाश्वासयितुमाह—

कुरुणाहो विवअ पहिओ दुमिज्जइ माहवस्स मिलिएण ।

भीमेण जहिल्लिआए दाहिणवाएण छिप्पन्तो ॥ ४३ ॥

[कुरुनाथ इव पथिको द्यूयते माधवस्य मिलितेन ।

भीमेन येयेच्छया दक्षिणवातेन स्पृश्यमानः ॥]

कुरुनाथो दुर्योधनः । माधवस्य कृष्णस्य वैशाखस्य च । भीमेन भीमसेनेन भवान-  
केन च । दक्षिणवातेन मलयानिलेन, पक्षे दक्षिणपादेन । वसन्तवातमथादक्षिणदेवा-  
गमिष्यति ते प्रिय इति भावः । यद्वा आसन्ने वसन्ते कान्तस्य प्रवासनिषेधार्थं नायि-  
क्या इयमुक्तिः ॥

अज्ञातयौवनया जायया सह रममाण कापि सानुरागपरिहासमन्यापदेशेनाह—

जाव ण कोसविकासं पावइ ईसीस मालईकलिआ ।

मअरन्दपाणलोहिह भमर तावचिअ मलेसि ॥ ४४ ॥

[यात्रन्न कोपविकासं प्रामोतीर्षेन्मालतीकलिका ।

मकरन्दपानलोभयुक्तं भ्रमर तावदेव मर्दयति ॥]

योप कुच्छलः, पक्षे कुच्छलाकारे वराहम् । मकरन्द पुष्परसः, पक्षे रत्निसुत्तम् ।  
अयमाशयः—दुर्निदग्धः सत्वति यस्त्वमस्वद्विध युवतिजन विहायास्थाने क्रियसीति ।  
यद्वा—अस्यामेव दशायां श्रियः सुरावहा भवन्ति तस्मान्मर्दयन्मां भेष्यतीति सखीव-  
चनमेतत् ॥

कापि मन्दलेहं जारमनुकूलयितुं दुष्करलेहचर्चामाह—

अकअण्णुअ तुग्ग कए पाउसराईसु जं भए सुण्णम् ।

उप्पेकरामि अलज्जिर अज्ज वि तं गामचिक्खित्तम् ॥ ४५ ॥

[अशृतञ्च तत्र कृते प्राशुद्धानिपु यो मया श्रुण्वः ।

उत्प्रेक्ष्याम्यलज्जशील अद्यापि तं ग्रामपद्मम् ॥]

१. 'विहता' ग घ. २. 'दुर्मिज्जइ' ग. ३. 'दुर्मनस्कः क्रियते' ग. ४. 'यद-  
च्छया' ग घ. ५. 'दक्षिणवतेन' ग. ६. 'स्पृश्य' ग. ७. 'मनागपि' ग. ८. 'लेमिठ'  
ग 'तुण्य' घ. ९. 'उत्प्रेक्षे' ग-घ.

उपेक्षामीलसोत्प्रेक्षे स्मरामीति वार्थ । त्वनिमित्त मया बहुतरं दुःखमनुभूत  
किमिति मा प्रत्युदासीनोऽपीति भाव ॥

रिपरीतरते मुग्धवधूप्रोचनार्थं नागरिक कस्याधिरुहपायित वर्णयति—

रेहइ गलन्तरेसन्तलन्तरेण्डलललन्तहारलभा ।

अद्भुत्पद्मा विजाह्वरि वर पुरुसाहरी वाला ॥ ४६ ॥ .

[राजते गलत्वे शस्वत्पुण्डलललद्धारलता ।

अर्धोत्पत्तिना विद्याधरीव पुरुषायिता वाला ॥]

‘उद्भुत्पद्मा’ इति पाठे ऊर्ध्वोत्पत्तितेत्पर्यं ॥

आत्माराम निरतिशयानन्दनिधिमपि भक्तापुप्रहाय गृहोत्पीलाविषहं लम्बितजार-  
भावं धीकृष्ण सौभाग्यगर्विता वध्वी काचिद्गद—

जइ भ्रमसि भ्रमसु एमेभ कहु सोहृग्गगठिवरो गोटे ।

महिलाणं दोसगुणे विचारअइउं जइ रमो नि ॥ ४७ ॥

[यदि भ्रमसि भ्रम एतेमेव कृष्ण सौभाग्यगर्वितो गोटे ।

महिलाना दोषगुणौ विचारयितु यदि क्षमोऽनि ॥]

मत्सदरी वनभा दुर्लभा त्वदेति भाव ॥

मानिन्यां सखी तत्कान्तमनुनयपरास्मृत्तमन्यापदेशेनाह—

संज्ञासमए जलपूरिअञ्जलिं विहडिण्णवामभरम् ।

गोरीअ कोसपाणुञ्जय य पमहादिव णमह ॥ ४८ ॥

[सप्याममये जलपूरिताञ्जलिं निपठितैववामवरम् ।

गौर्यै कोसपानोद्यनमिष प्रमथाधिप नमत ॥]

विपठितोऽर्धाद्रीयां एको वाम करो यस्य । जानपन्त्यन्तरशाहाया गौर्यां प्रपानि  
कोसपानास्य दिव्य संमुखि करोतीति स्वपारीयमरदयमनुनेयेति भाव ॥

काचि सौभाग्यस्योपादेयतां प्रतिपादयन्ती गत्तीमह—

गामणिणो सञ्ज्यासु वि पिआसु अणुमग्णगहिनवेमासु ।

मम्मच्छेणसु वि चल्हाइ उषरी चल्ह दिट्ठी ॥ ४९ ॥

[मौमण्या सर्वान्पि प्रियान्नुमरणगृहीतरेषामु ।

मर्मच्छेदेष्वपि यत्तनाया उपरि चल्ते इति ॥]

१ ‘पुरापित्तोत्प्रेक्षे’ घ २ ‘विचारस्यो भ्रम इति न दोषा’ ग, ‘विचारित’  
ग, ३ ‘एतेमेव’ ग, ४ ‘दोषगुणविचारस्योऽप्यपि न भवति’ ग, ‘दोषगुणे’ विचार-  
विशुद्धयपि न क्षमोऽपि’ घ, ५ ‘प्रियान्मुन्यस्य’ ग.

यद्वायं ऋणदशमापन्नोऽपि सुभगामेव पश्यति युष्मालद्यापि विरक्तः तस्मादनु-  
 रणात्रिवर्तध्वं कुरुध्वं च जारमित्यभिप्रायेण कुट्टन्या इयमुक्तिरिति ध्वेयम् ॥

कथमेवं प्रियवादिनमपि कान्तमवधीरयसीति वदन्तीं मातुलानीं काचिदाह—

मामि सरसक्खराणँ वि अत्थि विमेषो पअम्पिअव्वाणम् ।

ग्रेहमइआणँ अण्णो अण्णो उवरोहमइआणम् ॥ ५० ॥

[मातुलानि सदृशाक्षराणामप्यस्ति विशेष. प्रजल्पितव्यानाम् ।

ग्रेहमयानामन्योऽन्य उपरोधमयानाम् ॥]

\* प्रजल्पितव्यानां वचनानाम् । ग्रेहं विनापि शठः परान्वद्यितुं मधुरं भाषते । तथा-  
 प्यनुभवसाधिक- स्वरविशेष एव भेदक इति भावः । 'मामि' इति स्थाने 'मुहभ' इति  
 वचित्वाठ । 'सुभग' इत्यर्थं । तत्र कथं मामवधीरयसीति वदन्त नायक प्रति नायिकाया  
 इयमुक्तिर्योज्या ॥

अन्यासक्त दाक्षिण्यात्प्रियवादिनं नायकं कापि सरोपमाह—

हिअआहिन्तो पसरन्ति जाइँ अण्णाइँ ताइँ वअणाइँ ।

ओसरमु किं इमेहिँ अहरुत्तरमेत्तभणिणहिँ ॥ ५१ ॥

[हृदयेभ्य प्रसरन्ति यान्यन्यानि तानि वचनानि ।

अपसर विमेभिरधरोत्तरमात्रमणितैः ॥]

अपरेति मुखमात्रप्रवृत्तेर्न तु हृदयप्रवृत्तेरित्यर्थं. ॥

गोत्रस्थलितं वान्त धीरा नायिका सदैवदग्ध्यमाह—

कइँ सा सोदरगगुणं मए संमं वहइ णिग्घिण तुमम्मि ।

जीअ हरिज्जइ गोत्तं हरिऊण अ दिज्जए मज्झ ॥ ५२ ॥

[कथं सा सौभाग्यगुणं मया संमं वहति निर्घृण त्वयि ।

यस्य हियते नाम हत्वा च दीयते मक्षम् ॥]

विराजन्तितमात्मनः काश्यंमत्र नती कापि प्रीतिभर्तृका सखीमाह—

सहि साहसु सवभावेण पुत्तिठमो किं असेसमहिलानाम् ।

वहुन्ति करठिआ त्विअ बलआ दइए पैउट्टम्मि ॥ ५३ ॥

[सखि कथय सद्भावेन पृच्छाम. निमशेषमहिलानाम् ।

वर्धन्ते करस्थिता एव बलया दयिते प्रीयिते ॥]

'बलयोऽन्नियम्' इत्यमरः ॥

१. 'मुहभ' रा-ग. २. 'सुभग' ग-घ. ३. 'हृदयस्थायी' ग. ४. 'गमं' ख-  
 'पउत्थे' घ. ५. 'करस्था.' ग.



दुर्गंत रोगिणं वा पतिं लक्ष्मिच्छन्तीं पत्न्युत्पाभिमुखीं निषेदुं कान्दिद्व्यापदेशेनाह—

भमइ पलित्तइ जूरइ उक्खियविउं से करं पसारइ ।

करिणो पङ्ककखुत्तस्स णेह्णिअलाइआ करिणी ॥ ५४ ॥

[अमतिं परितः खिद्यते उत्क्षेपुर्तेस करं प्रसारयति ।

करिणं पङ्कनियमस्य खेहनिगडिता करिणी ॥]

इति सत्याः शिक्षार्थं पार्वत्या लज्जायामपि स्नेहाभिव्यक्तिवैदग्ध्यं वर्णयति—

रइकेलिहिअणिअंसणकरकिसलअरुद्धणअणजुअलस्स ।

रुहस तइअणअणं पव्वइपरिउम्बिअं जअइ ॥ ५५ ॥

[रतिवेलिहितनिवसनकरकिसलयरुद्धनयनजुगलस्य ।

रुद्रस्य तृतीयनयनं पार्वतीपरिचुम्बितं जयति ॥]

ताडनाभिलाषाकृतकलितं हलिकस्य कस्यापिदुरागं सूचयनापरिकल्पमाह—

धावइ पुरओ पासेसु भमइ दिट्ठीपइम्मि संठाइ ।

णवलइकरस्स तुह हलिअउच दे पहरसु वराइम् ॥ ५६ ॥

[धावति पुरतः पार्श्वयोर्भ्रमति दृष्टिपथे सतिष्ठते ।

नवलतिककरस्य तव हलिकपुत्र हे प्रहरस्य वराकीम् ॥]

हेशब्दः रुबोधने । यद्वा नवलताकुञ्जं सकेतस्थानं त्वं गतो न त्वियमिति कृताप-  
राधामेना प्रहरेति सोपहासं कुट्टनीववनमिदम् ॥

कृत्रिमं सर्वमुपहासास्पदं भवतीति निदर्शयन्कश्चित्स्य वैदग्ध्यत्यापनाय सहचर-  
माह—

कारिममाणन्दवडं भामिज्जन्तं यहूअ संहिआहिं ।

येच्छइ कुमारिजारो हासुम्मिस्सेहिं अच्छीहिं ॥ ५७ ॥

[इतिममानन्दपटं आम्यमाणं कथां सञ्जीवि ।

प्रेक्षते कुमारीनाथे हासोन्मिश्राम्यानक्षिभ्याम् ॥]

१. 'मिअडीकिआ' ग. २. 'परितप्ता' ग, 'प्रत्यावर्तते' घ. ३. 'खियति' घ.  
४ 'अस्य' ग. ५. 'पङ्कनिधातस्य' ग. ६. 'खेहे निरुक्तीकृता' ग, 'खेहनिगडा  
यिता' घ. ७ 'णवलआए तुह' ख. ८ 'पार्श्वे' घ. ९. 'नवलताकरस्य तव' ग,  
'नवलतिकया तव' घ. १०. 'वन्धुहि' क-ग.

आनन्दपटः प्रथमपुष्पवतीवस्त्रम् । प्रथमरजोदर्शने जाते तद्रसं चन्दुभिलोक्येयु प्रद-  
स्येत इति देशविशेषे आचारः । जारसंबन्धदृष्टशोभिताया अस्थानं संब्रमदर्शनेन जा-  
रस्य हास इति बोध्यम् ॥

शिशिरसमये अधरे मधुच्छिष्टं लापयन्तीं तरुणीं वीक्ष्य कोऽप्यात्मनो वैदग्ध्य-  
स्थापनायाह—

सपिअं सपिअं ललिअङ्गुलीअ मअणवड्ढलाअणमिसेण ।

वन्धेइ धवळवणवट्टअं व वणिआहरे तरुणी ॥ ५८ ॥

[शनकैः शनकैर्ललिताङ्गुल्या मदनपटलापनमिसेण ।

बध्नाति धनलव्रणपट्टेमिव व्रणिताधरे तरुणी ॥]

कापि कुलवधूत्सं शिक्षयितुं सखीमाह—

रइविरमलज्जिआओ अप्पत्तणिअंसणाओ सैहस व्व ।

ढक्कन्ति पिअअमालिङ्गणेण जहणं कुलवहूओ ॥ ५९ ॥

[रतिविरामलज्जिता अप्राप्तनियसनाः सैहसैव ।

आच्छादयन्ति प्रियतमालिङ्गनेन जघनं कुलवध्वः ॥]

कापि कस्याबित्तीभाग्यमन्यापदेशेनाह—

पाअडिअं सोहग्गं तम्वाए उअह गोट्टमज्झम्मि ।

दुट्टवसहस्स सिङ्गे अक्खिउडं कण्डुअन्तीए ॥ ६० ॥

[प्रकटित सौभाग्यं गता पश्यत गोष्ठमध्ये ।

दुष्टवृषमस शङ्गे अक्षिपुटं कण्डूयन्त्या ॥]

तम्या गौः ॥

जारप्रलोभनाय दूती कस्याधिरतत्पटतामाह—

उह संभमविकिखत्तं रमिअव्वअलेह्लायं असइए ।

णवरङ्गअं कुडङ्गे धअं व दिण्णं अबिणअस्स ॥ ६१ ॥

[पश्य संभ्रमविक्षिप्तं रेतव्यकलम्पटया असत्या ।

नररङ्गकं कुडङ्गे ध्वजमिव दत्तपविनयस ॥]

१. 'अङ्गुलीदि' ग. २. 'वणिआहरा' ख. ३. 'पट्टिकाभिव' घ. ४. 'व्रणिताधरा'  
ख-घ. ५. 'निअंसणा हसन्तीओ' क. ६. 'सहसति' ख-ग. ७. 'सहसेति' ग घ.  
८. 'पश्यत' क-ख पुस्तकयोर्नास्ति. ९. 'कण्डूयमानया' ग-घ. १०. 'रतिरङ्गलि-  
ग्धया' ग, 'रतिरङ्गलेह्लया' घ. ११. 'निकुभे' ग.

सुखानमिवादी चतुर्भ्यं वशी । पादपतनादिभ्यः सुखेभ्यो भटासीत्सर्पः । दर्शनमा-  
त्रेण प्रसन्ने इति मुग्धाविशेषणम् । 'रमसो वेगहर्षयो' इति कोप ॥

प्रणवकुपितां कान्तां कोऽपि प्रसादयितुमाह—

दे सुअणु पसिअ एहिं पुणो वि मुलहाईं रूसिअव्वाइ ।

'एसा मअच्छि मअलच्छणुज्जला गलइ छणराई ॥ ६६ ॥

[हे सुतनु प्रसन्नेदानीं पुनरपि सुखमानि रोपितव्यानि ।

एषा मृगाग्नि मृगान्ठनोज्वला गलति क्षणरात्रि ॥]

रोपितव्यानि रोषा । क्षणरात्रिस्तवरात्रि । 'दे मुहअ' इति पाठे 'हे सुभा' इ-  
त्यर्थः । तत्रान्योन्यगृहीतमानी प्रति दूतीविचनत्वेन व्याख्येयम् ॥

कान्तार्तायास्तस्याः प्रतीकारं कर्तुं त्वमेव शक्त इत्यन्यापदेशेन दूती कमप्याह—

आवण्णाईं छुलाईं दो विअ जाणन्ति उण्णइ णेउम् ।

गोरीअ हिअअदेइओ अहवा सालाहण्णरिन्दो ॥ ६७ ॥

[मापन्नानि कुलानि द्वाभेव जानीत उन्नतिं नेतुम् ।

गौर्या हृदयदयितोऽथवा शालिमाननरेन्द्र ॥]

आपन्नायापद प्राप्तानि । पक्षे अण्णानि । अण्णां पार्वती तत्सबन्धीनि ॥

विरमशीलकुटिलनाथिरामामासक्त कमप्यन्यापदेशेन निवर्तयितुं काचिदाह—

गिक्कण्ड दुरारोहं पुत्तअ मा पाडलिं समारुइसु ।

आरूडणिवडिआ के इमीअ ण कआ हुआसाए ॥ ६८ ॥

[निष्काण्डदुरारोहा पुनक मा पाटलिं सैमारोह ।

आरूडनिरतित के अनया न कृता हताशया ॥]

काण्ड स्फण्डोऽवतरथ । तच्छून्यवाटुरोहो दुराकमणोया प्रत्यशयहेतुसगमा च ॥

मामणोवनितासक्तो देवरो निवार्यतामित्यभिप्रायेण काव्यन्यापदेशेन श्वभूमाह—

गामणिघरम्मि अत्ता एक विअ पाडला इह गामे ।

बहुपाडलं च सीसं दिअरस्स ण सुन्दर एअम् ॥ ६९ ॥

[मामणिगृहे श्वभू एकैव पाटला इह ग्रामे ।

बहुपाटलं च शीर्षं देवरस्य न सुन्दरमेतत् ॥]

बहूनि पाटलानि पाटत्रिपुष्पानि यस्मिन्सत् ॥

१. 'णाहो' ग. २. 'निदध' क. ख., 'दुहान्ध' ग. ३. 'निदध' क. ख.

४. 'पाटला' घ. ५. 'समारुह' क. ख. ६. 'मात' ग.

भुजंगप्रलोभनाय दूती कस्याधि कृटाक्षतैक्ष्ण्य वर्णयति—

अण्णाणं वि होन्ति मुहं पम्हलधवल्लाइं दीहकसणाइं ।

णअणाइं सुन्दरीण तह वि हु दट्टु ण जाणन्ति ॥ ७० ॥

[अन्यासामपि मनन्ति मुखे पद्मलधवल्लानि दीर्घकृष्णानि ।

नयनानि सुन्दरीणा तथापि खलु द्रष्टु न जानन्ति ॥]

सहजा अधि गुणा भ्रूविलासादि वैदग्ध्य विना न शोभन्त इति भाव ॥

दण्डयाश्रोयतस्य राक्ष प्रतिपेधाय राजस्तुतिव्याजेन वर्षांशाल राज्ञो वर्णयति—

हमेहिं व तुह् रणजलअसमअभअचलिअनिहलवक्खोहिं ।

परिसेसिअपोम्मासेहिं माणसं गम्मइ रिज्जोहिं ॥ ७१ ॥

[हंसरिव तव रणजलदसमयमयचलितविहलपक्षै ।

परिशेषितपद्मागैर्मानस गम्यते रिपुभि ॥]

हे राजन्, तव रिपुभिर्मानस मन । तवैत्यर्थात् । गम्यतेऽऽवृत्त्यंते । त्वत्सेवया स्वी-  
यत इति यावत् । हसपक्षे मानस सरोविशेष । गम्यते प्राप्यते । वीदक्षै । रण एव ज-  
लदसमय तद्भयाचलिता पलायिता अत एव विहला पक्षा सहाया चेया तै । हस  
पक्षे—रगन्त शब्दायमाना ये जलदास्यद्भयाचलिता कम्पिता पक्षादुदा चेयाम् ।  
पुन वीदक्षै । परिशेषिता त्यक्ता पद्माया लक्ष्म्या । पक्षे—पद्माना कमलानामाशा यै ।

अनायाससाध्वमेव प्रार्थनीयमिति सद्यो शिक्षयितु काचिदाह —

दुग्गअचरम्मि घरिणी रक्खन्ती आउलत्तणं पट्ठो ।

पुच्छिअदोहलसद्धा पुणो वि उअअ विअ कहेइ ॥ ७२ ॥

[दुर्गंतगृहे गृहिणी रक्षन्ती आकुलत्व पत्सु ।

पृष्ठदोहदधद्धा पुनरप्युदकमेव कथयति ॥]

दुर्लभवस्तुप्रार्थनायामसौ व्याकुलो भविष्यतीति बुद्ध्या उदकमेव प्रार्थयत इत्यर्थ ॥  
ज्ञाता एव युवलो मीघ्मे रमयतीति वर्णय-कोऽपि वयस्यमाह—

आअम्मरलोभणाणं ओल्लंसुअपाअडोरुजहणाणम् ।

अवरह्मज्जिरीण कए ण कामो वैहइ चावम् ॥ ७३ ॥

[आताम्रलोचनानामार्द्रांशुकप्रकटोरुजघनानाम् ।

अपराह्मभजनशीलाना कृते न कामो वहति चापम् ॥]

आर्द्रांशुकेन प्रकटमूह जघन यासामित्यर्थ । ईदृगवस्थान युवतीनां रक्षणार्थमेव काम-  
थाप वहति । अन्यथा निरर्थकत्वात्त्यक्तमेव स्यादिति भाव ॥

कोऽपि वेद्यास्त्रीणां सकलव्यामोहकतां प्रतिपादयितुमाह—

के उच्चरिआ के इह ण खण्डिआ के ण लुत्तगुरुविहवा ।

णह्गइ वेसिणिओ गणनारेहा उव वहन्ति ॥ ७४ ॥

[के उर्वरिता के इह न खण्डिता के न लुत्तगुरुविभवा ।

नखराणि वेद्या गणनारेखा इय वहन्ति ॥]

के उर्वरिता वेद्याभिरनाहृता । के न खण्डिता । केषां व्रतखण्डन न कृतमित्यर्थ ।  
खराणि नखक्षतानि । 'नखरोऽस्त्रियाम्' इत्यमर । यद्वा—णहराद नखराणिम् । नख-  
त्पक्वमिति यावत् । कामुखदत्तनखक्षतपङ्क्तिव्यानेन के उर्वरिता इत्यादि गणनारेखा  
हतीत्यर्थ ॥

प्रवासादागत कात प्रति विरहदु स निवेदयितु कापि सर्वदग्धमाह—

विरहेण मन्दरेण व ह्रिअअ दुद्धोअहिं व महिऊण ।

उम्मूलिआइँ अव्वो अम्ह रअणाइँ व सुहाइ ॥ ७५ ॥

[विरहेण मन्दरेणैव हृदय दुग्धोदभिभिव मथित्वा ।

उम्मूलितानि कैष्टमस्त्राक रत्नानीन मुखानि ॥]

उम्मूलितानि दूरीकृतानि । अव्वो इति कष्टसूचकमन्वयम् । 'अव्वो ससुद्धिदु  
घ्नो' इति देशीरोप । लद्धिरइँ दु समेव केवल मयापुभूतमत परं मा विहाय न ग  
न्वमिति भाव ॥

पयु प्रियमेव सद्यदा कतव्यमिति वदतीं सखी कापि पर्युर्वदग्धमीर्ष्यां च  
सोद्वेगमाह—

उज्जुअरण ण तूसइ यक्कम्मिअि आअम विअप्पेइ ।

एत्थ अह्व्वाएँ मए पिअ पिअ कहँ णु काअव्वम् ॥ ७६ ॥

[ऋजुकरते न तुष्यति वक्त्रेऽप्यागम विकल्पयति ।

अत्राभव्यया मया प्रिये प्रिय कथं नु कर्तव्यम् ॥]

ऋजुके हावभावादिरहिते । वक्त्र हावभावमणितसीकृतदत्तक्षतनखक्षतसुम्बनासन  
विशेषादियुक्ते । कुतोऽनया शिक्षितमित्यागम विकल्पयति । 'आगम' इत्यस्य स्थाने  
आशय' इति कश्चित्पाठ ॥

रतिकौशलदर्शनेनान्यथाभावशङ्किन काचिदाह—

यहुविहवित्तासरसिए मुरए महिलारँ को उवज्जाओ ।

सिक्खइ असिक्खिआइँ वि सव्वो जेहाणुवन्धेण ॥ ७७ ॥

१ 'वेक्षिन्यो गणनारेखा उपवहन्ति' घ २ 'अहो ग घ.' ३ 'आशय घ.

[बहुविधविलासैरसिके सुरते महिलानां क उपाध्यायः ।

शिक्ष्यते अशिक्षितान्यपि सर्वः स्नेहानुबन्धेन ॥]

नायकसौन्दर्यं प्रकटयन्ती दूती नायिका प्ररोचयितुमाह—

वैष्णवसिए विअत्थसि सच्चं विअ सो तुए ण संभविओ ।

ण हु होन्ति तस्मि दिट्ठे सुरथावत्थाई अङ्गाई ॥ ७८ ॥

[वैष्णवशिते विकरथसे सत्यमेव स तस्या न संभावितः ।

न खलु भवन्ति तस्मिन्दृष्टे स्वस्थावस्थान्यङ्गानि ॥]

वर्णो गुणप्रवण तेन वशीकृते इति संबोधनम् । 'वर्णो द्विजादिशुद्धादियशोगुणकथ  
दिपु' इति मेदिनी । विकल्पसे मया दृष्ट इत्यारम्भश्चाथा कुर्ये । न संभावितो न दृष्टः  
अत्र हेतुमाह—न ललितेति । स्वस्थावस्थानि न भवन्ति, किं तु स्वेदकम्परोमावजृम्भ  
रुभङ्गमोशयितादिभावाङ्गानि भवन्तीत्यर्थः ॥

• अग्निवविषयानुरक्तं. पूर्वाङ्गभूतमवधोरयतीति निदर्शयन्तेऽपि वक्ष्यते—

आसण्णविआहृदिणे अहिणववहुसंगमस्सुअमणस्स ।

पढमचरिणीअ सुरअ वरस्स हिअए ण संठाइ ॥ ७९ ॥

[आसन्नविवाहदिने अग्निववधूसंगमोलुकमनसः ।

प्रथमगृहिण्या. सुरतं वरस हृदये न सतिष्ठते ॥]

अतिमदनाफान्तहृदयः कोऽपि दोष जानन्नपि रागीत्वव्याप्रेयस्या सहचरीमाह—

जइ लोकणिन्दिअं जइ अमङ्गलं जइ विमुक्कमज्जाअम् ।

पुप्फवइदंसणं तंहवि देई हिअअस्स णिब्बाणम् ॥ ८० ॥

[यदि लोकनिन्दितं यद्यमङ्गलं यदि विमुक्तमर्थादम् ।

पुष्पवतीदर्शनं तेषापि ददाति हृदयस्य निर्माणम् ॥]

निर्वाणं सुतम् ॥

पुष्पवतीस्पर्शादुद्विजमान कान्त कापि सविनयोपालम्भनाह—

जइ ण छिवसि पुप्फवइं पुरओ ता कीस वारिओ ठासि ।

छित्तोसि चुलचुलन्तेहिं धाविउण अम्ह इत्थेहिं ॥ ८१ ॥

१. 'रमिते' ग. २. 'एष्णरसिए' ग. ३. 'सचरिओ' ग. ४. 'अरप्परसिके' ग.  
५. 'एचरित.' ग. ६. 'स्वस्थान्यङ्गानि' ग. ७. 'दिपेसु णव' ग. ८. 'दिनेपु नव' ग.  
९. 'दद सइवि देः हिअअग्नि' ग. १०. 'तव तेषापि ददाति हृदये' ग. 'तव तेषपि  
मम ददाति हृदये—'घ.

[यदि न स्पृशति पुष्पवतीं पुरतस्तत्किमिति वारितस्तिष्ठति ।

स्पृशेऽसि चुलचुलायमानैर्धावित्वास्माकं हस्तैः ॥]

चुलचुलेलनुकरणमुत्कण्ठातिशयसूचकम् । कण्ठ्यमानैरिस्वथं ॥

नायिकाया विप्रलम्भावस्थाकथनेन नायकापरार्थं प्रकटयन्ती दूती नायकमाह—

उज्जागरअकसाइअगुरुअच्छी मोहमण्डणविलकखा ।

लज्जइ लज्जालुइणी सा सुहअ सहीहिं वि बराई ॥ ८२ ॥

[उज्जागाककपायितगुरुकाक्षी मोषमण्डनविलक्षा ।

लज्जते लज्जाशीला सा सुमग सैखीम्योऽपि वराकी ॥]

उज्जागरेण कपायिते गुरुके अक्षिणी बस्या । मोषेन निरर्थकेन मण्डनेन विलक्षा ॥

गर्भभरेण क्लाम्यन्ती सखीं सखीं तपरिहासमाह—

ण वि तह अइगरुएण वि तम्मइ हिअए भरेण गब्भरस्त ।

अह विपरीअणिहुअणं पिअम्मि सोह्वा अपावन्ती ॥ ८३ ॥

[नैपि तथातिगुरुकेणापि ताप्यति हृदये भरेण गर्भस ।

यथा विपरीतनिर्धुवनं मिथे स्तुषा अग्रामुवती ॥]

गर्भिणीपीवरादीनां विपरीतदुरतस्य निपिद्धत्वादिति भावः ॥

नायिकानुरागप्रकाशनेन दूती नायकमुत्कण्ठयितुमाह—

अगणिअजणाववाअं अवहत्थिअगुरुअणं बराईए ।

तुह गलिअदंसणाए तीए बलिउण चिरं रुण्णम् ॥ ८४ ॥

[अगणितजनापवादमपहस्तितगुरुजनं वराक्या ।

तथा गलितदर्शनया तथा धैलित्या चिर रुदितम् ॥]

वादान्त जनान्तं च कियाविशेषणम् ॥

प्रोषितपतिका, त'सखी वा लेखमुखेन नायकमाह—

हिअअं हिअए णिहिअं चित्तालिहिअ व्य तुह सुहे दिट्ठी ।

आलिङ्गणरहिआइं णवरं खिज्जन्ति अङ्गाइं ॥ ८५ ॥

१. 'लम्बावती' घ. २. 'सखीनां' घ. ३. 'नैव' ग. ४. 'पुरत' क. ख. ५. 'प्रियमपि' ग. ६. 'दर्शनाशया' क. ख. ७. 'चलित्वा' घ. ८. 'दुहिमाह' ग.

[हृदयं हृदये निहित चित्रालिखितेव तव मुखे दृष्टिः ।  
आलिङ्गनरहितानि केवलं क्षीयन्तेऽङ्गानि ॥]

‘आलिङ्गनदुहिआश्’ इति पाठे आलिङ्गनं विना दुःखितानीत्यर्थः ॥

काचिदतिविरहदुःखिता मुक्ता सखीमाह—

अहं विभोअतणुई दुसहो विरहाणलो चलं जीअम् ।

अप्पाहिज्जउ किं सदि जाणसि तं चेव जं जुत्तम् ॥ ८६ ॥

[अहं वियोगतन्वी दुःसहो विरहानलथलं जीवम् ।

अभिधीयतां किं सखि जानासि त्वमेव यद्युक्तम् ॥]

प्रियानयनमेव युक्तमिति भावः ॥

कलहान्तरेताया नायिकाया विरहदुःखं प्रतिपादयन्ती दूरी नायकमाह—

तुह विरहुज्जागरओ सिविणे वि ण देइ दंसणमुहाइं ।

वाहेण जहालोअणविणोअणं से हअं तं पि ॥ ८७ ॥

[तव विरहो जागरकः सन्नेऽपि न ददाति दर्शनमुखानि ।

बाष्पेण यदालोकनविनोदनं तस्माद्दृश्यते तदपि ॥]

अनुरक्त कान्तं कापि सोपालम्भमाह—

अण्णावराहकुविओ जहतह कालेण गम्मइ पसाअम् ।

वेसत्तणावराहे कुविअं कहँ तं पसाइस्सम् ॥ ८८ ॥

[अन्यापराधकृपितो यथातथा कालेन गच्छति प्रसादम् ।

द्वेष्यत्वापराधे कृपितं कथं तं प्रसाददिष्यामि ॥]

अन्य आहास्यगुणरूपो योऽपराधस्तेन कृपितः । द्वेष्यत्व सहाजिको द्वेषस्तद्  
वेऽपराधे ॥

अहृदयप्रचारिणं प्रियवादिनं नायकं कापि सोपालम्भमाह—

दीससि पिआणि जम्पसि सअभावो सुहअ एत्तिअ व्वेअ ।

फालेइऊण हिअअं साहसु को दावए कस्स ॥ ८९ ॥

१. ‘दुःखितानि’ ग-घ. २. ‘सदिश्यता’ ग, ‘आदिश्यता’ घ. ३. ‘विरहे जागरण’  
ग. ४. ‘अवलोकनं’ क-ख. ५. ‘अपि तस्मात्कृतं तद्’ ग. ६. ‘गम्यते’ घ. ७. ‘प्रसाद-  
विष्ये’ ग-घ. ८. ‘अणसि’ क-ख.



[दृश्यसे प्रियाणि जल्पसि सद्भावः मुनम एतावानेव ।

पौटयित्वा हृदयं कैयय को दर्शयति कस्य ॥]

तवाकृतिवचनादिकमतिमधुरम्, हृदय तु कालकूटघटितमिवेति भावः ॥

काव्यस्थिरश्लेहं पनिमुपालब्धुमन्यापदेशेनाह—

उज्ज्वलं लङ्घिषण उच्चाणिआणणा होन्ति के वि सविसेसम् ।

रिक्ता गमन्ति सुहरं रहट्टघडिअ व्व कापुरिसा ॥ ९० ॥

[उदकं लब्ध्वा उच्चानितानना भवन्ति केऽपि सविशेषम् ।

रिक्ता गमन्ति सुचिरं रहट्ट(अरघट्ट)घटिका इव कापुराः ॥]

रश्मे पटीयन्त्रं तासंबन्धिनः धुरा घटा इव । उक्तं च—‘जीवनघटने नमा गृहीत्वा  
उपगतताः । किं कनिष्ठाः किमु ज्वेष्ठा घटीयन्त्रस्य दुर्जनाः ॥’ इति ॥

सुधामधुरमयूखमाण्डलीधवलिते दिष्टुले प्रियसंगममलभमानान्वकाराभिसारिका  
मोदित स्वगतमाह—

भगपिअसंगमं केत्तिअं व जोह्वाजलं णहसरम्मि ।

चैन्दअरपणालणिअसरणियहपडन्तं ण णिट्टाइ ॥ ९१ ॥

[ममप्रियसंगमो कियदिय ज्योत्स्नाजलं नमःसरति ।

चन्द्रकरप्रणालनिर्झरनिवहर्पतर्जं निस्तिष्ठति ॥]

मम प्रियसंगमो येन तद् । तथा चन्द्रकर एव प्रणालनिर्झरनिवहास्तेभ्यः पतन्  
न शेष तिष्ठति । न समाप्नोतीत्यर्थः ॥

कापिकादरागं सूचयन्ती दूती नायकमाह—

सुन्दरजुआणजणसंहुले वि तुह् दंसणं विमग्गन्ती ।

रण्ण व्व भमइ दिट्ठी चराइआए समुच्चिअगा ॥ ९२ ॥

[सुन्दरखुवर्जनसंकुलेऽपि तव दर्शनं विमूर्धयन्ती ।

अरण्य इव भ्रमति दृष्टिर्वरकिवायाः समुद्रिणा ॥]

ययारण्ये शून्यप्रदेशे कमपि न पश्यति तथा त्वद्गतचित्ता सतीऽपि बहून्युतो न प-  
श्यति किं तु स्वामेवोद्गीयत इति भावः । ‘अशुभ्रिष्णा’ इति पाठे त्वदर्शनकौतुकाद्-  
गणितश्लेख्यर्थः ॥

१. ‘भगति’ घ. २. ‘पालयित्वा’ घ. ३. ‘निजदृश्यं’ ग. ४. ‘संग’ घ. ५. ‘इसी  
दर्शयति’ क. ग. ६. ‘हृदपटिका’ घ. ७. ‘पतन्तं’ ग. घ. ८. ‘न निर्वसि’ ग,  
‘न तिष्ठति’ घ. ९. ‘घट्टे’ ग. १०. ‘विमार्गमणा’ ग.

प्रोपितपतिक्रिया विरहावस्था सखी तरकान्तसमीपगामिन पथिकमाह—

अङ्कोपणा वि सासू रुआविजा गअवईअ सोह्लाए ।

पाअपडणोण्णआए दोसु वि गलिएसु वलएसु ॥ ९३ ॥

[अतिकोपनापि अश्रू रोदिता गतपतिक्रिया स्तुपया ।

पादपतनावनतया द्वयोरपि गलितयोर्नलययो ॥]

द्वयोर्मुनद्वयविधृतयो । पलययोरिति सतिसतमी । एवमिय मत्पुत्रकृते कृशा जात येनानया मत्पादवन्दनावनतया वलयप्राप्तोऽपि न ज्ञात इत्याद्येक्य निष्टुगपि यधूरतो दीदिति भ व ॥

प्रवासोद्यतस्य कांतस्य गमननिषेधाय प्रीप्मातरस्य दुःसहत्व कापि वणयति—

रोवन्ति व्व अरण्णे दूसहरइकिरणफससतत्ता ।

अइतारझिल्लिविरुएहि पाअवा गिम्हमञ्जङ्गे ॥ ९४ ॥

[रुदन्तीमारण्ये दुःसहरविकिरणस्पर्शसतता ।

अतितारशिल्लीविरुते पादपा त्रीष्ममध्याहे ॥]

चित्नी 'शौगुर' इति वान्यकुञ्चभापया प्रतिद्व कीटनिषेध । अचेतनात् पादपाना मपीयमवस्था किं पुनश्चेतनानामिति भाव । यद्वा सकेतवनोत्पत्ते लोकागम शङ्कमान कांत प्रत्यभिसारिकाया इयमुक्ति । नाय ननचरणसचरणवलिपत्रचकनि, किंतु चित्रे ध्वनिरिति नि शङ्क रमस्वेति भाव ॥

सकेतितसरस्तीरमह गता, त्व तु न गत, इति जात भावयन्ती कापि कमलवनवण नच्छलेन सखीमाह—

पडमणिलीणमधुरमधुलोहलालिउलवद्वझकारम् ।

अहिमअरकिरणणिउरम्बचुम्भिअ दलइ कमलवणम् ॥ ९५ ॥

[प्रथमनिलीनमधुरमधुलुब्धालिकुलवद्वझकारम् ।

अहिमअरकिरणनिकुम्बचुम्भित दलति कमलवनम् ॥]

प्रथमनिलीनेन मधुरमधुलुब्धेनात्किलेन यद्धो शकारो यत्र तत् । पाठान्तरे प्रथमनिलीनमधुकरीडुब्धेलाध । तत्र प्रथमनिलीनेति मधुकरीविशेषणम् । सुप्तस्य रात्र प्रबोधनाय वैसात्रिनस्येद वचनमिति केचित् । सांभ्यो विधिरनुष्टीयतामिति, सुरभयो मुच्यन्तामिति, विक्रेयवस्तूनि प्रसार्यन्तामिति, नास्तीदानीं पिशाचादिभयमिति, पथिक प्रतिष्ठवेत्यादि प्रस्तावदेशकालादिभेदात्पुनरनेकविधो व्यङ्ग्योऽयं सद्दर्थे स्वयमूहनीय ॥

मानिनीमानापनोदाय नायक प्रेरयितुं दूती नायकसहचरमाह—

गोत्तकखलणं सोऽङ्ग पिअअमे अज्ज तीअ खणदिअहे ।

वञ्जमहिस्स माल व्व मण्डण उअह पडिहाइ ॥ ९६ ॥

[गोत्रस्खलनं श्रुत्वा प्रियतमे अद्य तस्या क्षणदिग्से ।

वध्यमहिषस्य मालेन मण्डनं पश्यत प्रतिभाति ॥]

श्रुत्वेत्यनन्तरं स्थिताया इति शेषः । क्षणदिवसे उत्तरदिवसे । वध्येति देव्यै उपहा-  
रं वनकल्पितस्य महिषस्य कृतमपि मण्डनं यथासन्नमरणतया न शोभते तथा अस्या अ-  
पीत्यर्थः । तथा च यावदभिमानेन न श्रियते तद्यदेव शीघ्रमनुनीयताभियमिति भावः ॥

वापि वान्तानयनाय सर्त्ती त्वरयितुमात्मनो दुःसहा विरहावस्थामाह—

महमहइ मलअवाओ अत्ता चारेइ मं घराणेन्तीम् ।

अङ्कोटपरिमलेण विजो क्खु मओ सो मओ व्वेअ ॥ ९७ ॥

[महमहायते मलयवातं श्वधूर्नारयति श्वधूर्नार्यान्तीम् ।

अङ्कोटपरिमलेनापि यं खलु मृतं सन्तु ख्यम् ॥]

महमहायते अतिशौरभमुद्ब्रह्मतीत्यर्थः । अङ्कोटेति । अङ्कोटो गृहवाटिकायामेव प्रा-  
यशो भवतीति प्रतिदि । अयमाशयः—सुरभिमलयमाहृतस्पर्शोद्दीपितविषमविदमवाण-  
वाणभित्तहृदमाहृदयस्फोटेन विनङ्गयतीति समाख्यं श्वधूर्मां बहिर्गन्तुं न ददाति । निमे  
तावता । गृहस्थिताङ्कोटगन्धेनाप्यहं मरिष्याम्येवेति । 'अङ्कोटे तु निरोचन' इत्यमरः ॥

कस्यचिदभियोगनिरासार्थं दूतीं दपत्यो परस्परानुरागमाह—

सुहपेनेओ पई से सा वि हु सविसैसदंसणुम्मइआ ।

दोवि कअत्था पुहइं अमहिलपुरिस य मण्णन्ति ॥ ९८ ॥

[मुखप्रेदानं पतिस्तस्या सौपि खलु सविशेषदर्शनो मत्ता ।

द्वानपि वृत्तार्थं पृथिवीममहिलापुरुषामिदं मन्येते ॥]

श्रीरितपतिरा काचित्कयापि क्षेमं पृथा तामाह—

सेम कन्तो सेमं जो सो खुज्जम्पओ घरदारे ।

तस्स किल मत्थजाओ को वि अणत्थो समुप्पण्णो ॥ ९९ ॥

[क्षेमं श्रुतं क्षेमं योऽमी कुञ्जाग्रको गृहद्वारे ।

तस्य किल मत्सकात्कोऽप्यनर्थं समुत्पन्नं ॥]

अनर्थो सुपुत्रः । वसन्तरालं संप्राप्त इति भावः ॥

१. 'माता' ग. २. 'वेच्छितो' ग. ३. 'सावि च' ग. ४. 'दर्शनान्मत्ता' ग,  
'दर्शनोन्मारिता' घ.



[एहीति व्याहरति प्रियतमे पश्यतावनतमुख्या ।

द्विगुणावेष्टितमघनस्यलया लज्जावनतं हसितम् ॥

कोऽपि युवलाः कटाक्षवर्णनेन साभिलाप प्रकाशयन्नाह—

मारसि कं ण मुद्धे इमेण रैत्तन्ततिक्खरविस्समेण ।

मुलआचावविणिग्गअतिक्खरअरद्धच्छिभहेण ॥ ४ ॥

[मारसि कं न मुग्धे अनेन रैत्तन्ततीक्ष्णनिपमेण ।

मूलताचापमिनिर्गततीक्ष्णतरुर्धाक्षिमहेन ॥]

मल्ल. काण्डभेदः । 'रत्तन्ततिक्ख' इति स्थाने 'पेरन्तरत्त' इति क्वचित्पाठः । तत्र 'पर्यन्तरत्त' इत्यर्थः ।

नायिकाया अनुरागातिशय प्रकाशयन्ती इती जारमाह—

तुह दंसणे सअहा सइं सोऊण गिम्गदा जाइं ।

तइ वोलीणे ताइं पआइं वोढव्विआ जाआ ॥ ५ ॥

[तय दर्शने सतृष्णा शब्द श्रुत्वा निर्गता यानि ।

त्वयि व्यतिक्रान्ते तानि पदानि वोढव्या जाता ॥]

शब्दं तव वचनम् । त्वदर्शनोत्साहेन गमनावसरेऽज्ञातज्ञेशा त्वयि नेत्रपथातीते पुनर्ग-  
तजीवितेव परसंवाहा जातेत्यर्थः ॥

निमित्येव कृशासीति श्रुत्वा कापि मातुलानीमाह—

ईसामच्छररहिण्हिं गिदि मार्गं रेहिं मामि अच्छीहिं ।

एहिं जणो जणम्मिअ गिरिच्छण कइं ण छिंजामो ॥ ६ ॥

[ईर्ष्यामत्सररहिताभ्या निर्विकाराभ्या मातुलान्यक्षिभ्याम् ।

इदानीं जनो जनमिव निरीक्षते कथं न क्षीयामहे ॥]

जनः प्रियः । जनमिव साधारणमिव । निरीक्षते अलानिति शेषः । ईर्ष्यामत्सरभू-

भङ्गादिमनुरागशापकमिति तदभावात्क्षीणास्तीति भावः ॥

दुहितुः किञ्चिदपि सौभाग्यसूचक मातरं तोषयतीति कापि कस्यचिच्छिडशार्थमाह—

वाउद्धअसिअविहाविओरुदिट्ठेण दन्तमग्गेण ।

वहुमाआ तोसिअइं गिहाणकलसस्स व मुहेण ॥ ७ ॥

[वातोद्धतसिचयविभावितोरुद्धेन दन्तमार्गेण ।

वधूमाता तोष्यते निधानकलशसेव मुखेन ॥]

१. 'पेरन्तरत्त' ख. २. 'पर्यन्तरत्त' घ. ३. 'खिजामो' क. ४. 'मातुलि' घ.

५. 'तुष्यति' ग.

दन्तमार्गेण-दन्तक्षतेन । ऊरुप्रदेशे दन्तनखघातादयः सुरते कर्तव्या इति व  
मनुजयेदमुक्तम् ॥

काप्यात्मन इर्ष्यादोष परिहरती स्नेहानुत्पत्त्यर्थं वल्गुभगाह—

हिअअम्मि वससि ण करेसि मण्णुअ तह वि णेहभरिएहिं  
सद्धिज्जसि जुअइसुहावगलिअधीरेहिं अम्हेहिं ॥ ८ ॥

[हृदये वससि न करोषि मन्यु तथापि स्नेहभृताभि ।

शङ्कसे युवतिस्वभाजगलितधैर्याभिरस्त्राभि ॥]

यद्यपीदानीं क्रिहसि तथाप्यग्रे विरस्यस इति मनसि चशयो भयतीति भाव  
कापि कस्मिन्नपि युनि जाताभिशापा तस्य भार्यापारतन्त्र्य सूचयन्ती  
सनिर्वेदमाह—

अण्ण पि किं पि पाविहिसि मूढ मा तम्म दुक्खमेत्तेण ।

हिअअ पराहीणजण मग्गेन्त तुह केत्तिअ एअम् ॥ ९ ॥

[अव्यदपि किमपि प्राप्स्यसि मूढ मा ताम्य दुःखमात्रेण ।

हृदय पराधीनतन सृगयमाण तव क्रियमात्रमिदम् ॥]

किमपीति । प्रियविप्रयोगवच्छरीरवियोगमपि प्राप्स्यसीत्यर्थः । मरणस्य पदा-  
पादानममङ्गलदाप्यश्रीलावहमिति किमपी युक्तम् ॥

कान्तस्त्रान्यस्यामनुरागम्, तस्याश्च तस्मिन्द्वेषम्, आत्मनश्च तस्मिन्नुरागम्  
चात्मनि द्वेषं सूचयन्ती कापि नायम्माह—

वेसोसि जीअ पसुल अहिअ <sup>वजाणे</sup> चहभा तुज्ज ।

इअ जाणिऊण वि मए ण ईसिअ दड्डुपेम्मस्त ॥ १० ॥

[द्वेष्योऽसि र्यस्या पासुल अधिकतर सा खलु वहम् तव ।

इति ज्ञात्वापि मया न ईर्ष्यित दग्धप्रेम्ण ॥]

चतुर्थमर्थं पठौ । प्रेम्णे इत्यर्थः । अयमाशयः—अवगत मया यो यस्त्वा द्वेषि  
तव प्रियः । यथा मत्सपत्नी । मया तु त्वप्यनुरक्त्या कथं प्रियया भवितव्यं  
प्रेम्णे कथं नेर्ष्या न कृतेति । यद्वा प्रम्ण इति पद्यनी । ईपतमेति तुभ्यमिति  
प्रेमवशाद्द्वेषो न कृत इत्यर्थः । विक्रीपतापीर्ष्यां प्रेम्णा प्रतिवन्धात् निष्पन्नेति भा  
अपरां निपुणा प्रेयसीं सुवन्तं वातं कापि सेर्ष्यमाह—

सा आम सुहअ गुणरूअसोहिरी आम णिग्गुणा अ अहम् ।

भण सीअ जो ण सरिसो किं सो सव्वो जणो मरउ ॥ ११ ॥

१ 'स्नेहयते' क ख. २ 'धैर्यं' क ख. ३ 'कसयमान तव क्रियदेत'  
'इच्छन् तव क्रियदेतत्' घ. ४. 'जीव' घ

[सा सैत्यं सुभग गुणरूपशोभनशीला सैत्यं निर्गुणा चाहम् ।

भण तस्या यो न सदृशः किं च सर्वो जनो म्रियताम् ॥]

आमेति सेध्यानुमतौ । सत्यमित्यर्थः । अत्र विपरीतलक्षणया रागान्वस्त्व गुणरूपा-

दिकं विवेक्तुमेव न जानासि । यतोऽधमामपि तां बहु मन्यस इति व्यज्यते ॥

दुर्लभाभिलाषिणीं स्वगृहवधू प्रति वैराग्यजननार्थं कोऽपि पुत्रमाह—

सन्तमसन्तं दुःखं सुहं च जाओ घरस्स जाणन्ति ।

ता पुत्तअ महिलाओ सेसाओ जरा मनुस्साणम् ॥ १२ ॥

[सदसदुःखं सुखं च या गृहस्य जानन्ति ।

ता पुत्रक महिलाः शेषा जरा मनुष्याणम् ॥]

गृहस्य गृहपते । सद्विद्यमानम् । असदविद्यमानम् । यद्विचिती शेषः । यथा सुखं  
दुःखं च या जानन्ति ता महिला गृहिणीपदाधिपारिण्यः । अन्यास्तु जरा. क्षयहेतु-  
तादित्यर्थः ॥

वापि सग्याः शिक्षार्थं कुलवधूवृत्तमाह—

हसिएहि उवांलम्भा अणुवचारेहि रिज्जिअव्वाइं ।

अंसूहिं मण्डणाइं एसो मग्गो सुमहिलाणम् ॥ १३ ॥

[इमितैरुपालम्भा अत्युपचारैः खेदितव्यानि ।

अधुभिः कलहा एव मार्गं. सुमहिलानाम् ॥]

हसितैर्न तु रोदने, उपचारैर्न तु गृहकृत्यपरिहासेन, अधुभिर्न तु वचोभिरिति भावः ॥

जनापवादभयादकृतसभापणे प्रेयसलमुद्वेगेनेति वदन्ती दूर्गा कापि सप्रणयरो-

पमाह—

उल्लापो मा दिज्जउ लोअविरुद्ध चि णाम क्काऊण ।

सँमुहापडिण को उण वेसें वि दिट्ठिं ण पाडेइ ॥ १४ ॥

[उल्लापो ना दीयतां लोकविरुद्ध इति नाम कृत्वा ।

संमुखापत्तिते कः पुनर्द्वेष्येऽपि दृष्टिं न पातयति ॥]

लोकविरुद्ध इति कृत्वा उल्लापो मा दीयतां नामेत्यन्वयः । नाम कृत्वा नामग्रहण-  
पूर्वकमिति वार्थः । यद्वा परपुरुषसंभाषण लोकविरुद्धमिति मा कियताम्, कथं पुनस्त-

मद्राशीरपि नेति ताभ्यं प्रति बुद्ध्या इयमुक्तिः ॥

अतिक्रान्तसमेतसमया प्रिया प्रति कोऽपि सोद्वेगमाह—

साहीणपिअमो दुग्गओ वि मण्णइ कअत्थमप्पाणम् ।

पिअरहिओ उण पुहविं वि पाविउण दुग्गओ वेअ ॥ १५ ॥

[स्वाधीनप्रियतमो दुर्गतोऽपि मन्यते कृतार्थमात्मानम् ।

प्रियैरहित पुन पृथिवीमपि प्राप्य दुर्गत एव ॥]

स्वाधीना प्रियतमा यस्येति बहुब्रुहि । यद्वा किमेव वृशोऽसीति पृष्टस्येच्छानुरूपं  
प्रियामलभमानस्य कस्वविदियमुक्तिः ॥

वामप्यप्राप्तप्रियतमा लोभयाद्दृश्यस्थित श्लेह गोपायन्तीं सख्याह—

किं ह्वसि किं अ सोअसि किं कुप्पसि सुअणु एक्कमेक्कस्स ।

पेम्म विस व विसम साहसु को रुन्धिउ तरइ ॥ १६ ॥

[किं रोदिपि किं च शोचति किं कुप्यसि सुतनु ऐकैकस्मै ।

प्रेम विषमिन् विषम कथय को रोदु शक्नोति ॥]

प्रेमवशाद्दुःखिता भवति, वृथास्मा प्रति कोप मा कृया इति भावः ॥

अनभ्युपगच्छतीमभियोज्यामन्नीकारवित्तु इती खानुभूतानामेवार्थानामनिलता  
माह—

से अ जुआणा ता गामसपआ त च अम्ह वारुण्णम् ।

अकराणअ व लोओ कहेहि अम्हे वि त सुणिमो ॥ १७ ॥

[ते च सुवानस्ता ग्रामसपदस्त्रियास्काक तारुण्यम् ।

आख्यानकमिव लोक कथयति वयमपि तच्छृणुम ॥]

सदेवमनिले सप्तारे तथाविधविदग्धवद्भ्रमसमागमसुख विमिति परिहरतीति भावः ॥

कातेन सशपथमनुनीयमानाया कान्त प्रत्युद्वेगवाद सखीं सखीमाह—

वाहौहभरिअगण्ढाहराएँ भणिअ विलकरइसिरीए ।

अज्ज वि किं रूसिज्जइ सवहावस्य गअ पेम्मम् ॥ १८ ॥

[वाग्धौघर्भृतगण्ढाधरया भणित विलक्षहसनशीलया ।

अद्यापि किं रूप्यते शपथावस्थां गतं प्रेम ॥]

'प्रियारहित' ग २ 'प्राप्तो' घ ३ 'किंसासि' ग ४. 'किं कुपासि' ग.  
'क्कस्स' घ ६ 'वादोत्पुनरेअ' ग ७ 'वाग्धौहस्फुरित' ग ८. 'भरित' घ  
'अक्ष हसस्या' ग.



'बाहोःपुरिअगण्डाहराए' इति पाठे 'वाष्पाद्रैःपुरितगण्डाधरया' इत्यर्थः । शपथेति ।  
केवलं शपथेनैव प्रेम वर्तते इति ज्ञायते, न त्वनुभूयत इति भावः ॥

प्रियस्य मन्दब्रेहता सूचयन्ती सखी तनिर्वेदं सखीमाह—

वण्णअघअलिप्पमुहिं जो मं अइआअरेण चुम्बन्तो ।

एहिं सो भूत्तणभूसिअं पि अलसाअइ छिचन्तो ॥ १९ ॥

[वर्ण[क]घृतलित्तमुखीं यो मामत्यादरेण चुम्बन् ।

इदानीं स भूषणभूषितामप्यलसायते स्पृशन् ॥]

पूर्वं पुष्पयतीमपि मामत्यादरेण योऽऽप्राक्षीत्स इदानीं शुद्धामपि मा स्पृशत्यपि  
नेत्यर्थः ॥

कस्याधिन्मलिनवस्त्रतादोषं परिहरन्ती इती वस्त्रस्य रतानुपयोगित्वमाह—

णीलपडवाडअङ्गी त्ति मा हु थं परिहरिज्जासु ।

पट्टंसुअं पि णद्धं रअम्मि अवणिज्जइ खेअ ॥ २० ॥

[नीलपटप्रावृताङ्गीति मा खल्वेना परिहर ।

पट्टांशुकमपि नद्धं रतेऽपनीयत एव ॥]

नद्ध परिहितम् । तद्वज्रो गुणं व्रीणामुपादेश, न त्वाहायं इति भावः ॥

अतिमाने दोषं प्रदर्शयन्ती इती मानिनीमनुनेतुमाह—

सच्चं कलहे कलहे सुरआरम्भा पुणो णवा होन्ति ।

माणो उण माणंसिणि गरुओ पेम्मं विणासेइ ॥ २१ ॥

[सत्यं कलहे कलहे सुरतारम्भा. पुनर्नवा भवन्ति ।

मानः पुनर्मानस्विनि गुरुक प्रेम विनाशयति ॥]

कलहान्तरभाविति सुरते यद्यपि रसविशेषो लभ्यते तथाप्यतिमानेन प्रेमिण्य गते  
सि सुरतेनेति मुद्य मानमिति भावः ॥

अगृहीतानुनयवितक्षेण प्रियेणावधीरिता कलहान्तरिता सादुतां दृष्टीमाह—

माणुम्मत्ताइ मए अकारणं कारणं कुणन्तीए ।

अहंसणेण पेम्मं विणासिअं पोढवाएण ॥ २२ ॥

[मानोन्मत्तया मया अकारणं कारणं कुर्वत्या ।

अदर्शनेन प्रेम विनाशितं प्रौढवादेन ॥]

अकारणमिति । अदोषमेव दोषं कल्पयन्त्येत्यर्थः । माननिमित्त विनिवाप्रहेण निमित्तं सपाद्य मानं विदधत्वा मयानुनयन्नपि प्रियो नावलोभित सप्रत्यक्षनिर्वाणैश्च एव मतः ।  
कथं तद्दर्शनं भवतीति भावः । श्रौतवाद् सप्रतिश्रुत्याद्यायानम् ॥

श्रुतापराधमनुनयन्त कापि मन्त्राहपालम्भमाह—

अणुऊलं विअ घोत्तु बहु बहह बहहे वि वेसे वि ।

कुविअं अ पसाएउं सिक्खइ लोओ तुमाहित्तो ॥ १३ ॥

[अनुकूलमेव वक्तु बहुबहम बहभेऽपि द्वेष्येऽपि ।

कुपितं च प्रसादयितुं शिक्षिते लोको युष्मत् ॥]

सर्वमिदं तव हृदयवाह्यमित्यर्थः ॥

मन्दब्रह्मस्य शान्तव्याकृतश्रुतां सूचयन्ती कापि सखीनाह—

लज्जा चत्ता सील अ खण्डित्तं अजसणीसणा दिण्णा ।

जस्स कए णं पिअसहि सो खेअ जणो जाओ ॥ १४ ॥

[लज्जा त्यक्त्वा शीघ्रं च खण्डितमयशोघोषणा दत्ता ।

यस्य कृतेन (कृते ननु) प्रियमखि न एव जनो जनी जान. ॥]

जनो वत्तम । जन उदासीनो जातः ॥

कापि सखाः शिक्षार्थं कुलप्रभूषणमाह—

हमिअं अदिट्ठदन्तं भमिअमणिषन्तदेहलीदेसम् ।

दिट्ठमणुक्खित्तमुहं एसो मग्गो कुलप्रभूणम् ॥ २५ ॥

[हसितमदृष्टदन्तं जनिममनिप्रान्तदेहलीदेसम् ।

दृष्टमनुत्थितसमुत्थमेव मार्गं कुलप्रभूणाम् ॥]

निःपरिच्छदतया केनापि विन्दमानस्य नायकस्यान्यापदेशेन गुणातिशयं कृती ना-  
दिशामनुकूलयितुमाह—

धूलिमइलो पि पट्टद्धिओ वि तणरइअदेहभरणो वि ।

तह वि गैहन्ट्रो गरुअत्तणेण टक्क समुव्वहइ ॥ २६ ॥

[धूलिमग्निोऽपि पद्माद्वितोऽपि कृपारचितदेहभरणोऽपि ।

तथापि गैहन्ट्रो गुरुकृतेन टक्का समुद्रहति ॥]

तस्यैव परं यशोद्विगिम्भ इति भावः । भरणं पोषणम् । गुरुत्वं परिमाणरिषेव इ-  
त्यर्थः ॥

विपद्यपि महतामुन्नतचित्तत्वमेवेति सर्वा शिक्षयितुं वापि सुभटत्रियाद्यौरेण सहो-  
क्तिप्रत्युक्तिकौशलमाह—

करमरि क्रीस ण गम्सइ को गळ्वो जेण मसिणगमणासि ।

अहिद्वदन्तहसिरीअ जम्पिअं चोरजाणिहिसि ॥ २७ ॥

[वेन्दि किमिति न गम्यते को गवों येन मसुणगमनासि ।

अद्वदन्तहसनशीलया जल्पितं चोर ज्ञात्वासि ॥]

करमरी हठहृतमहिला । यमनासीत्यनन्तरमिति चौरिणोक्ते सतीति शेषः । शास-  
धीति । मम प्रिय आगच्छति शण्डिवास्यादिनयस्य फलमनुभविष्यतीति भावः । 'अ-  
दिद्व' इति स्थाने 'दरदिद्व' इति क्वचित्पाठः । तत्र 'इपद्वदन्तहसनशीलया' इत्यर्थः ॥

कस्याप्यभियोगनिरासार्थं दूती नायिकायाः ऋतुकालेऽप्यनवसरमाह—

चोरंसुएहिं रुण्णं सवत्तिवग्गेण पुप्फवइआए ।

भुअसिहरं पइणो पेछिऊण सिरलग्गतुप्पलिअम् ॥ २८ ॥

[स्थूलाक्षुगी रुदितं सपत्नीवर्गेण पुष्पवत्याः ।

भुञ्जतिखर मत्तु प्रेक्ष्य शिरोलप्रवर्णघृत्रलिप्तम् ॥]

रजसलामपि तामसौ न लज्जतीति भावः । तुप्प वर्णघृत्र तेन लिप्ते तुप्पलिअम् ॥  
अनुत्तमातिशयास्त्रोऽपि रजसलामाह—

लोओ जूरइ जूरउ वजणिज्जं होइ होउ तं णाम ।

एहि णिमज्जसु पासे पुप्फवइ ण पइ मे णिदा ॥ २९ ॥

[लोक. खिद्यते खिद्यतु वचनीय भवति भवतु तन्नाम ।

एहि निर्मेज्ज पार्श्वे पुष्पवति नैति मे निद्रा ॥]

वचनीय परीवादः ॥

ध्याप्यनुत्तमातिशयं व्यनयन्ती कमपि युवानमाह—

जं जं पुलएमि दिसं पुरओ लिद्धिअ व्व दीससे तत्तो ।

तुह पडिमापडिवाडिं वइइ व सअलं दिसाजकम् ॥ ३० ॥

[या यां प्रलोकयामि दिशः पुरतो लिखित एव दृश्यते तत्र ।

तव प्रतिमापरिपाटीं बहूतीव सकल दिशाचक्रम् ॥]

प्रतिमा प्रतिबिम्बम् । परिपाटी परम्परा ॥

एकत्रानुभूतव्यसनस्तरसदृशमन्यदभिलषितमप्युपादातुं विभेतीत्यन्यापदेशेन कोऽप्याह—

ओसरइ धुणइ साहं खोखासुदलो पुणो समुह्निहइ ।

जम्बूफलं ण गेहइ भमरो त्ति कई पढमडफो ॥ ३१ ॥

[अपसरति धुनोति शाखा खोखासुखर, पुन, समुह्निसति ।

जम्बूफलं न गृह्णाति भ्रमर इति कवि, प्रथमदष्ट ॥]

खोखा ध्वनिविशेषः । डको दष्ट ॥

अभिमतमपि मूढः प्रतिकूलबुद्ध्या परिहरतीत्यन्यापदेशेन कोऽपि सहचरमाह—

ण छिवइ हस्थेण कई कैण्डूइभएण पत्तलणिउञ्जे ।

दरल्लम्बिअगोच्छकइरुच्छुसच्छहं वाणरीहत्थम् ॥ ३२ ॥

[न स्पृशति हस्तेन कपि कैण्डूतिमयेन पत्रलनिकुञ्जे ।

ईपल्लम्बितगुच्छकपिकच्छुसईश वानरीहत्सम् ॥]

पत्रलः पत्रबहुलः । कपिकच्छुः शुकशिम्भिः । प्राकृते पूर्वनिपातानियमात्कपिकच्छुगुच्छसदृशमित्यर्थः ॥

नायिकाया विरहदुःखं सूचयन्ती दूती नायकमाह—

सरसा वि सूसइ शिअ जाणइ दुक्खाईं मुद्वहिअआ वि ।

रत्ता वि पण्डुर शिअ जाआ वरईं तुह विओए ॥ ३३ ॥

[सरसापि शुष्यत्येव जानाति दुःखानि मुग्धहृदयापि ।

रत्तापि पाण्डुरैव जाता वराक्री तत्र वियोगे ॥]

रस आर्द्रता इच्छा च । मुग्धत्वमचेतनत्वमितिकर्तव्यतासुद्धिराहित्यं च । रत्तं रक्तवर्णता प्रीतिविशेषश्च । अत्र विरोधालकारेण त्वद्विरहे सर्वमेव सुखसाधनं दुःखसाधनं जातं तस्या इति वस्तु व्यज्यते ॥

कामपि गलितयौवना शीघ्रपानेन जातमन्यमविमारा शब्दार्थेनच्छलेनोपहृतमाग-  
रिक्ः सहचरमाह—

आरुहइ जुण्णअं सुज्जअं वि जं उअह वहरी तउसो ।

णीलुप्पलपरिमलवासिअस्त सरअस्त सो दोसो ॥ ३४ ॥

१. 'सुखरः समुह्निसति' घ. २. 'खोखा वानरशब्द' इति कुल्लमालदेव . ३. 'कण्डू-  
अण' ख-भा. ४. 'कण्डूयन' ग-घ. ५. 'दरल्लम्बित' ग-घ. ६. 'सच्छवि' घ.

[आरोहति जीर्ण कुञ्जकमपि यत्पश्यत वेहनशीला ऋषी ।  
नीलोत्पलपरिमलवोसिताया शरदः स दोष ॥]

वेहनशीला वेहनशीला । पक्ष वेष्टिताप्यालिङ्गनशीला । ऋषी कर्कटीविशेष ।  
दोषो विकार । कर्कट्या पुनर्नवीकरण जरत्याथ युवटीकरण विकार । शरत्काले व  
र्कटीमता यदेव पुर स्थित शुष्कमात्रं सरल वक वा तदेवारोहति । तथा कृतेव लता  
नयिका वृद्ध तरुण वा यद्गच्छते नायमस्या दोष । किंतु सरअस्स सरकस्स इथुम-  
यस्स । सरकोश्री शीघ्रगाने शीघ्रपात्रेक्षुशीघ्रुने' इति मेदिनी ॥

पूरमनुभूतमधूत्तवा कापि प्रियविरहिता पुन प्रवृत्ते मधूत्सवे सखीमाह—

उपहृपहाविहृजणो पविजिम्हिअकलअलो पहअतूरो ।

अव्वो सो खेअ छणो तेण विणा गामडाहो व्व ॥ ३५ ॥

[उत्पथप्रधावितजन प्रविजृम्भितकलकल प्रहृततूर्ये ।

हुँ ख स एव क्षणस्तेन विना ग्रामदाह इव ॥]

उपधेति । उत्सवतरतया सभ्रनाचेति भाव । अव्वो इति दुःखाभिनये आर्ज्ये  
या । क्षणो मधूत्तव' ॥

सलसङ्गनिवधाय कापि सखीमाह—

उल्लाप्यन्तेण ण होइ कस्स पासट्टिएण ठुहेण ।

सद्धा मसाणपाअवलम्बिअचोरेण व खलेण ॥ ३६ ॥

उल्लाप्यमानेन न भवति कस्य पार्श्वस्थितेन सन्धेन ।

सद्धा श्मशानपादपलम्बितचोरेणैव खलेन ॥]

उल्लाप्यमानेन सभाषमाणेन पक्षेऽभिभवता । पार्श्वस्थितेन सनिहितेन, पक्षे पास  
ट्टिएण कागस्थितेन । सन्धेन अहकारात्, पक्षे प्राणवायुविरहात् । सद्धा वितर्क,  
पक्षे भयम् ॥

शेवितभतुका प्रियतस्त्री समाभासयित्तु सखी विवृभगिनीमाह—

असमत्तगुरुअपल्ले एहिं परिए घर णिअत्तन्ते ।

णवपाउसो पिउ-छा दसइ व हुइअट्टहासेहिं ॥ ३७ ॥

१ 'जीर्णकुञ्जकमपि' स २ 'वेपमाना दुःपुरि' स, 'बहरी ऋषी' घ. ३ 'वा  
रितस्य सरस को दोष' घ ४ 'सूचित स एव' घ ५ 'उल्लाप्यमानेन' स,  
'उत्पथप्रधाव' घ

[अममासगुरुककार्ये इदानीं पथिके गृहं प्रतिनिवर्तमाने ।  
नमप्राग्दु पितृध्वसः हसतीन कुटजाट्टहासैः ॥]

मचिहदर्शनाद्भीत प्रियाविरह सोढुमशनु व्रकृतकार्य एवाहं गृह प्रति प्रस्थित इति  
हसतीवेत्यर्थः । कुटजकुसुमान्येवाट्टहासः ॥

कोऽपि वर्षोपक्रमे गृहगमनाय पथिक त्वरयितुमाह—

ददृण उण्णामन्ते मेहे आमुक्कजीविआसाए ।

पहिअघरिणीअ डिम्भो ओरण्णमुहीअ सच्चविओ ॥ ३८ ॥

[दृष्ट्वा उन्नमतो मेघानामुक्तजीविताशया ।

पथिकगृहिण्या डिम्भोऽरुदितमुख्या दृष्टः ॥]

अवरुदितेति । का गतिरस्य भवित्री केन वार्यं पालयितव्यइत्यादि चिन्तयेति भावः ॥  
बलहान्तरितया भोषोज्झितभूषण्यापि न त्यक्तानि बलयानीति तस्याः मुहता वि-  
रहकृताता च सूचयन्ती सखी तत्कान्तमाह—

अविहवलक्खणवलअं ठाणं णेन्तो पुणो पुणो गलिअम् ।

सहिसत्थो च्चिअ माणंसिणीअ बलआरओ जाओ ॥ ३९ ॥

[अविधवालक्षणवलयं स्वानं नैयन्पुन पुनर्गलितम् ।

सखीसार्थ एव मनस्विन्या बलयकारको जातः ॥]

बलयकारको बलयपरिधापकः ॥

कोऽपि दुर्गतविरहिषध्वसस्थाप्रकटनेन प्राग्दुपि पथिकं त्वरयितुमाह—

पहिअबहू विविरन्तरगलिअजलोहे धरे अणोहं पि ।

उहेसं अविरअवाहसल्लिणिवहेण उहेइ ॥ ४० ॥

[पथिकवधूविधैरान्तरगलितजलाद्रेः गृहेऽनार्द्रमपि ।

उद्देशमविरतवाष्पसल्लिनिवहेनार्द्रयति ॥]

उद्देश स्थानम् ॥

१. 'पीयूषा' घ. २. 'अवनतमुख्या' ग. ३. 'सत्त्वायित.' ग, 'सस्थापित.' घ.  
४. 'अतैषात्थ' घ., 'अतिप्रस' घ. ५. 'नीतपमानं' घ. ६. 'गत्वीहत्त.' ग. घ. ७. 'बलया-  
कारो' ग, 'बलवारओ' घ. ८. 'कुडन्तर' ख-ग. ९. 'कुड्यान्तर' ग-घ. १०. 'प्र-  
देश' ग.

अनुनेतुमागतं प्रिययादिनं कान्तं कलहान्तरिता सपरितोपमाह—

जीहाइ कुणन्ति पिअं भवन्ति द्विअअम्मि जिच्चुइं काउम् ।

पीडिज्जन्ता वि रसं जणन्ति उच्चू कुलीणा अ ॥ ४१ ॥

[जिहायां (पक्षे—जिहया) कुर्वन्ति प्रियं भवन्ति हृदये निर्वृतिं कर्तुम् ।

पीड्यमाना अपि रसं जनयन्तीक्ष्वः कुलीनाश्च ॥]

जिहायामिति मधुरत्वात्प्रियंवदत्वाच्च । भवन्ति प्रभवन्ति । निर्वृतिं सतापस्रोद्रे-

मस्य च प्रथमम् । पीड्यमाना दन्तेन निदुरत्वादेन च । रस इव प्रीति च ॥

वसन्तागमं प्रति विप्रतिपद्यमानां श्वधूं धधूराह—

दीसइ ण चूअमउलं अत्ता ण अ वाइ मलयगन्धवहो ।

पत्तं वसन्तमासं साहइ उक्कण्ठिअं वेअं ॥ ४२ ॥

[दृश्यते न चूतमुकुलं श्वश्रु न च प्राति मलयगन्धवहः ।

प्राप्तं वसन्तमासं कथयत्युक्कण्ठितमेरुं ॥]

उक्कण्ठितमुक्कण्ठा । 'उक्कण्ठिअं वेअं' इति पाठे 'उक्कण्ठितं चेत.' इत्यर्थः ॥

आश्रयति हि प्रोषितपतिके न जातो वसन्तारम्भ इति वदन्तीं रत्नीं वसन्तागममुच्यं

शङ्कराङ्कुरोद्गम प्रतिपादयन्ती मायिका आह—

अम्बवणे भमरउलं ण विणा कजेण ऊसुअं भमइ ।

कत्तो जलणेण विणा धूमस्स सिहाउ दीसन्ति ॥ ४३ ॥

[आश्रवणे भ्रमरकुलं न विना वायेंणोत्सुक भ्रमति ।

कुतो ज्वलनेन विना धूमस्य शिखा दृश्यन्ते ॥]

उसुमेन विना नालिने भ्रमन्ति । जाते चाश्रयसुमे प्रवृत्त एव वसन्त इति भावः ॥

कथमनलंकृतामेवैनां बहुमन्यस इति वदन्तं सहचरं भिदग्धः कश्चिदाह—

दइअकरगहल्लिओ धम्मिहो सीधुगन्धिअं वअणम् ।

मअणम्मि एत्तिअं चिअ पसाहणं हरइ तरुणीणम् ॥ ४४ ॥

[दयितकरग्रहल्लितो धम्मिहः सीधुगन्धितं वैदनम् ।

ईदने एतावदेव प्रसाधनं हरति तरुणीनाम् ॥]

मदने वसन्तोऽसवे । मदन इति निमित्तप्रसङ्गी वा । मदननिमित्तमित्यर्थः । एतावदे-

ति किमन्यैः सुरतानुपयोगिभिर्भारमूलैरिति भावः । किमलंकारेण । शीघ्रं कान्तमभिस-

ति दत्तीवचनमिति कश्चिद् ॥

१. 'करेति' ख-वा. २. 'हरन्ति' ख. ३. 'हरन्ति हृदय' घ. ४. 'चेअं' ख.  
५. 'आगतं च' ग. ६. 'चेत.' ग-घ. ७. 'वचनं' घ. ८. 'मदनेऽप्येतावदेव' ग.

ग्राम्यद्वियोऽप्यत्र रमणीया भवन्तीति वसन्तं सुवन्दोऽपि सहचरमाह—  
गामतरुणीओं हिजअं हँरन्ति छेभाणँ थणहरिहीओ ।

मअणे कुँसुम्भरखिअकञ्चु[इ]आहरणमेत्ताओ ॥ ४५ ॥

[ग्रामतरुण्यो हृदयं हरन्ति विदग्धानां स्तनभारवत्य ।

मैदने कुसुम्भरागमुक्तकञ्चुकामरणमात्राः ॥]

प्राकृते पूर्वनिपातानेयमात्कञ्चुकमात्राभरणा इत्यर्थः । एतादृशयो ग्रामतरुण्योऽपि स्पृहणीया भवन्ति किमुत परार्थ्यभूषणमूषिताः प्रमदा इति भावः ॥

कोऽप्यनभ्यस्तप्रवाससाम्भिनवपथिकस्य विरहवैधुर्यं कथयन्प्रवासनिषेधार्थं तमाह—

आलोअन्त दिसाओ ससन्त जम्मन्त गन्त रोअन्त ।

मुच्छन्त पडन्त खलन्त पहिअ किं ते पवत्येण ॥ ४६ ॥

[आलोक्यन्दिरः श्वसञ्जुग्ममाण गौयन्हृदन् ।

मूर्च्छन्पतन्खलन्पथिक किं ते प्रवसितेन ॥]

चरित्वादिशोऽवलोक्यन्, प्रियास्मरणाच्छ्वसन्, मदनायासेन जुग्ममाणः, दुःखवि-  
नोदाय गायन्, पुनश्च निवेदाद्दृदन्, तदेकासकचित्तवान्मूर्च्छादिविकारं प्राप्नुवन् हे  
पथिक, ते प्रवसितेन प्रवासेन किं फलम् । गतोऽप्यवृत्तवृत्त्य एवागमिष्यसि । यतः  
संप्रत्येव तवेयमवस्था विचिद्गमने तु कीदृशवस्था भविष्यतीति न जाने । तस्मात्प्रि-  
वसितेति भावः ॥

सख्या रहोत्तममुसधानुं गता कथमियधिरेणगतासीति सहसा पृष्टा सखी तामाह—

दट्टण तरणसुरअं विविधविलासेहिं करणसोहिल्लम् ।

दीओ वि तग्गअमणो गअं पि चेहं ण लक्खेइ ॥ ४७ ॥

[दट्टा तरणसुरतं विविधविलासैः करणशोभितम् ।

दीपोऽपि तद्वत्तमना गतमपि तैल न लक्षयति ॥]

विविधविलासैरालिङ्गनमुन्मनादिभिरुलक्षितम् । करणैरुत्तमकतिर्गमिष्यतीत्यास-  
नयन्धैः कामशास्त्रोक्तैः शोभितम् । तरुणी च तरुण्य तरुणी । 'पुमान्दिया' इत्येक-  
शेषः । तयोः सुरवम् । अचेतनो दीपोऽपि यत्र स्पृहयालुस्तत्र मद्भिधो जनः कथं की-  
तुकादिरमतीति भावः ॥

१. 'हरन्ति पीवरथणहरहीठ' ग. २. 'कुसुम्भराह' ग. ३. 'छेघानां' घ.  
४. 'प्रोवसितेन' ग. ५. 'मदवन्ति कुसुम्भरकञ्चुकिमात्राभरणा.' ग, 'मन्वे कु-  
सुम्भरकितकञ्चुकिचाहरणमात्रा' घ. ६. 'आलोक्यमान' ग. ७. 'गच्छन्' ग.  
८. 'पृच्छन्' घ. ९. 'कि त्वया' ग. १०. 'प्रवसितेन' ग-घ. ११. 'करणसोहिल्लम्' घ.



श्रीटकामिनीमुत्पण्डयितु दूती सर्वदग्ध नायकस्य मुरतमात्ममन्यापदेशेनाह—  
पुणरुत्तकरप्फालणउहअतडुह्लिहणवडुणसआइ ।

जूहादिवस्स माए पुणो वि जइ णम्मआ सहइ ॥ ४८ ॥

[पुनरुत्तकरप्फालणोभयतटोद्धिखनपीडनशतानि ।

यूथापिपस मात पुनरपि यदि नर्मदा सैहते ॥]

पुनरुत्त पुनपुनर्यत्करेण पुण्डादण्डेन हस्तेन चारुफालन जलादौ पृष्ठादौ च । उभ  
वतट कूलद्वय पार्श्वद्वय च यूथापिपस्य गजमुह्यस्य गोष्ठीनायकस्य च । मानरित्या-  
धर्यपरे संबोधनम् । नर्मदा नदी नर्म मुरा ददातीति व्युत्पत्त्या क्रीडानुकूला नायिका  
च । यद्वा मुन्दरि, कान्तसमीप गच्छेति वदन्तीं सखीं प्रति नायिकाया इवमुक्ति ।  
छेयमह यदि तस्य मुरतदुर्विदग्धस्य स्नततटनखक्षतोरस्ताडनमर्दनशतानि पुनरपि  
ह्येयमिति भाव ॥

पूर्वसकेतितस्य कार्पासीक्षेत्रस्य सापायतां खगृहस्यैव खच्छन्दप्रचारयोग्यता च  
शरं धावयन्ती डुलटा सोद्वेगमाह—

बोडमुणओ विअण्णो अत्ता मत्ता पई वि अण्णत्थो ।

फलिह व मोडिअ महिसएण को तस्स साहेउ ॥ ४९ ॥

[दुष्टगुणको विपत्र श्वश्रूमत्ता पतिरप्यन्यस्य ।

कार्पास्यपि मग्ना महिपकेण कस्तस्य कथयतु ॥]

बोडो दुष्टरिक्तकर्णो वा । 'बुडुमुणओ' इति पाठे दृढशूनक इत्यर्थं । अन्यस्थो  
देशांतरस्य । कार्पासी कर्पासवाटिका । तस्य निजपत्न्यु । 'अत्ता मत्ता पई वि अ-  
ण्णत्थो' इति स्थाने 'अत्ता मत्तो पइ णवसुराए' इति कवित्पाठ । तत्र श्वश्रु इति  
संबोधनम् । पतिर्नवमुरया मत्त इत्यर्थ ॥

कान्तेन खमुचेन दत्ता मदिरा मानिन्या मानमपनयतीति शिक्षयन्नागरिक सहच-  
रमाह—

सकअग्गहरहसुत्ताणिआणणा पिअइ पिअमुइविइण्णम् ।

थोअ थोअ रोसोसइ व उअ माणिणी मैइरम् ॥ ५० ॥

[सैकचमहरभसोत्तानितानना पिवति प्रियमुखप्रीतीर्णम् ।

स्तोक स्तोक रोपीपधमिव पदस्य मानिनी मदिराम् ॥]

१ 'कर्पणशतानि' घ. २ 'हसते' घ ३ 'पइ णवसुराए' ख. ४. 'सरअ' ख-  
श ५ सकचमहोनामितानना पिवत्वाननविस्तीर्णम्' घ. ६ 'पदस्य मानिनी सर-  
कम्' घ.

सकचप्रहं रससेनोत्तागितमाननं यस्याः सा । 'सरज' इति पाठे सरकमिश्रुमय-  
मित्यर्थः ॥

नार्तस्वत्वविचारक्षमो भवतीति मध्याह्नवर्णनच्छलेन प्रदर्शयन्नागरिकः सहवरनाह—  
गिरसोत्तो त्ति भुजंगं महिसो जीहइ लिहइ संतत्तो ।

महिसस्स कहुवत्थरझरो त्ति सप्पो पिअइ लालम् ॥ ५१ ॥

[गिरसोत्त इति भुजंगं महिषो जिहया लेटि सतसः ।

महिषस्य कृष्णप्रस्तरक्षर इति सर्पः विवति लालाम् ॥]

महिषस्य लालामिति संबन्धः ॥

शारिकाया रहस्याह्यानतः सलज्जा कुलवधूर्मातुलानीमाइ—

पञ्जरसारिं अत्ता ण णेसि किं एत्थ रइहराहिन्तो ।

वीसम्भजत्पिआइं एसा लोभाणैं पअडेइ ॥ ५२ ॥

[पञ्जरशरीं मैतुलानि न नयसि किमन रतिगृहात् ।

विसम्भजत्पितान्येषा लोकानां प्रकटयति ॥]

पञ्जरशरीं पञ्जरबद्धां शारिकाम् । विसम्भजत्पितानि गुरतगमयोदितवचनान् ।  
लोकानां लोकेभ्यः । प्रकटयति श्रावयति ॥

दन्तधावनार्थं वरञ्चनिकुञ्जपञ्चवभञ्जकं भिक्षार्थमन्तव्यं धार्मिकं भीषयन्ती कुलटा  
तन्निषेधार्थमाह—

एदहमेत्ते गामे ण पडइ भिक्खर त्ति कीस मं भणसि ।

धम्मिअ करञ्जभञ्जअ जं जीअसि तं पि दे बहुअम् ॥ ५३ ॥

[एतावन्मात्रे ग्रामे न पतति भिक्षेति विंमिति मां भणमि ।

धार्मिकं करञ्जभञ्जकं यञ्जीरसि तदपि तै बहुकम् ॥]

द्वर्षवचननिन्वासेनानुरागं व्यञ्जयन्ती कुलटा वृत्तगुणवेतनमिश्रुषीङ्कमाह—

जन्तिअ गुंलं विमग्गसि ण अ मे इच्छाइ वाहसे जन्तम् ।

अणरसिअ किं ण आणसि ण रसेण विणा गुलो होइ ॥ ५४ ॥

[यान्त्रिकं गुणं विमार्गयते न च ममेच्छया वाहयसि यत्रम् ।

आत्मिकं किं न जानामि न रसेन विना गुणो भवति ॥]

यान्त्रिको यन्त्रकर्मकारकः, यन्त्रं चेष्टुषीरोचितं गुरतोपिन च । एतो द्रवोऽनुग-

गन्ध । अरतिक द्रवस्यानुरागस्य च निधानानभिह । रसेन द्रव्येगानुरागेण च विना गुडो  
न भवति नोत्पद्यते न प्राप्यते चेत्पर्यः । अतो मध्यनुरज्यस्वेति भावः ॥

ज्ञानोत्तीर्णा श्यामाग्नी सानुरागं वर्णयन्कश्चित्महत्वरमाह—

पत्तणिअम्बष्फंसा क्लाणुत्तिष्णाएँ सामलङ्कीए ।

जलत्रिन्दुएहिँ चिहुरा रुअन्ति बन्धस्स व भएण ॥ ५५ ॥

[प्राप्तनितम्बस्पर्शाः ज्ञानोत्तीर्णाया श्यामलाङ्गा ।

जलत्रिन्दुकैश्चिकुरा रुदन्ति बन्धसेव भयेन ॥]

ज्ञानावसरे लम्बमानाधिकुरा. प्राप्तमुन्दरीनितम्बस्पर्शसुखा पुनर्वन्धनेन तात्स्पर्श-  
सुखविच्छेद शङ्कमाना गलजलत्रिन्दुच्छलेन रुदन्तीवेति भावः ॥

निर्भयाभिसारयोग्यता जार प्रति सूचयन्ती बुलटा वटप्रशसामाह—

गामङ्गणणिअडिअकङ्कवक्ख वड तुज्झ दूरमणुल्लगो ।

'तित्तिह्वण्डिअकभोइओ वि गामो ग उब्बिग्गो ॥ ५६ ॥

[प्रायाङ्गणनिर्गडितकृष्णपक्ष वट तव दूरमणुल्लम ।

दौ साधिकप्रतीक्षकभोगिकोऽपि ग्रामो नोद्दिम ॥]

ग्रामाङ्गणे निगडितो बट । सर्वदा स्थापित इति यावत् । तत्कार्यंकरत्वात्कृष्णपक्षो  
यनेति वटविशेषणम् । निविडच्छायलेनान्धकारबाहुल्यात् । तव दूरमणुल्लम इति स्व-  
याच्छादितत्वादिति भावः । दौ साधिक. प्रतीक्षको यस्य भोगिन्स्य स दौ साधिकप्र-  
तीक्षक । तादृशो भोगिको भोगासक्तः कामुरुपनो यस्मिन् । एतादृशोऽपि ग्रामो  
नोद्दिम । अनुपलक्षिताभिसारतया राजभयशून्यत्वात् । तित्तिणे दौ साधिकः । 'त-  
न्तिह्वण्डिअकभोइओ वि' इति पाठे तु चिन्तापरासहनभोचृकोऽपि । तन्तिथिन्ता  
तशुक्त प्रतिपत्तोऽमहनो भोक्ता ग्रामाधिकारी यत्रेत्यर्थः । तथा च यद्यप्येतस्य ग्रा-  
मस्य प्रभुरतितीक्ष्णो न्यायान्वेषणतत्परश्च तथापि सत्प्रसादाद्गमस्य बुलटाजनो नो-  
द्दिजत इति भावः ॥

वापि पतिं धारयन्ती सपरन्या सोपलम्भं दुधरितमाह—

सुप्यं ढडुं षणभा ण भज्जिआ सो जुआ अइअन्तो ।

अत्ता वि घरे कुविआ भूआणँ व वाइओ वंसो ॥ ५७ ॥

[सुप्यं दग्ध षणवा न भृष्टा स सुरातिकान्त. ।

अधूरवि गृहे कुपिता भूतानामिर्ष्यादितो वराः ॥]

१. 'उत्तिष्णतिष्यकरभो इओ वि' र. २. 'गत्ति' ग, 'निपत्ति' घ. ३. 'तत्तव-  
प्रतिपत्तभो गेकोऽपि' ग; 'उत्तीर्णतीक्ष्णभो इतोऽपि' घ. ४ 'दौ साधिके द्वारपट.'  
इति विशालशेषः. ५. 'सुप्यं दग्ध' ग. ६ 'क' ग.

स इति । यं द्रष्टुं निर्गता सोऽधीत्यर्थः । भूतानां ध्रुतिविकलानाम् । तथा च यधिरा-  
णामग्रे वंशवादनवत्सर्वं तस्याद्येष्टितं व्यर्थमेव संवृत्तमिति भावः ॥

निहुतमप्यर्थं विदग्धा बुध्यन्त इति बोधयन्नागरिकः सहचरमाह—

पिसुणेन्ति कामिणीणां जललुक्कपिआवऊहणसुहेल्लिम् ।

कण्डइअकवोलुप्फुहणिसलच्छीइँ वअणाइँ ॥ ५८ ॥

[पिशुनयन्ति कामिनीणां जलनिलीनप्रियावगूहनसुखकेलिम् ।

कण्टकितकपोलोत्फुल्लनिश्चलाक्षीणि वदनानि ॥]

पिशुनयन्ति सूचयन्ति जलनिमग्नस्य प्रियस्य यदवगूहनमालिङ्गनं तेन यत्सुखं तद्रूपं  
केलिमित्यर्थः । कण्टकितौ संजातपुलकौ कपोलौ येषां तानि । तथा हर्षविशेषादुत्कुले  
स्तम्भाख्येन सार्विकभावेन निश्चले चाक्षिणी येषु तानि वदनानि ॥

वनमयूरलसित सञ्जेतितलतागृहमह गता, ल तु न गत इति चारं भावयन्ती पुलटा  
वर्षाप्रशंसामाह—

अह्णिणवपाउसरसिएसु सोंहइ साआइएसु दिअहेसु ।

रहसपसारिअगीवाणँ णच्चिअं मौरवुन्दानाम् ॥ ५९ ॥

[अभिननप्रावृड्मितेषु शोभते दैवामायितेषु दिवसेषु ।

रमसप्रमारितमीनाणां मृतं मयूरवृन्दानाम् ॥]

अभिनवानि प्रावृषो रक्षितानि मेघगर्जितानि येषु तेषु । मेघान्तरितभास्वरतया  
दयामायितेषु रात्रिसदृशेषु दिनेषु मृतं शोभत इति संपन्थः । दिवैव संकेतस्थानस्याभि-  
सारयोग्यता प्रतिपादयन्त्या इत्या इयमुक्तिरिति वक्षिम् ॥

महिषशालायां रममाणः कापि जारोत्साहनाय दोषं गुणोक्तमाह—

महिसक्खन्धविलगं षोलइ सिङ्गाहअं सिमिसिमन्तम् ।

आहअवीणासंकारसदमुहलं मसअवुन्दम् ॥ ६० ॥

[महिषस्कन्धविलगं पूर्णने शृङ्गाहतं सिमिसिमायमानम् ।

आहतवीणासंकारसदमुहलं मशकवृन्दम् ॥]

पूर्णते भ्रमति । सिमिसिमायमानमित्यनुकरणम् । सिमिसिमस्य कुर्यदित्यर्थः । आह-  
ताया वीणाया इव शो संकारः शब्दरतेन मुरारम् ॥

१. 'मूषदग्नि' ग. २. 'जलस्रोतकम्पितावरोहणसकीडम्' घ. ३. 'कीमा' ग.  
४. 'कन्दलितकपोलोत्फुल्लनिश्चलक्षीणाकानि' घ. ५. 'दयामायमानेषु' ग. 'धामायिकेषु'  
घ. ६. 'पुत्रते' घ. ७. 'सिमिसिमायन्तम्' ग. 'सिमिसिमन्तम्' घ.

कुमुदसरस्वीरलतागृहे चन्द्रोदयपर्यन्तमह स्थित , त्व तु न गतेति कुलटा धावयन्क-  
धिदाह—

रेहन्ति कुमुददलनिधलस्थिता मत्तमद्दुअरणिहाआ ।

ससिअरणीसेसपणासिअस्स गण्ठि ठ्व तिमिरस्स ॥ ६१ ॥

• [राजन्ते कुमुददलनिधलस्थिता मत्तमधुकरनिकाया ।

शशिकरनि शेषप्रणाशितस म्नेथय इव तिमिरस ॥]

शाशिक्षेत्रे छुरपतशङ्का सूचयती शाशिकोपी सुरतसत्वरं जारमन्यमनस्क कर्तुमाह—

उअह तरुकोडराओ णिकेन्त पुसुवाणं रिञ्छोलिम् ।

सरिए जरिओ ठ्व दुमो पित्त व्व सलोहिअ वमइ ॥ ६२ ॥

[पश्यत तरुकोटराशिकाता पुञ्जुकाना पङ्क्तिम् ।

शरदि ज्वरित इव द्रुम पित्तमिव सलोहित वमति ॥]

रममाणस्य जारस्य भयत्तरापनयनार्थं दुर्दिनाभिसारिका दुर्दिनानुबन्धलिङ्गमाह—

धाराधुव्वन्तमुहा लम्बिअवकरा णिउञ्चिअग्गीवा ।

वइवेढनेसु काभा सुलाहिण्णा व्व दीसन्ति ॥ ६३ ॥

[धाराधाव्यमानमुखा लम्बितपक्षा निकुञ्चितग्रीवा ।

वृत्तिवेष्ठनेषु काका शूलाभिजा इव दृश्यन्ते ॥]

कथं प्रसारितशलाघाकारचभुवाच्छूलेना समन्ताद्भिन्ना इवेत्थ । एते च दुर्दि-  
नस्य विरकालानुवृत्तिसूचका इति भाव ॥

वृषभसंभाषणविमुखा कलहातरितां शिक्षयती धानिदाह—

ण वि तह अणालवन्ती हिअअ दूमेइ माणिणी अहिअम् ।

जह दूरविअम्भिअगरअरोसमग्गत्थमणिएहिं ॥ ६४ ॥

[नापि तथानालपन्ती हृदय दुर्नोति मानिन्वधिकम् ।

यथा दूरविजृम्भितगुरुकरोपमध्यस्वमणितै ॥]

रोपपूर्वकाणि यानि मध्यस्वमणितान्युदासीनवचनानि तैरित्थं । तदुक्तं मातृगुप्ता  
कार्ये—'तिष्ठुराणि न वक्तव्यो नातिक्रोध च दर्शयेत् । न वाचयैर्वाप्यसन्निधैरुपात्तभ्यो  
मनोरम ॥' इति ॥

१ 'कुमुद' घ. २. 'निघाता' ग; 'निहरा' घ. ३ 'प्रथमितस' ग. ४ 'प्रसि-  
रिव' घ. ५. 'निष्कामति पुञ्जकतानां' ग. ६. 'श्रोत्रिष्ठताना रिञ्छोत्तिम्' घ. ७ 'घ-  
रापरोन्मुखा' घ ८. 'न पित्तमनालपन्ती' घ. ९ 'दुर्मनायते' ग.

वर्षामु प्रियतमाविनादानादाह्वमानं पथिस्मात्प्रसवसत्सहचरं ॥ ६५ ॥

गन्धं अगघामन्तत्र पक्कलम्याणं वाहभरिअच्छ ।

आसमु पहिअजुआणअ परिणिमुहं मा ण पेच्छहिंसि ॥ ६५ ॥

[गन्धमैत्रिमन्यककदम्बानां वाष्पभृताक्ष ।

आश्वासिहि पथिकयुग्मं गृहिणीमुखं मा न प्रेक्षिष्यसे ॥]

न प्रेक्षिष्यस इति मा । किं तु प्रेक्षिष्यस एवेत्यर्थः ॥

गर्जितध्रुवणशङ्कितप्रियतमाविनाशः पथिको जलधरमाह—

गज्ज महं चिअ उवरिं सब्वत्यामेण लोह्हिअमस्स ।

जलहर लम्भालइअं मा रे मारेहिंसि बराइम् ॥ ६६ ॥

[गर्ज ममैवोपरि सर्वस्वाग्रा लोह्णहृदयस ।

जलधर लम्भालनिकां मा रे मारयिष्यसि वराकीम् ॥]

सर्वस्वाग्रा सर्वकलेन । रे इति संबोधनम् । लोह्वन्कठोरहृदयत्वात्स्ववर्जनं सोढुमहं नमर्थः । सा पुनः शिरीषादपि मृद्वरी कथं जीविष्यतीति भावः ॥

हेमन्तोपक्रमवर्षनच्छलेन शालिक्षेत्रस्थाभिस्सारयोग्यता धावन्ती तुल्यं प्रा-  
विदाह—

पङ्कमइलेण छीरेकसाइणा दिण्णजाणुवडणेण ।

आनन्दिज्जइ हलिओ पुत्तेण च सालिछेत्तेण ॥ ६७ ॥

[पङ्कमलिनेन क्षीरैकपायिना दत्तत्रानुपतनेन ।

आनन्दधते हालिकः पुत्रेणैव शालिक्षेत्रेण ॥]

क्षीरं तण्डुलारम्भकं जलं दुग्धं च । जानु लक्ष्मण उपकारादान्नालम्पयिष्य ॥

प्रातरेषाहं सकेतस्थानं शालिक्षेत्रं गता, एव तु न गत इति जारं धावन्ती गीर्वाण-  
भिस्सारिका सालेऽपि सलसंयोगदुद्देशमाह—

कहं मे परिणइआले सलसङ्गो होहिइ चि चिन्तन्तो ।

ओणअमुहो ससूओ रुइ य माली सुमारेण ॥ ६८ ॥

[कथं मे परिणतिकादेः सलसङ्गो प्रेक्षिष्यतीति चिन्तयन् ।

अपनतमुगुः सशूको रोदितीं शालिस्तुषारेण ॥]

१. 'आघ्रायन्' घ. २. 'गरिनाश' घ. ३. 'पथिकेदानी' घ. ४. 'छे' ५. 'ए'  
शाटिका' ग. ६. 'मारयति' घ. ७. 'सलसङ्ग' ख. ८. 'वत्नेन' घ. ९. 'आनन्दयति'  
घ. १०. 'मवतीति' घ.

सलसा धान्यमर्दनस्थानस्य दुर्जनस्य च सद्गः । अवनतं मुखं शीर्षाग्रं वदनं च यम्य  
सः । शक्रेण धान्यकण्टकेन सह वर्तत इति सशक्रः । अथ च समूओ सशोकः ॥

अभिसारस्थानगमनाय प्रदोषाभिसारिका स्वरयन्ती दूती प्रदोषवर्णनमाह—

संक्षाराओत्थइओ दीसइ गअणम्मि पड्डिवआचन्दो ।

रत्तदुऊलन्तरिओ थणणहलेहो व्व णवघहुए ॥ ६९ ॥

[संध्यारागावस्थगितो दृश्यते गगने प्रतिपच्चन्द्रः ।

रक्तदुकूलान्तरितः स्तनखलेख इव नववध्वाः ॥]

अर्धचन्द्रावलोकनकौतुकादाकाशं पश्यन्त देवरे कापि सपरिहासमाह—

अइ दिअर किं ण पेच्छसि आआसं किं मुहा पलोएसि ।

जाआइ बाहुमूलम्मि अद्धअन्दाणं परिवाडिम् ॥ ७० ॥

[अथि देवर किं न प्रेक्षसे आकाश किं मुधा प्रलोकयसि ।

जायाया बाहुमूलेऽर्धचन्द्राणां परिपाटीम् ॥]

जायाया बाहुमूलेऽर्धचन्द्राणां परिपाटीं परम्परां किं न प्रेक्षसे इति योजना ॥

वक्ष्यसि मद्बचनेन मरिप्रियनेवमिति प्रोषितभर्तृका प्रियसमीपगामिनं पान्थमाह—

वाआइ किं भणिज्जउ केत्तिअमेत्तं व डिकएए लेहे ।

तुह विरहे जं दुक्खं तस्स तुमं चेअ गहिअत्थो ॥ ७१ ॥

[वैचया किं मण्यतां कियन्मात्रं वां लिख्यते लेखे ।

तव विरहे यदु खं तस्य त्वमेव गृहीतार्थः ॥]

बहुत्वाद्दुःखानां किं वक्तव्यं कियद्वा लेख्यमित्यर्थः । गृहीतार्थो ज्ञाता । गृहीतो-  
ऽर्थो ज्ञेनेति व्युत्पत्तेः । मद्द्विरहेण त्वया यावद्दुःखमनुभूतमस्ति तेनैवानुगीयता मद्दुःख-  
मिति भावः ॥

दोऽपि कस्ताधि केशपाशप्रबंधसां साभिलापमाह—

मअणगिगणो व्व धूमं मोहणपिच्छि व लोअदिट्ठीए ।

जोव्वणधअं व मुद्धा वइइ सुअन्धं चिउरभारम् ॥ ७२ ॥

[मदनाग्रेरिव धूमं मोहनपिच्छिकामिव लोकेदृष्टे ।

बौवनध्वजमिव सुग्धा वदति सुगन्धं चितुरभारम् ॥]

मोहनेति । अन्योऽप्येन्द्रजालिकः पिच्छिकसा मोहं करोतीति भावः ॥

१. 'रागस्थगितो' घ. २. 'प्रतिपदाचन्द्रः' घ. ३. 'आयास' घ. ४. 'वाचा किं म-  
लिष्यति' घ. ५. 'व' घ. ५. 'गृहीतात्र' घ. ७. 'गिहीअ' ख. ८. 'लोच्छस्याः' ग-घ.

सखि, कथय तस्य रूपमिति पृच्छन्तीं संखीमन्या काचिदाह—  
 रूपं सिद्धं चिअ से असेसपुरिसे णिअत्तिअच्छेण ।  
 वाहोहेण इमीए अजम्पमाणेण वि मुहेण ॥ ७३ ॥

[रूपं शिर्षमेव तस्मात्पुरुषे निवर्तिताक्षेण ।

वाप्यार्द्रेणास्य अजल्पतापि मुखेन ॥]

शिष्टमेव कथितमेव ॥

त्रियेण महू श्रीडारसादविदितनिशावसानां सखीं प्रबोधयन्ती सखीं प्रभात-  
 वर्णनमाह—

रुन्दारविन्दमन्दिरमअरन्दाणन्दिआलिरिञ्छोली ।

झणझणइ कसणमणिमेहल व्व महुमासलच्छीए ॥ ७४ ॥

[शृङ्खलविन्दमन्दिरमकरन्दानन्दितालिपङ्क्तिः ।

झणझणायते कृष्णमणिमेखलेन मधुमासलक्ष्म्या ॥]

रुन्द शृङ्खलविन्दं तदेव मन्दिरं तत्र मकरन्देन पुष्परसेनानन्दितेखर्यः । उद्योतन-  
 विभागेप्रतिपादनेन संकेतस्थानस्तुतिपरं दत्त्वा इदं वचनमिति कथितम् ॥

जाताभिलाषः कथिद्विलासी कामपि कामिनीमाह—

कस्स करो बहुपुण्यफलेकतरुणो तुहं विसम्मिहइ ।

थणपरिणाहे मम्महणिह्णकलसे व्व पारोहो ॥ ७५ ॥

[कस्य करो बहुपुण्यफलेकतरोस्तत्र विश्रमिष्यति ।

स्तनपरिणाहे मन्मथनिधानकलश इव प्ररोहः ॥]

परिणाहो विशालता । विशालस्तन इत्यर्थः । पूर्वनिपातानियमात् । प्ररोहः पर्वव. ।  
 मन्मथनिधानकलशे तत्र स्तनपरिणाहे बहुपुण्यफलकतरोः कस्य करः प्ररोह इव विश्र-  
 मिष्यतीत्यन्वयः ॥

यो यच्छील' स तापायादधि तस्यान्मनो निवर्तयेत्तुं न शक्नोतीति निदर्शयमाण-  
 रिक्तः सहचरमाह—

चोरा सभअमैतहं पुणो पुणो पेसअन्ति दिट्ठीओ ।

अहिरकिरअणिहिकलसे व्व पोठवइआयगुच्छन्ने ॥ ७६ ॥

[चोराः समयसन्तृष्णं पुनः पुनः प्रेषयन्ति दृष्टी ।

अहिरक्षितनिधिकलश इव प्रीर्द्वैतिकान्मनोव्यङ्गे ॥]



श्रीः शूरः पतिर्यस्यां सा प्रौढगतिः । चोराः परस्त्रीहारकाः परस्वापहारकाश्च ।  
तथा च सर्पप्रायोऽस्या पतिरन्मान्घातयिष्यतीति मया रप्रश्रुमसमर्था धनि साभिलाष  
पत्न्यन्तीत्यर्थः ॥

प्रवासोन्मुखस्य कान्तस्य गमनप्रतिषेधाय कापि वर्षावर्षनच्छडेनाह—

उद्ध्वहइ णवतणङ्कुरोमश्वपसाहिआइ अङ्गाइ ।

पाउसलच्छीअ पओहरेहिं परिपेह्णिओ विञ्छो ॥ ७७ ॥

[उद्ध्वहनि नमृतुणाङ्कुरोमाश्वप्रसाधितान्वहानि ।

प्रावृत्लक्ष्म्या पयोधरैः परिप्रेरितो विन्ध्य ॥]

पयोधरैर्भेधै । अन्योऽपि कामुक कान्तया पयोधराभ्या स्तनान्यां परिप्रेरितः स-  
रोमाश्वमुद्धहतीति श्वनि ॥

कोऽपि प्रियाया साभिलाषमन्यापदेशेन प्रशंतामाह—

आम वहला वणाली मुखला जलरङ्गुणो जल सिसिरम् ।

अण्णणईणं वि नेवाइ तह वि अण्णे गुणा के वि ॥ ७८ ॥

[संत्य वहला वणाली मुखला जलरङ्गुणो जल सिसिरम् ।

अन्यनदीनामपि रेवायास्तथाप्यन्ये गुणा केऽपि ॥]

आमेति स्त्रीकारे । वहला वितृता वनपङ्क्तिर्वेद्यादिस्थानीया । मुखला सशब्दा ज-  
लरङ्गुण पङ्क्तिविशेषा नूपुरादिस्थानीया । सिसिर अलमङ्गुलरूपशैस्थानीयम् । गुणा  
गाम्भीर्यादय सौभाग्यादयश्च । अन्ये इतरविलक्षणाः । नायकप्ररोचनाय वृत्ता इयमु-  
क्तिरिति वदित् ॥

कोऽपि कस्याधिरसाभिलाष स्तनी वर्णवन्सहचरमाह—

एह इमीअ णिअच्छह परिणअमालूरसच्छहे धणए ।

तुङ्गे सत्पुरिसमणोरहे व्व हिअए अमानन्ते ॥ ७९ ॥

[आगच्छतासा निरीक्षध्व परिणतमालूरसदृशौ स्तनी ।

तुङ्गौ सत्पुरुपमनोरैधाविव हृदये अमान्ती ॥]

मालुरो वित्त्व । प्राकृते द्विवचनबहुवचनयोरैक्यान्मनोरथानिवेत्यर्थः । अतएव व-  
चनभेदनिबन्धन उपमादोषोऽप्यत्र नेति ध्येयम् । पूर्वबहुला उक्तिर्वा ॥

मेधागमस्य कामोदीपकतां सूचयन्ती कापि कान्तानयनाय सखी त्वरयितुमाह—

हत्याहत्थि अहमहमिआइ वासागमम्मि भेहेहिम् ।

अठवो किं पि रहस्स छण्णं पि णहङ्गण गलइ ॥ ८० ॥

[हस्ताहनि अहमहमिकया वर्षांगमे मेपे ।

आश्रये निमरि रहस्य छत्रमपि नमोद्गम्य गन्ति ॥]

नेपेच्छत्रमपीति शोचना ॥

नयी, छिमेवमतिचगलं प्रिय नातुनयसीति वदन्ती तस्यौ वाचिशह—

केत्तिअमेत्तं होहिइ सोदरगं पिअअमरस्स भमिरस्स ।

महिलामअणछुहाउलरुद्धकराविकरयेवधेप्पन्तम् ॥ ८१ ॥

[नियन्मात्र भविष्यति सीमाम्य प्रियतमस्य अमणशीलस्य ।

महिलामदनक्षुधानुलरयाश्रयिष्येपेगृहमाणम् ॥]

मदनलक्षणक्षुधयाबुलेन महिलानां दयाश्रयिष्येण गृहमाणमित्यर्थं । कणाधुचस-  
धैर्यस्य स्वत एवास्य चागस्य यासति । छिमस्य प्रियापरणेनेति भाव ॥

आपि चरन्त सर्वदापरगृहपरघीसभोगल्पट स्वकाठ उचिष्येण कुट्टशन्देन  
परवसतिशब्दा पलायनेच्छुनाह—

जिअयजिअ उवउहसु कुट्टसदेन शक्ति वडिबुद्ध ।

परवसदिवाससद्धिर जिअए वि परम्मि मा भासु ॥ ८२ ॥

[निरगृहेहिणीसुपगृहस्य कुट्टशन्देन शक्ति प्रतिबुद्ध ।

परवसतिवाससद्धिजिजकेजि गृहे मा भेषी ॥]

धणिआशब्द स्वमार्यावचनो देसी । परवसति परगृहम् । वासोऽवस्थानम् ॥

दुर्दिनाभितारिका कान्तमन्यमनस्क कर्तुमाह—

सरपवणरअगलत्थिअगिरिऊहावडणभिण्णदेहस्स ।

धुक्धुवायते जीअ व विज्जुआ कालमेहस्स ॥ ८३ ॥

[सरपवनरयगृहस्तिनगिरिकूटापतनभिन्नदेहस्य ।

धुक्धुवायते जीअ इव विद्युत्कालमेघस्य ॥]

सरपवनेन रयेण वेगेन गलहस्तित प्रेरित अत एव गिरे कूटाच्छृणाद्यदापतनं तेन  
भिन्नदेहो विशीर्णदेहो य कालमेघस्यस्य जीव इव विद्युत्कधुक्धुवायते । कम्पत इत्यर्थं ।  
लोकेऽपि गलवता केनापिगलहस्तितस्योचस्थानात्पतितस्य विशीर्णदेहस्य हृदये कम्पो  
भवतीति भाव ॥

२. 'हस्ताहस्तिकाभि' ग. २. 'यात' ग, 'अहो' घ. ३. 'अमत्त' ग. ४ 'विशे  
पान्युद्धत' ग, 'विशेषवेषमानम्' घ. ५. 'धन्या' ग. ६. 'उपरूहस रे' ग घ. ७ 'गि-  
रिचूदा' ग ८ 'जीवमिव' क ख.

विनाशहेतुमपि मुग्धाः मुखहेतुं वलयन्तीलन्यापदेशेन कोऽपि सहचरमाह—  
तस्मिन्परसरिअहुअवहजालालिपळीविण वणाहोए ।

किंसुअवणन्ति कलिऊण मुद्धहरिणो ण णिकमइ ॥ ८८ ॥

[ताम्रवर्णप्रसृतहुतवहज्ज्वालालिप्रदीपिते वनाभोगे ।

विंसुकवनमिति कलधित्वा मुग्धहरिणो न निष्क्रामति ॥]

अत्र स्वतःसंभविना भ्रान्तिमदलंकारेण परस्त्रीलम्पटः कश्चिद्विनाशहेतुमपि परस्त्री-  
ससर्गं मुधाप्रायं भन्दमानस्तद्ग्रहणं नि.सरतीति वस्तु व्यज्यते ॥

कापि वारं प्रत्यात्मनो वैदग्ध्यं ख्यापयन्ती सखीमाह—

णिहुअणसिप्पं वैह सारिआइ उह्वाविअं म्ह गुरुपुरओ ।

जह तं वेळं माए ण आणिमो कत्थ वच्चामो ॥ ८९ ॥

[निधुवनशिल्पं तथा शारिकयोस्तपितमस्माकं गुरुपुरतः ।

यथा तां वेलां मातनं जानीमः कुत्र व्रजाम. ॥]

निधुवनशिल्पं घृतवैचित्र्यम् । तां वेलां तस्मां वेलायाम् । 'कालकाव्यनोरत्नन्तसं-  
योगे' इति सप्तम्यर्थे द्वितीया । न जानीम इति व्रीडावशादिति भावः ॥

कापि नवयुवत्यनुरक्तचित्तं दान्तमन्यापदेशेनाह—

पच्चगाणुल्लदलुल्लसन्तमअरन्दपाणलेह्लओ ।

तं णत्थि कुन्दकलिआइ जं ण भमरो महइ कीउम् ॥ ९० ॥

[प्रत्यग्लोहलदलोहसन्मकरन्दफानल्लेह्ल. ।

तन्नास्ति कुन्दकलिकाया यन्न भ्रमरो धान्छति कर्तुम् ॥]

सुम्भनादिकं सर्वं कर्तुमिच्छतीत्यर्थः ॥

कापि कस्याधिप्रवयुवत्याः सौभाग्यातिशयमन्यापदेशेनाह—

सो को वि गुणाइसओ ण आणिमो मांभि कुन्दलइआए ।

अच्छीहिं धिअ पाउं अरिहिलस्सइ जेण भमरेहिम् ॥ ९१ ॥

[स कोऽपि गुणातिशयो न जानीमो भौतुलानि बुन्दलतिकायाः ।

अश्लिष्यामेव पातुमभिलष्यते येन भ्रमरैः ॥]

धन्यासां लतानां पुष्पं मुखैः पीयते, इयं तु लनैवाश्लिष्येत्युत्कर्षः ॥

१. 'अविरल' ग. २. 'अविरत' ग. 'तपनशीलहुतवह' घ. ३. 'मुह' ग. ४. 'तव'  
ग घ. ५. 'अस्सइ' ग. ६. 'पाउम्' क. ७. 'लोलुपः' ग. 'लम्पटः' घ. ८. 'महति'  
ग. 'इच्छति' घ. ९. 'पातुम्' घ. १०. 'बहिणि कुन्दकलिआए' ग. ११. 'अदित-  
जह' क-ग. १२. 'जानामि भगिनि कुन्दकलिकायाः' ग. १३. 'मातुति' घ.

नायरुप्रलोभनाय दूषी कम्पाधि सौन्दर्यातिशयमाह—

एष चिअ रूअगुणं गामणिधूआ समुव्वहइ ।

अणिमिसणअणो सअलो जीए देवीकओ गामो ॥ ९२ ॥

[एकैव रूपगुणं ग्रामणीदुहिता समुद्रहति ।

अनिमिपनयनं सैरुलो यया देवीकृन्नो ग्रामः ॥]

न निमिपतीत्यनिमिपम् । अनिमिपं नयनं यस्य स । ग्रामस्थो जनोऽवलोकणीतु  
धादेवा पर्यन्कोऽपि निमेषं न करोतीति भावः ॥

अधरपानाभिलापं सूचयन्कोऽपि ध्वैदग्धमभियोज्यामाह—

मण्णे आसाओ चिअ ण पाविओ पिअअमाहररसस्स ।

तिअसेहिं जेण रअणाअराहि अमअं समुद्धरिअम् ॥ ९३ ॥

[अन्ये आस्ताद् एव न प्राप्तं प्रियतमाधररगस्य ।

त्रिदशैरेण रत्नाकरादमृतं समुद्धृतम् ॥]

प्राणालयहेतुरपि न तथा व्यथयति यथा प्रियविरह इत्यन्यापदेशेन स्नेहदिसार्थं को  
ऽपि प्रियामाह—

आअण्णाअड्डिअणिसिअर्भेहमम्माहआइ हरिणीए ।

अइसणो पिओ होहिइ त्ति वल्लिउ चिर दिट्ठो ॥ ९४ ॥

[आकर्णाकृष्टनिशितर्भेहममर्माहतया हरिण्या ।

अदर्शनं प्रियो भविष्यतीति वैलित्वा चिरं दृष्ट ॥]

न वियते दर्शनं यस्येयदर्शनं । दर्शनागोचरं इति यावत् । 'दुदसण' इति कवि-  
त्पाठः । तत्र दुर्दर्शनो दुर्लभदर्शन इत्यर्थः ॥

कस्यचिदाशं शौर्यं दयापयन्ती सेवाकुशला श्री रातानमुद्दिस्थाह—

विसमट्ठिअपिकेकम्पदसणे तुज्झ सत्तुपरिणोए ।

को को ण पत्थिओ पडिआण डिम्भे रुअन्तम्मि ॥ ९५ ॥

[विषमस्थितपक्केकाअदर्शने तव शत्रुदृष्टिण्या ।

क्व को न प्राथितं पथिकानां डिम्भे रुदति ॥]

डिम्भे बालके रुदति सति तव शत्रुदृष्टिण्या पथिकानां मध्ये कः को न प्राथितः ।

१ 'सूआ गहवणो अहिलत्तण' ग २ 'सुताएहपतेमहिलत्त' ग, 'रूपगुणा' घ.

३. 'सर्वो' ग. ४. 'भदसमुदाहआइ' ग ५ 'दुदसणो' ग. ६. 'भदसमुदाहृतया' ग.

७ 'वल्लित' घ. ८ 'बालके' ग

अपि तु सर्व एवेत्यर्थं । अथमाशय — वदाममनशङ्कासत्तातवेपथुस्स्रगितचरणसंचारम  
शपपरिवारं विहाय बालकमादाय तव शत्रुविलासिनी महारण्य प्राविशत् । तत्र च घन  
घनायमानघनच्छदच्छायतश्निकरनिराहृतदिनकरोत्करदशामाश्रिते बर्त्मनि गच्छती  
शुपीडितस्य बालकस्साकन्दितमोकल्प्य निपुणतरं निरीक्षमाणा विषमशायात्गतम  
कमाघफलमद्राक्षीत् । तत्पातनार्थं च पा धानयाचतेति ॥

कोऽपि सौन्दर्यादिगुणयुक्ता मालाकारस्त्रिय साभिलाष पर्यसहचरमाह—

मालारी ललितलुलितबाहुमूलेहि तरुणहिअआइ ।

उद्धरइ सज्जुद्धरिआइ कुसुमाइँ दावेन्ती ॥ ९६ ॥

[मालाकारी ललितोललितबाहुमूलाभ्या तरुणहृदयानि ।

उद्धुनाति सैधोऽवलूनानि कुसुमानि दर्शयन्ती ॥]

मालाकारी मालाकारस्त्री । ललितान्या मुद्रान्यामुल्लसितान्या चक्षुरभ्यां बाहुमू  
लाभ्यामुपलक्षिता । उद्धुनाति व्याकुलीकरोति ॥

कोऽपि व्याधस्त्रिया स्तनोद्गम साभिलाष वण्यसहचरमाह—

मज्झो पिओ कुअण्डो पड्ढिनुआणा सवत्तीओ ।

जह जह वड्ढन्ति थणा तह तह झिज्जन्ति पञ्च वाहीए ॥ ९७ ॥

[मध्य प्रिय कुटुम्ब पङ्कितुवान सपत्न्य ।

यथा यथा वर्धते स्तनौ तथा तथा क्षीयन्ते पञ्च व्याप्या ॥]

व्याप्या व्याधस्त्रिया ॥

यो वदभिलाषुक स च्छलेनापि स्व(तत्)कार्यं साधयतीति निदशय-कोऽपि सह  
चरमाह—

मालारीए वेह्हलवाहुमूलावलोअणसअहो ।

अलिअ पि भमइ कुसुमगघपुच्छिरो पमुल्लजुआणो ॥ ९८ ॥

[मालाकार्या सुन्दरबाहुमूलावलोकनसत्कृष्ण ।

अलीकमपि भ्रमति कुसुमार्धप्रक्षालील पासुलयुवा ॥]

पासुल परस्त्रीम्पट । अर्धो मूल्यम् । वेह्हल इति मुद्रार्थं देशी ॥

खरभृतपूर्ववृत्तमुरतसंकेतस्यानादिक तवाह न कोऽपीति बद्धत नायक कापि सोप  
रम्भमाह—

अकअण्णुअ घणवण्ण घणत्रण्णन्तरिअतरणिअरणिअरम् ।

जइ रे रे वाणीर रेवाणीर पि णो भरस्ति ॥ ९९ ॥

१ मालाकारस्त्री ग २ 'व्याकु'यति ग ३ 'मध्यस्थितानि घ. ४ 'ददती  
ग ५ कुसुममूल्यप्रक्षालील' ग; कुसुमार्धवृच्छालील घ.

[अहृतज्ञ घनवर्णं घनवर्णान्तरिततरणिकरनिकरम् ।

यदि रे रे वानर रेवानीरमपि न स्मरति ॥]

घनवर्णं मेघश्यामम् । घनैर्निविष्टैः परैरन्तरित आच्छादितस्तरणिकरनिकरः सूत्र-  
रिसमूहो येनेति वानीरविशेषणम् । रे रे इति साक्षेपसञ्चोधनम् । वानीर वेतसकुञ्ज यदि  
न स्मरति तर्हि वा स्मर । रेवाया नर्मदाया गीरे जलमपि कथं न स्मरसीत्यर्थः ॥

वापि गृहपतिमुना हलिकमुतानुरागं विरहवैशुर्थं च प्रतिपादयन्ती हलिकमुतोपाल-  
म्गपुर सरनाह—

मन्दं पि ण आणइ हलिकणन्दणो इह हि उड्डुगामम्मि ।

गह्वइमुआ विघज्जइ अब्बेज्जए कम्म साहामो ॥ १०० ॥

[मन्दमपि न जानाति हलिकनन्दन इह हि दग्धमाने ।

गृहपतिमुता विपद्यतेऽवैशुर्थके कस्य कथयाम् ॥]

मन्दमन्वल्पमपि । अवैशुर्थके वैशुर्थकिते । हलिकपुत्रनिमित्तममन्दपञ्चरात्राणप्रहारज-  
नैरितहृदया प्राग्गणैस्तुता विपद्यते । इतिरपुत्रश्च पशुकल्पः । अतः कस्य कथयामी-  
त्यर्थः ॥

रसिअजणहिअअदइए कइवच्छलपमुहमुकइणिम्मइए ।

सत्तसअम्मि समत्तं सट्टु गाहासहं एअम् ॥

[रसिअजनहृदयदयिते कमिस्सल्लप्रमुखमुकविनिमित्ते ।

सप्तशतके समाप्त पञ्च गाथाशतकमेतत् ॥]

सप्तम शतकम् ।

पशुइन्द्रस्याश्वेवमन्वोन्यानुरागो न पुनस्तवेति कृती मन्दमेह नाशकमुपालक्षुमन्वा-  
पदेतेनाह—

एक्कमपरिरक्षणप्रहारसमुहे कुरङ्गमिहुणम्मि ।

वाहेण मण्णुविअलन्तवाहपोअं धरुं मुक्कम् ॥ १ ॥

[अन्वोन्वपरिरक्षणप्रहारसमुखे कुरङ्गमिधुने ।

ध्याधेन मन्वुदिगैल्लद्व्याणधौत धनुर्मुक्कम् ॥]

प्रहारसमवेऽन्वोन्वस्य परिरक्षणार्थं कुरङ्गमिधुने समुखे स्थिते सति मन्वुना दैन्येन  
दिगलन्वो वापस्तेन धौत प्रक्षालित धनुर्व्याधेन मुक्कम् । त्यक्तमित्यर्थः । 'मन्वुर्दैन्ये  
वती कृषि' इति हेमचन्द्रः ॥

१ 'सुत' ग. २. 'अवैशु' ग. ३. 'एककम्' ग. घ. ४. 'प्रसराद्व्याण' ग.

मन्दभेद नायकमनुकूलयितु दत्ती नायिकाया विरहवैधुर्यमाह—

ता सुहृअ विलम्ब खण भणामि कीअ वि कएण अलमह वा ।

अविआरिअकज्जारम्मआरिणी मरउ ण भणिस्सम् ॥ २ ॥

[तत्सुमग विलम्बख षण भणामि कस्मा अपि कृतेनालमथ वा ।

अविचारितकार्यारम्मकारिणी त्रियता न भणिष्यामि ॥]

सेष्यां काचिद्भ्रतुं प्रामव्यापारिकमहिलानुराग सूक्ष्मन्ती सखीमाह—

भोइणिट्ठिण्णपहेणअचक्खिअदुस्सिक्खिअओ हलिअउत्तो ।

एत्ताहे अण्णपहेणआणँ छीओहअ देई ॥ ३ ॥

[भोगिनीदत्तप्रहेणकास्वादनदु शिक्षितो हलिकपुन ।

इदानीमन्यप्रहेणकाना छी इति वचन ददाति ॥]

भोगिनी प्रामव्यापारिकस्त्री । तया दत्तानि यानि प्रहेणकानि मोदकादिवाचनकानि तेषां चवखणमास्वादनेन तु शिक्षित । 'प्रहेणकं वाचनकम्' इति शारावली । छी इति निन्दानुकरण लोके प्रसिद्धम् ॥

अज्ञातरत्नविरामा क्रीडाप्रसक्ता सर्वो प्रबोधयितु वापि प्रभात वर्णयति—

पञ्चूसमऊहावलिपरिमलणसमूससन्तवत्ताणम् ।

कमलाणँ रअणिविरमे त्रिअलोअसिरी महम्महइ ॥ ४ ॥

[प्रत्यूषमयूखावलिपरिमलनसमुच्चुसत्वत्राणाम् ।

कमलाना रत्नविरामे जितेश्लोकश्रीर्महमहायते ॥]

प्रयूषे मा मयूखावलिर्थादादित्यस्य । पञ्चूशब्द आदित्यवचनो देशीति कथित् । जिता लोका यथा सा तथा । जीवलोकश्रीरिति वाध । महमहायतेऽतिसुरभिर्भवतीत्यर्थः ॥

वापि कस्याधिपरिहासव्याजेन सौभाग्यस्तुतिमाह—

वाउट्ठ्वेल्लिअसाउलि थएसु पुडदन्तमण्डल जहणम् ।

चडुआरअ पइ मा हु पुत्ति जणहासिअ कुणसु ॥ ५ ॥

[वस्तोद्वेहितवस्त्रे स्वगय स्फुटदन्तमण्डल जघनम् ।

चटुकारक पतिं मा सल्लु पुनि जैनहास्य पुरु ॥]

जनैर्हस्यत इति जनहास्य । जनहासास्पदमित्यर्थः । माउलीति वस्त्रवाचको देशी ॥

१ 'भणिष्ये' ग घ. २ 'मोदकभक्षण' घ ३ 'एतावताशेषप्रहेणकानां मुख विधूतन ददाति' ग, 'इदानीमन्यमोदकानामक्षि विकारं ददाति' घ. ४ 'छीवोदय मुखविकार' इति कुलवाल्देव ५. 'जीवलोकश्री' ग, 'आमोदश्री' घ. ६ 'त्रिय' ग ७ 'जनहसितं' ग.

कामुकजनावकाशनिरासाय दूती क्वा पूर्वृतान्यथाभावमाह—  
वीसत्यहसिअपरिसक्किआण पढम जलखली द्विण्णो ।

पच्छा वहुअ गहिओ खुडम्बभारो णिमज्जन्तो ॥ ६ ॥

[विषम्बहसितपरिक्रमाणा प्रथम जलाञ्जलिर्दत्त ।

पश्चाद्ब्रुवा गृहीत कुटुम्बभारो निमज्जन् ॥]

परिश्रुत परिक्रमणम् । कुटुम्बभारानुरोधोद्दिश्यहसितादिह्य चायत्नं त्यक्त-  
मिति भावः ॥

वापि सहया सपरिहास सौन्दर्यप्रशंसामाह—

गम्मिहिसि तस्स पास सुन्दरि मा तुरअ वहुउ मिअक्को ।

हुद्धे हुद्ध मिअ चन्दिआइ को पेच्छइ सुह दे ॥ ७ ॥

[गमिष्यति तस्य पार्श्वं सुन्दरि मा त्वरस्य वर्धतां मृगाह् ।

दुग्धे दुग्धमिव चन्द्रिकाया क प्रेक्षते मुख ते ॥]

वापि ग्रामणीपुत्र प्रलनुरागातिशय सूचयन्ती समानशीलां मातुलानीमाह—

जइ जूरइ जूरउ पान मामि परलोअवलणिओ लोओ ।

तह वि थला गामणिणन्दणस्स वअणे वलइ दिट्ठी ॥ ८ ॥

[यदि खिद्यते खिद्यता नाम मातुलाणि परलोकव्यसनिको लोकः ।

तथापि बलाद्ग्रामणीन दनस्य वदने बलते दृष्टि ॥]

नायिकाया वनुरागातिशय प्रतिपादयन्ती दूती नायकमाह—

गोह व वित्तरहिअ णिज्जरकुहर व सलिलसुण्णविअम् ।

गोहणरहिअ गोट्ट व तीअ वअण तुह विओए ॥ ९ ॥

[गृहमिव वित्तरहित निर्जरकुहरमिव सैलिलशून्यम् ।

गोपनरहित गोष्ठमिव तस्या वदन तत्र वियोगे ॥]

न शोभत इति शेषः ॥

कस्याधिष्ठानावारतन्वयमनुरागातिशय च प्रतिपादयती दूती नायकमाह—

तुह दसणेण जणिओ हमीअ लज्जाउलाइ अणुराओ ।

दुग्गअमणोरहो विअ हिअअ थिअ जाइ परिणामम् ॥ १० ॥

१ 'विषम्बहसितपरिक्रिस्ताणा' ग, 'विभस्तहसितपरिश्रुताना' घ. २ 'खि-  
द्यति खिद्यतु नाम भविनि' ग, 'कुप्यति कुप्यतु नाम मातुलि' घ. ३ 'सलिलशून्यी-  
कृतम्' ग.



[तव दर्शनेन अनितोऽस्या लज्जाह्युकाया अनुरागः ।

दुर्गतमनोरथ इव हृदय एव याति परिणामम् ॥]

लज्जावशात्कुत्रापि न वदतीत्यर्थः ॥

किमिति कृशासीति विदेशादागत्य हासपूर्वकं पृच्छन्तं कान्तं प्रति नायिकाया उक्ति-  
दोशलं कापि सखीशिक्षार्थमाह—

जं तणुजाअइ सा तुह कएण किं जेण मुच्छसि हसन्तो ।

अह गिम्हे मह पअई एव्वं भणिऊण ओरुण्णा ॥ ११ ॥

[या तन्नूयते सा तव कृतेन किं येन पृच्छसि हसन् ।

असौ ग्रीध्मे मम प्रकृतिरिति भणित्वारुदिता ॥]

या महिला तन्वी भवति सा सर्वा त्वभिमितमिति नियमो नास्तीत्यर्थः । किमिति  
तर्हि तव कार्यं तत्राह—असाविति । अह इत्यसावित्यर्थे देशी ॥

अविच्छिन्नप्रियाल्लिङ्गनाभिलाषमहमनः प्रकाशयन्ती काप्यन्यापदेशेन वदभमाह—

वण्णवमरदिअस्स वि एस गुणो णवरि चित्तकम्मस्स ।

णिमिस्स पि जं ण मुद्धइ पिओ जणो गाढमुवऊढो ॥ १२ ॥

[वर्णक्रमरहितस्याप्येष गुणः केवलं चित्तकर्मणः ।

निमिषमपि यत्र मुञ्चति प्रियो जनो गाढमुपगूढः ॥]

वर्णक्रमो हरितपीलादिवर्णविन्यासः । चित्रकर्मण आलेह्यस्य । चित्रे प्रिययोपगूढः

प्रियः प्रियां क्षणमपि न मुञ्चतीत्यर्थः । यद्वा वर्णक्रमो गुणविशुद्धिपरम्पर तद्रहितस्य ।

चित्रस्य विचित्रस्य कर्मणः । धर्माधर्मादिरूपस्वेत्यर्थः । आत्मा धर्माधर्मादिक क्षणमपि

न मुञ्चतीत्यर्थः । केचित्तु प्राज्ञाणादिवर्णक्रमरहितस्यापि चित्तभ्रमणो चित्तजन्मनो

मन्मथस्यायं कोऽपि गुणो येन प्रियः प्रियां क्षणमपि न त्यजतीत्यर्थ इति व्याचक्षते ॥

कोमलं नवोदामविदग्ध. कोऽपि रमयतीत्यन्यापदेशेन कापि सखीमाह—

अविहत्तसंधिवन्धं पदमरमुवमेअपाणलोहिलो ।

एव्वेल्लिउं ण आणह खण्डइ कलिआमुहं भमरो ॥ १३ ॥

[अविमत्तसंधिवन्धं प्रथमरसोद्रेदपानर्तुब्धः ।

उद्वेल्लितुं न जानाति खण्डयति कलिकामुखं भ्रमरः ॥]

अत्र कलिकाममुपपन्नान्तव्याजेनास्तुद्विन्नवय-संधि नायिकामविदग्धः कोऽप्युपमो-

१. 'लज्जालो.' ग, 'लज्जावत्या.' घ. २. 'तन्वीभवति' ग. ३. 'कृते' ग-घ.  
४. 'अथ' ग, 'एषा' घ. ५. 'एवैवं भणित्वा रोदितुं तत्रा' ग. ६. 'चित्तभ्रमस्त'  
ग. ७. 'चित्तजन्मनः' ग. ८. 'जोनिष्ठ.' ग, 'अपदान्' घ. ९. 'उद्वेल्लितु' ग.

कुमिच्छन्ति । न च जानाति केवलं पीडयतीति बहु व्यन्यते । उद्धेलितुं विद्यापयि-  
शम्, पक्षे संसुखीकर्तुम् ॥

विपरीतरताय प्रियामुत्साहयितु कथिदाह—

दरवेविरोरुजुअलासु मउलिअच्छीसु लुलिअचिहुरासु ।

पुरिसाइरीसु कामो पिआसु सज्जाउहो वसइ ॥ १४ ॥

[ईषेद्रेपनरीलोरुपुगलासु मुकुलिताशीसु लुलितचिहुरासु ।

पुरुषायितशीलासु कामः प्रियासु सज्जायुषो वसति ॥]

ममाप्रियं कर्तुं नाईसीति वदन्तं वान्तं मानिनी तोद्रेगमाह—

जं जं ते ण सुहाअइ तं तं ण करोमि जं ममाअत्तम् ।

अहअं चिअ जं ण सुहामि सुहअ त किं ममाअत्तम् ॥ १५ ॥

[यद्यत्ते न मुंखायते तत्तन्न करोमि यन्ममायत्तम् ।

अहमेव यत्त मुंखाये मुगम तत्किं ममायत्तम् ॥]

न मुंखाये न मुखायामि ॥

क्यालापाय प्रियं समुत्साहयितु कुलटा लज्जास्वभावमाह—

वावारविसंवाअं सअलावअवाणं कुगइ हअलज्जा ।

सवणाणं उणो गुरुसंणिहे वि ण णिरुअइइ गिओअम् ॥ १६ ॥

[व्यापारविसंवाद सवलावयवाना करोति हतलज्जा ।

श्रवणयो पुनर्गुरुसंनिधावपि न निरुणद्धि नियोगम् ॥]

विसंवादो व्यापातः । नियोगो व्यापार । त्वदासक्तया नेत्रादिव्यापारः सर्व ए  
विसंवादं प्राप्तः । केवलं शशुरादिसनिधावपि त्वत्कथाश्रवणे श्रवणी व्यापारयतीति ना  
यक प्रति दृतीवचनमिदमिति कथित् ॥

आगतप्रायस्ते प्रेयानिति सखीभिराश्रयिता प्रोषितमर्तुका सनिर्वेदमाह—

किं भणह मं सहीओ मा मर दीसिहइ सो जिअन्तीए ।

कज्जालाओ एसो सिणेहमग्गो लेंण ण होइ ॥ १७ ॥

[किं भणथ मा सख्यो मा प्रियस्त ईक्ष्यते स जीवन्त्या ।

कार्यालाप एष ओहमार्ग पुंनर्न भवति ॥]

१. 'होइ' ख. २. 'दरवेपन' घ. ३. 'सुखयति' ग. ४. 'सुखयामि' ग,  
'सुखये' घ. ५. 'चिअ' ग. ६. 'ईक्ष्यसे प्रिय जीवन्ती' ग. ७. 'एव' ग.

भवतीभिर्यदुच्यते तत्कार्यपर्यालोचनयानुष्ठातुं शक्यते । न च क्षेत्रः कार्यं पर्यालोच-  
यतीत्यर्थः ॥

मन्दक्षेत्रं निष्करणं च नायकमुपालब्धुमन्यापदेशेन काचिशह—

एकलमओ दिट्टीअ मइअ तह पुलइओ सअहाए ।

पिअजाअस्स जह, धणुं पडिअं वाहस्स हत्थाओ ॥ १८ ॥

[एकाकी मृगो दृष्ट्वा मृग्या तथा प्रलोकितः सतृष्णया ।

प्रियंजायस्य यथा धनुः पतितं व्याधस्य हस्तात् ॥]

मृग्याश्चधुर्निभालनेनात्मीयप्रियाविलोचनमनुस्मरतो व्याधस्य इत्तरकृष्णया धनुः  
पतितमित्यर्थः । अतिपामरस्य द्विसस्य व्याधस्यान्वेवं कृष्णा क्षेत्रे, नतु तवेति  
भावः ॥

नायिकायाः सौन्दर्यातिशयं प्रतिपादयन्ती दूती चलदृत्तं नायकमन्यापदेशेन सोपा-  
लम्भमाह—

पैलिणीमु भमसि परिमळसि सत्तलं मालई पि णो मुअसि ।

तरलत्तणं तुह अहो महुअर जइ पैडला हरइ ॥ १९ ॥

[नैलिनीपु भ्रमसि परिमृद्वासि सत्तलां मालतीमपि नो मुषसि ।

तरलत्वं तनाहो मधुकर यदि पैदला हरति ॥]

‘सत्तला नवमालिका’ इत्यमरः । कस्याचिच्छिष्टे भ्रमस्येव काचिपीडवस्येव का-  
चिद्वचनमात्रेण संभावयति । एतच्च तत्र चासत्त्वं पाटलवर्णा सैवापहर्तुं समर्था ना-  
न्येति भावः ॥

कामुक्जनप्रलोकनाय दूती नायिकायाः स्तनौ वर्णमति—

दोअहुलअकपालअपिणद्धसविसेसणीलकधुइआ ।

दावेइ थणात्थलवणिअं व तरुणी जुअजणाणम् ॥ २० ॥

[द्विषद्गुलककपाटकपिनद्धसविशेषणीलकधुक्किा ।

दर्शयति स्तनस्थलवर्णिकामिव तरुणी युवजनेभ्यः ॥]

यद्गुलपरिमितं रुचिबन्धस्थले कपाटवत्पार्श्वद्वये यद्भवति तत्कपाटकम् । तेन पि-  
नद्धो नीलकधुको यस्याः सा । तथा च तत्र स्तनैकदेशदर्शनाद्वर्णिकामिव दर्शयतीत्यु-  
त्प्रेक्षा । वस्तुपरिधानं यद्गुलैकदेशप्रदर्शनं तद्वर्णिकेत्युच्यते ॥

१. ‘एकामृगो’ घ. २. ‘प्रियजानेतिव्युचितम्’. ३. ‘कमलेषु’ ग. ४. ‘कृ-  
त्यपाडला’ ख. ५. ‘कमलेषु’ ग. ६. ‘कचित्पपाटला’ घ. ७. ‘यद्गुलकृतजालक’  
घ. ८. ‘कमुका’ ग. ९. ‘यून.’ ग, ‘यूनम्’ घ.

प्रतीकारोऽपि क्विदपकाराय भवतीति निर्दशयन्काधितसयायमाह—

रक्तेऽ पुत्तअं मत्थएण ओच्छोअअं पडिच्छन्ती ।

अंसुहिं पडिअपरिणी ओद्धिज्जन्तं ण लक्तेऽ ॥ २१ ॥

[रक्षति पुनकं मस्तेकेन पैटलप्रान्तोदकं प्रैतीच्छन्ती ।

अथुभिः पथिकगृहिणी आर्द्राभवन्त न लक्षयति ॥]

ओच्छोअअ इति च्छदिप्रान्तजलार्धको देशीशब्दः । प्रतीच्छन्ती गृह्णती ॥

सरस्वीरस पथिकाक्रान्तरवेन सकेतस्थानमहं जारं श्रावयन्ती वापि शरदूर्णनच्छले-  
नाह—

सरए सरम्मि पडिआ जलाइँ कन्दोदसुरदिगन्धाइँ ।

धवलच्छाइँ सअह्णा पिअन्ति दइआणँ च मुहाइँ ॥ २२ ॥

[शरदि सरसि पथिका जलानि नीलोत्पलसुरभिगन्धीनि ।

ध्वलाच्छानि सतृष्णा विदन्ति दयितानामिव सुखानि ॥]

कन्दोद नीलोत्पलम् । तेन सुगन्धीनि । पक्षे तद्गतसुगन्धीनि । धवलानि च तान्य-  
च्छानि च । पक्षे धवलाक्षाणि । धवलनयनानीत्यर्थः । सतृष्णा. सपिपासा । पक्षे सा-  
भिलाषा ॥

षट्ममयादनागच्छन्तं नायकं प्रति दूतीमार्गस्य शुभमलप्रतिपादनच्छलेन नायि-  
काया अतुरागातिशय प्रतिपादयन्ती भाह—

अरुभन्तरसरसाओ उवहिं पव्वाअवद्धपङ्काओ ।

चङ्कम्मन्तम्मि जणे समुस्ससन्ति व्व रच्छाओ ॥ २३ ॥

[अभ्यन्तरसरसा उपरि प्रैवातवद्धपङ्का ।

चङ्कममाणे जने समुच्छ्रसन्तीव रैथा ॥]

प्रवातेन प्रवृष्टवातेन वद्धः पद्मे वासु ताः । अत्र समासोपलक्षकारेण प्रवातप्रायशु-  
रजनभयेनोपरि हृष्टत्वेऽभ्यन्तरत्वरक्तत्व नायिकाया व्यज्यते ॥

पिठक्कणावकीर्णी कस्याबिस्तनी सामिलायं वर्णयत्रागरिकं सहचरमाह—

सुहपुण्डरीअछाआइ संठिआ उअह राअहंसे व्व ।

छणापिट्टुसुट्टुणुच्छलिअधूलिधवले धणे वहइ ॥ २४ ॥

१. 'अच्छोदकं' ग घ. २. 'प्रतीक्षमाणा' घ. ३. 'वमल' घ. ४. 'धवलानि'  
५. ६. 'आननावद्धपङ्का' ग, 'पिठक्कणावकीर्णी' घ. ७. 'वद्धमति' ग. ८. 'प-  
नात' ग. .

[मुखपुण्डरीकच्छायाया सस्थितौ पश्यत राजहंसाविव ।  
दृषणपिष्टकुट्टनोच्छलितधूलिधवलौ स्तनौ वहति ॥]

क्षण उत्सवः ॥

कयोश्चिदन्योन्यान्तरागं प्रकटयन्नागरिकः स्ववैदग्ध्यहयापनार्थमाह—

तह तेणवि सा दिट्ठा तीअ वि तह तस्स पेसिआ दिट्ठी ।

जह दोण्ह वि समअं चिअ णिव्वुत्तरआइं जाआइं ॥ २५ ॥

[तथा तेनापि सा दृष्टा तथापि तथा तैस्त्रै प्रेषिता दृष्टिः ।

यथा द्वैवपि सममेव निर्वृत्तरतौ जातौ ॥]

सममेव एककालमेव ॥

जारं प्रत्यभिसाररसिकता सूचयन्ती बुलटा प्रीष्मवर्णनमाह—

त्राउलिभापरिसोसण कुंडङ्गपत्तलणसुलहसंकेअ ।

सोहृगगकणअकसवट्ट गिम्ह मा कह वि झिज्जिहिसि ॥ २६ ॥

[स्वल्पस्वातिदापरिशोषण निकुञ्जपत्रकरणसुलभसवेत ।

सौमान्यकनकवपट्ट श्रीष्म मा कथमपि क्लीणो भविष्यसि ॥]

वाउलिआशब्द स्वल्पस्वातिकाया देशी । स्वल्पस्वातिकाना परिशोषणेन निकुञ्जानां  
पत्रसपत्न्या च सुलभं संकेतो यत्र स तथेति प्रीष्मसंबोधनम् ॥

दुर्जनससर्गादुद्दिग्गुणशालिनं विदग्धा काप्यन्यापदेशेन प्रवृत्तिपाटवार्थमाह—

दुसिसकिरअरणपरिकरएहिं चिट्ठोसि पत्थरे तावा ।

जा तिलमेत्त वट्टसि मरगअ का तुम्ह मुल्लकहा ॥ २७ ॥

[द्वि शिक्षितरत्नपरीक्षकैर्धृष्टोऽसि प्रस्तरे तावत् ।

यावत्तिलमात्र वर्तसे मरकत वा तत्र मूलकथा ॥]

दु शिक्षितो अतत्त्वज्ञा दुर्बिदग्धाश्च । अह स्वतिशयितव्युत्पन्ना सर्वे तत्त्व जानामीति  
भावः ॥

पत्नीनिवासिन्या विलासिन्या दूती पत्नीमश्रुश्रुयानाघच्छन्तं तत्त्वान्तं तत्समीपगम-  
नायोत्साहयितुमाह—

जैह चिन्तेइ परिअणो आसङ्कइ जह अ वस्म पडिवकरो ।

घालेण वि गामणिणन्दणेण सैह रकिरआ पत्ती ॥ २८ ॥

१. 'धन' घ. २. 'तस्य' घ. ३. 'द्वयोरपि सममेव निर्वृत्तरतानि जातानि' घ.

४. 'णिव्वुत्त' ख. ५. 'वापिका' घ. ६. 'क्षयिष्यसि' घ. ७. 'तह' ग. ८. 'तह'

नास्ति.

[यथा चिन्तयति परिजन आशङ्कते यथा च तस्य प्रतिपद्यः ।

बालेनापि ग्रामणीनन्दनेन तेषां रक्षिता पत्नी ॥]

कथमनेन बालेन रक्षा कर्तव्येति परिजनचिन्तयति । बालोऽयमस्माभिर्प्रांश इति प्र-  
तिपश्याच्चिन्तयतीत्यर्थः ॥

पतुष्विकमशुण व्यापयन्ती व्याधवधू पृषतचर्मं पृच्छन्त पथिकमाह—

अण्णेषु पहिअ पुच्छसु वैहअपुत्तेसु पुसिअचन्माइ ।

अम्ह वाहजुआणो हरिणेषु घणुं ण णामेइ ॥ २९ ॥

[अन्येषु पथिक पृच्छ व्याधकपुत्रेषु पृषतचर्माणि ।

अस्माक व्याधयुवा हरिणेषु घनुर्ने नामयति ॥]

पृषतो मृगविशेष । 'गोवर्णपृषतैश्वरोहिताश्वमरो मृगा ' इत्यमरः । प्रचण्डदोर्वण्ड-  
यलमदोहोऽय कथयथा मृगान्न इन्ति । किंतु मत्तमातज्ञानिति भावः ॥

वधू प्रति वामुया व्याधमाता घन्धुजनमाह—

गअचहुवेह्वअरो पुत्तो मे एककण्डविणिज्जाई ।

तह सोह्हाइ पुँछइओ जह कण्डवरण्डअ वहइ ॥ ३० ॥

[गजवधूर्वैधव्यकर पुत्रो मे एककाण्डविनिपाती ।

तथा स्तुपया प्रैलोरितो यथा वाण्डसमूह वहति ॥]

'विण्डिओ इति कचित्पाठः । तत्र विल्लित शोषित इत्यर्थः । वरण्डक समूहः ।  
अयमर्थः—पूयमसौ मत्पुत्र एवैव शरेण मत्तमातज्ञाहरवा तद्वधूना वैधव्य कृतवान् ।  
सप्रति वधूतक्त शरसमूहमेव वहति, नतु किमपि कर्तुं क्षम इत्यर्थः ॥

ग्रामणीभार्या शत्रु विजित्य सङ्ग्रामादापतस्य शत्रुभियस्य भर्तुर्मनस्विनो मानवला-  
निध्रवणाभरणमाशङ्कमाना तन्निवारणाय परिजनमाह—

विब्झारुहणालाव पत्नी मा कुणउ ग्रामणी ससइ ।

पथजिविओ जइ कह वि सुणइ ता जीविअ मुअइ ॥ ३१ ॥

[विन्ध्यारोहणालाप पत्नी मा करोतु ग्रामणी श्वसिति ।

प्रत्युज्जीवितो चेदि कथमपि शृणोति तज्जीवित शुचति ॥]

पत्नीनिवर्तितो भयादिभ्यारोहणकथां मा करोतु । अस्मिन्जीवति कुतो भयमिति

१ 'तथा' ग. २ 'तथा' ग पुस्तक नास्ति ३ 'वाहकुड्ढम्भेषु' ग ४ 'व्याधकु-  
ड्ढम्भेषु' ग ५ 'विल्लितो' ग ६ 'विनिपाती' घ. ७ 'विल्लितो' ग, विक-  
तो घ. ८ 'काण्डक घ. ९ 'यथा' घ.

भाव । श्रुतिरिति जीवति । प्रत्युज्जीवितः प्रत्यागतप्राणो यदि शृणोति तदा पञ्जीनिवासि-  
जनपलायनश्रवणजातमानभक्तो जीवितमेव जह्यादित्यर्थः ॥

यो यस्य स्त्रियं स म्रियमाणोऽपि तस्य हितमेवोपदिशतीति निदर्शयन् कोऽपि सह-  
चरमाह—

अप्याहेइ मरन्तो पुत्रं पल्लीवई पअत्तेण ।

मह णामेण जह तुमं ण लज्जेसे तह करेज्जासु ॥ ३२ ॥

[शिक्षयति म्रियमाण पुत्र पल्लीपति प्रयत्नेन ।

मम नाम्ना यथा त्व न लज्जेसे तथा करिष्यमि ॥]

अप्याहेइ शिक्षयति सदृशतीति वार्थः । य खलु निर्गुणो भवति सोऽयुक्तस्य पुत्रो-  
ऽयमिति व्यपदिश्यते पूज्यते चेति नाम्नो लज्जाहेतुत्वम् । गुणवास्तु स्वर्पोक्ष्येणैव ह्यदातो  
भवतीति भावः ॥

धनुकूले विधावमङ्गलान्यपि मङ्गलानि भवन्तीति निदर्शयन्कोऽपि सस्त्रायमाह—

अणुमरणपत्तियआए पञ्चागअजीविए पिअअमम्मि ।

वेह्वमण्डणं कुलवहूअ सोहग्गअं जाअम् ॥ ३३ ॥

[अनुमरणप्रस्विताया प्रत्यागतजीविते म्रियतमे ।

वैधव्यमण्डन कुलवध्ना सौभाग्यक जातम् ॥]

दन्तचिह्नं दृष्ट्वा परतीसङ्गशङ्कया पशुकल्पानां पामरीणामपीर्ष्या भवति निरपराधे  
पत्नौ, किं पुनरस्मा महाकुलीनाया शीलादार्यादिगुणसंपन्नाया सापराधे त्वयि । अत्र-  
पादयो पतिर्वेना प्रसादयेत्तनुनयविमुख नायक प्रति दृष्ट्वाह—

नहुमच्छिआइ दट्टं दट्टूण सुहं पिअस्स सूणोठुम् ।

ईसाळुई पुलिन्दी हकसच्छाअं गभा अण्णाम् ॥ ३४ ॥

[मधुमक्षिकया दष्ट दृष्ट्वा मुखं विर्यलोच्छूनोष्टम् ।

ईर्ष्यालु पुलिन्दी वृक्षच्छाया गतान्याम् ॥]

पत्न्या सह कृतकल्हा सा त्वत्समागमाभिवापिणी तिष्ठतीति जारं प्रति दृष्ट्वा इयम-  
किरिति कथितः ॥

गिरिग्रामप्रवेशाच्छेनासती जारं प्रति खच्छ-दाभिसारस्पृहामाह—

धण्णा वसन्ति णीसङ्गमोहणे वहलपत्तलवैइम्मि ।

वाअन्दोलणओणविअवेणुगहूणे गिरिग्गामे ॥ ३५ ॥

[धन्या वसन्ति नि शङ्कमोहने बहलपत्रलधृती ।

वैतान्दोलनावनामितवेणुगहने गिरिप्रामे ॥]

निशङ्क मोहन मुरत यत्र स । तथा बहलैरुचतरे पत्रले पत्रबहुलैरर्षादृक्षैरतिर्वर्धनं यत्र ॥

गिरिप्रामगमनाय नायकमुत्साहयती दूती वर्षागमनकृत तेषां रामणीयकातिशयमाह—

पप्फुल्लघणकलम्बा णिद्धोभसिलाभला मुद्गमोरा ।

पसरन्तोज्जारमुहला ओसाहन्ते गिरिगामा ॥ ३६ ॥

[प्रोत्फुल्लघनकदम्बा निर्घोतशिलातला मुदितमयूरा ।

प्रेसरन्निर्जरमुखरा उत्साहयन्ति गिरिप्रामा ॥]

अत्र प्रथमविशेषणेन सभोगोद्दीपनविभाव, द्वितीयेन शयनस्थलम्, तृतीयेन संभोगानन्तरं विनोदसभारं, चतुर्थेन स्तनितमणितादिध्वनिनिबन्ध प्रतीपाद्यते ॥

गीरसायामपि रसोत्पादकरवमन्यापदेशेन कथयन्ती दूती नायकस्य सुरतोपचारचासुर्यं कामिनीजनानुरञ्जनायमाह—

तद् परिमलिता गोत्रेण तेण हृत्थ पि जा ण ओल्लेइ ।

स चिअ धेणू एहिं पेच्छसु कुडदोहिणी जाआ ॥ ३७ ॥

[तथा परिमलिता गोत्रेण तेन हस्तमपि यार्द्रयति ।

सैव धेनुरिदानीं प्रेक्ष्य पुटदोहिनी जाता ॥]

तथा तेन प्रकारेण स्तनपृष्ठादिपरामर्शेन, पक्षे वरिदस्तादिविन्यासेन । पुनो पट । पटपूर्णं दुग्धं ददातीत्यर्थं । पक्षे बहुतरं सरत्तल क्षरतीत्यर्थं ॥

कापि कस्यापि त्रीभाग्यातिशयमन्यापदेशेनाह—

धवलो जिअइ तुह कए धवलसस कए जिअन्ति गिट्ठीओ ।

जिअ तन्वे अम्ह वि जीविण्ण गोठु तुमाअत्तम् ॥ ३८ ॥

[धवलो जीवति तत्र वृत्रे धवलस कृते जीवति गृष्टय ।

जीव हे गौ अस्माकमपि जीवितेन गोष्ठं त्वदायत्तम् ॥]

तम्बा गौ, धवलो पृथग्ग्रेष्ठ । 'धवला गवि । वृषभग्रे पुमान्' इति मेदिनीकोषः । गृष्टिरेकवारप्रयुक्ता गौ । 'अथ गृष्टिं सकृत्प्रसूतगवि' इति मेदिनीकोषः ॥

१. 'वने' ग घ. २. 'वाता दोलनचलद्वेषु' ग. ३. 'उभगाहन्त, ग ४. 'प्रसरन्तो सर' घ. ५. 'गृष्टय' ग.



यो यस्य प्रियस्तस्य तदवयवानुकारिणि प्रीतिर्भवतीति निदर्शयन्कोऽपि ।  
माह—

अग्घाइ छिवइ चुम्बइ ठेवइ हिअअम्मि जणिअरोमञ्चो ।

जाआकवोलसरिसं पेच्छइ पहिओ महुअउप्फम् ॥ ३९ ॥

[आजिप्रति स्पृशति लुम्बति स्थापयति हृदये जनितरोमाश्चः ।

जायाकपोलसदृशं पश्यत पथिको मधूकपुष्पम् ॥]

नातेस्त्वविकारणक्षमो भवतीति दर्शयन्कोऽपि मध्याह्नवर्णनमाह—

उअ ओल्लिज्जइ मोहं भुअंगकित्तीअ कइअलग्गाइ ।

ओज्जरधारासद्दालुएण सीसं वणगएण ॥ ४० ॥

[पश्याद्रीं कियते मोघं भुजंगकृत्तौ कटकलग्नायाम् ।

निर्झरधारासद्दालुकेन शीघ्रं घनगजेन ॥]

'अप्पिज्जइ' इति पाठे अर्प्यत इत्यर्थः । मोघं निरर्थकम् । कृत्तौ कबुके । क-  
नार्थात्प्रचण्डातपततेन । आरस्थान्यमनस्कतासपादनार्थं मध्याह्नाभिगारिकाया उचि  
पूर्वनाथिकां विहाय गुणान्तरलोभेन नाथिकान्तरगामिनं नायकं काव्यन्य  
शेनाह—

कमलं भुअन्त महुअर पिक्कइत्थाण गन्धलोहेण ।

आलेक्खलडुअं पामरो व्व छिविऊण जागिहिंसि ॥ ४१ ॥

[कमलं सुयन्मधुकर पङ्ककपित्थानां गन्धलोभेन ।

आलेख्यलङ्गुकं पामर इव स्पृष्टा ज्ञासति ॥]

यथा ह्यनभिज्ञः पामरश्चित्रस्थं मोदकादिकमालोक्यन्मोदमानः करस्थं अश्वम-  
सन्निपृष्टया गतः स्पृष्ट्वा तत्स्वरूपमवधार्य खिद्यते, एवं त्वमपि नीरसकर्कशस्पर्श  
स्थस्य गन्धेनाकृष्टचेताः कमलं मुच्यन्स्पर्शनसमनन्तरमेतयोन्तरं ज्ञास्यतीति भावः  
काव्यासप्रविवाहाया सखीजनं सपरिहासमाह—

गिज्जन्ते मङ्गलगाइआहिं वरगोत्तदिण्णअण्णाए ।

सोउं व णिग्गओ उअह होन्तवहुआइ रोमञ्चो ॥ ४२ ॥

[गीयमाने मङ्गलगौथिकाभिर्वरगोत्रदत्तकर्णयाः ।

भोतुमिव निर्गर्तः पश्यत सविष्यद्वधूकाया रोमञ्चः ॥]

गोत्रं नाम ॥

आमन्नविवाहा व्यभिचारशीला काचित्पुष्पितं संकेतवेतसनिकुप्रमालोकयोत्रेश्वरे—

मण्णे आअण्णन्ता आसण्णविआहमङ्गलुग्गाइम् ।

तेहिं जुआणेहिं समं हसन्ति मं वेअसकुडङ्गा ॥ ४३ ॥

[मैत्र्ये आकर्णयन्त आसन्नविवाहमङ्गलोद्गीतम् ।

तैर्युवभिः समं हसन्ति मां वेतसनिकुञ्जाः ॥]

वैः समं पूर्वं सुरतसौख्यमनुभूतं तैः सममित्यर्थः ॥

बन्धुजनप्रीतये काचिदचिरवृत्तविवाहयोर्दैन्योरन्योन्यानुरागमाह—

उअगअचउत्थिमङ्गलहोन्तविओअसविसेसलग्गेहिं ।

तीअ वरस्स अ सेअंसुएहिं रुण्णं व हृत्येहिं ॥ ४४ ॥

[उपगतचतुर्थीमङ्गलमविष्यद्वियोगसविशेषलघाम्याम् ।

तस्मा वरस्य च खेदाश्रुमी रुदितमिव हस्ताभ्याम् ॥]

उपगते चतुर्थीमङ्गले वियोगो भविष्यतीति भयेन सविशेष लघाम्बामित्यर्थः । चतुर्थी

कृत्वा जामाता स्वग्रह गच्छतीति लोकव्यवहारः ॥

नववधूसंगमस्थालौकिकचमरकारित्वं प्रतिपादयन्त्रोऽपि सहचरमाह—

ण अ दिट्ठिं णेइ मुहं ण अ छिविउं वेह णालयइ किं पि ।

तह वि हु किं पि रहस्सं णववट्टसण्णे पिओ होइ ॥ ४५ ॥

[न च दृष्टिं नयति मुहं न च स्पष्टं ददाति नालपति विमपि ।

तथापि खलु विमपि रहस्यं नववधूर्गृह्णति यो मयति ॥]

अत्र प्रियत्वहेतुमन्तरेणापि प्रियत्वमिति रिभावनालंकारः । 'नियावा. प्रतिरेषेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना' इति तद्व्युत्पत्त्या ॥

बालाया वाम्बेन कुपितं परं प्रगादयितुं कापि नववधुः स्वभावमाह—

अलिअपमुत्तवळन्तम्मि णवपरं णययहूअ धेवन्तो ।

संवेद्धिओरुसंजमिअवन्धरणिंठु गओ हएथो ॥ ४६ ॥

[अलीकप्रसुप्तवधुमानं नववधुं नववधुः षोभानः ।

संवेष्टितोरुसंजयितवधुप्रसुप्तं गतो हसः ॥]

अलीकप्रसुप्तवधुः षोभानः नववधुः गतो हसः ॥]

१. 'चेअति' म. ग. २. 'जामाति' ग. ३. 'आपे' ग. ४. 'केरि' ग. ५. 'एत' चतुर्थी घ. ६. 'एत' ग. ७. 'प्रसुप्तं वरि' ग. ८. 'इतिरेषे' ग.

भ्यामूहभ्या उयमितस्य वधस्य प्रन्थि नववध्वा हस्तो गत्र इति सवन्थ । स्वभाव एवार्थं  
शालानाम् । नतु कोपेनेति भाव ॥

नववधुविघ्नम्भणानमिहेन कान्तेन कोपिताया वस्पाधिदवस्थां कापि सखीमाह—  
पुच्छिजन्ती ण भणइ गहिआ पप्फुरइ चुम्बिआ रुअइ ।  
तुङ्गिका णववहुआ वआवराहेण उवउटा ॥ ४७ ॥

[पुच्छघमाना न भणति गृहीता प्रस्फुरति चुम्बिता रोदिति ।  
तूष्णीका नववधू कृतापरधेनोपगृह्णा ॥]

समलभावेऽपि नववधूर्बलादुपभोक्तव्येति नायक प्रति दूत्या लक्षिर्वा ॥  
पुन पुन वस्यचित्तया कुर्वती कामप्युपहसती कापि मातृभगिनीमाह—  
तत्तो च्चिअ होन्ति कहा विअसन्ति तहिं तहिं सम्पन्ति ।  
किं मण्णे माउच्छा एकजुआणो इमो गामो ॥ ४८ ॥

[तेत एव भवति कथा विकसन्ति तत्र तत्र समाप्यन्ते ।  
किं मन्ये मातृप्नस एकयुवकोऽयं मान ॥]

किमन्यो युवा नास्ति येन तदुर्ध्वं मुखरो लोक इत्याक्षय ॥  
विरहोत्कण्ठिता वाचिद्वल्लभवचनस्य वचनातराद्विशेषमनुभवसिद्ध प्रदर्शयति—  
जाणि वआणाणि अम्हे वि जम्पिओ ताई जम्पइ जणो वि ।  
ताइ चिअ तेण पजम्पिआइ हिअअ सुहायेन्ति ॥ ४९ ॥

[यानि वचनानि वैयमपि जल्पामस्तौनि अल्पति जनोऽपि ।  
तान्येव तेन प्रजल्पितानि हृदयं मुँस्रयन्ति ॥]

चारस्यगनायोसाहयन्ती इती पत्या सह कृतकल्ला नायिकामाह—  
सख्याअरेण मग्गह पिअ जण जइ सुहेण चो कजम् ।  
ज जस्स हिअअइइअ तं ण सुइ ज तहिं णत्थि ॥ ५० ॥

[सर्वादरेण मूर्धैयध्वं प्रियं जन यदि मुखेन व कार्यम् ।  
यवस्य हृदयदयितं तन्न मुखं र्यत्तत्र नास्ति ॥]

तथा च यत्रानुरागं स एव नायकं सुखहेतुरिति भावः ॥

१ 'तत्रैव निगच्छति' ग. २ 'तत्रैव तत्रैव ग', 'तस्मिन्स्मिन्मर्ष्यते' घ.  
३ 'वयं जल्पामहे' ग ४ 'तान्येव' ग ५ 'मुखारयति' घ ६ 'सखादरेण अ  
ल्पत' घ. ७ 'मार्गयत' ग ८ 'यत्र तत्र' ग, 'यत्तस्मिन्' घ

तथैवापरगायामाह—यद्वा प्रसाधन विनैव कान्तदर्शनायागता दुहितरं प्रति कुच्यन्ती  
स्य कश्चिदाह—

दीसन्तो दिट्टिसुभो चिन्तिज्जन्तो मणयल्लहो अत्ता ।

उल्लावन्तो सुइसुहो पियो जणो णिच्चरमणिज्जो ॥ ५१ ॥

[दृश्यमानो दृष्टिसुखश्चिन्त्यमानो मनोबलम श्चश्रु ।

उल्लाप्यमान श्रुतिसुख प्रियो जनो नित्यरमणीय ॥]

उल्लाप्यमान कीर्त्त्यमान । नित्यति । तथाचाल प्रसाधनावासेनति भाव ॥

क्षीणधनत्वात्पूर्वं निष्कासित पुनरुपार्जितवनो दुहितृस्त्रेहमुपदर्शय त्वा कुटुम्बानुनीय  
मानो भुनक्तु सोपाक्रमप्रख्याद्यानमात्मनिन्दाव्याचेनाह—

ठाणव्भट्टा परिगलिअपीणआ उण्णईअ परिचत्ता ।

अम्हे उण ठेरपओहर व्व उअरे चिअ णिसण्णा ॥ ५२ ॥

[स्थानन्नष्टा परिगलितपीनत्वा उन्नत्या परित्यक्ता ।

वय पुन स्वविरापर्योधरा इवोदर एव निषण्णा ॥]

धनवन्त एव युष्माकमनुरूपा । वय तु हारितधनत्वादुदरभरणमात्रव्यापृता । तौ क  
मन्याभिर्युष्माक प्रयोननमिति भाव ॥

खण्डिता ऋचिसूर्यनमस्कारच्छलेन वा तमुपालभवे—

पञ्चसागअ रजितदेह पिआलोअ लोअणाणन्द ।

अण्णत्तखविअसव्वरि णहभूसण दिणवइ णमो दे ॥ ५३ ॥

[प्रत्यूषागत रैकदेह प्रियालोक लोचनानन्द ।

अन्यत्रक्षपितशर्वरीक नमोभूषण दिनपते नमस्ते ॥]

प्रत्यूषे प्रभाते आगतो द्वीपात्तरात्, पक्ष महिणात्तरगृहति । रक्त आरक्त, पक्षे  
उनुरक्त । अन्यमहिलादामित्त्वर्थत् । देहो यस्य स । तथा प्रिय आलोको यस्य स ।  
पक्षे प्रियालोकस्य महिलाजनस्य शोचनान दो यस्मात्स । अन्यत्र द्वीपात्तरे, पक्षे अ  
न्यस्वार्थे क्षपिता शर्वरी येन । नभसो भूषण, पक्ष परस्त्रीदत्तनखभूषण । दिनपते नमस्ते ।  
भास्वानिव दूरादेवाभिव दनीयस्त्व न स्वभिगम्य इत्यर्थ । अत्र सूर्यनायकयोदपमानोप  
मेयभावो व्यङ्ग्य ॥

किं गर्भवती भवती इति प्रियेण वृष्टा कश्चिदाह—

विवरीअसुरअलेह्ल पुच्छसि मह कीस गभसभूटम् ।

ओअत्ते कुम्भगुहे जल्लवकणिआ वि किं ठाइ ॥ ५४ ॥

१ 'भगिनि' ग २ 'पयोधरी' ग ३ 'रज्यमानदेह' घ ४ 'व' क.

[विपरीतसुरतलम्पट पृच्छसि भम किमिति गर्भसभूतिम् ।

अपृच्छे कुम्भमुखे जललवकणिकादि किं तिष्ठति ॥]

अपृच्छेऽधोमुखीकृते ॥

चामार्ता खाजन्यमप्यपल्पन्तीति निदर्शयन्कथिदाह—

अघासण्णविवाहे समं जसोमाइ तरुणगोवीहिं ।

बड्ढन्ते महुमहणे संवन्धा णिहुविज्जन्ति ॥ ५५ ॥

[अत्यासक्तविवाहे समं यशोदया तरुणगोपीभि ।

वर्धमाने मधुमधने संवन्धा निहूयन्ते ॥]

यशोदया सम ये स्वयंघास्ते निहूयन्त इत्यवयव ॥

अनुरूपनायकालाभेन निर्विण्णा कापि सोपालम्भ विधिमाह—

ज ज आलिहइ मणो आसावट्टीहिं हिअअफण्णअम्मि ।

त त चालो व्व विही णिहुअ हसिऊण पण्हुसइ ॥ ५६ ॥

[यद्यदालिखति मन आसावर्तिकाभिर्हृदयफलके ।

तत्तद्गोल इव विधिर्निभूत हसित्वा प्रोञ्छति ॥]

राग्निता काप्यन्यापदेशेन कान्त सचमत्कारमाह—

अणुहुत्तो करफसो सअलअलापुण्ण पुण्णदिअहम्मि ।

वीआसङ्गकिसङ्गअ एहिं तुह वन्दिमो चळणे ॥ ५७ ॥

[अनुभूत करस्पर्श सकलकलापूर्ण पूर्णदिवसे ।

द्वितीयासङ्गदृशाङ्ग इदानीं तव वन्दामहे चरणौ ॥]

करा किरणा, पक्षे कटे हस्त । सकलकलाभि षोडशकलाभि पूर्ण, पक्षे चतु  
पष्टिकलाभि पूर्ण । पूर्णदिवसे पूर्णमादिवसे, पक्षे पुष्यदिवसे । द्वितीया तिथि, पक्षे  
द्वितीया स्त्री । तस्या सङ्गेन कृशाङ्ग । 'द्वितीया सहधर्मिणी' इत्यमर । अत्र समासो-  
पल्लकारेण च द्रका तयोहवमानोपमेयभावो व्यङ्ग्य ॥

विरहोत्कण्ठिता द्यूतीमाह—

दूरन्तरिए वि पिण कह वि गिजत्ताइँ मज्झ णअणाइँ ।

हिअअ उण तेण सम अज्ज वि अणिवारिअ भमइ ॥ ५८ ॥

१ 'द्विक्' ग. २ 'अकल्पे' ग. २ 'आसावर्तिकाभि' ग. ३ 'आसङ्गकतिभि' ग.  
४ 'चालक इव' ग. ५ 'प्रमुपति' घ.

[दूरान्तरितेऽपि प्रिये कथमपि निर्घर्तिते मम नयने ।

हृदयं पुनस्तेन सममघाप्यनिवारितं त्रैमति ॥]

मानं कर्तुमसमर्थो नायिका प्रति दूती सप्रणयकोपमाह—

तस्स कदाकण्ठइए सहाअण्णणसमोसरिअकोवे ।

समुहालोअणकैम्पिपरि उवऊढा किं पेवज्जिहिसि ॥ ५९ ॥

[तस कथाकण्ठनिते शब्दाकर्णनसमपसृतकोपे ।

समुखालोकनकम्पनशीले उपगूढा किं प्रपत्ससे ॥]

संभ्रासमयसूचनव्याजेन दूती काचिदभिसारिका एतरथितुमाह—

भरणमिअणीलसाहृग्गखलिअर्चलणद्वविहुअवक्खउडडा ।

तरुसिहरेसु विहंगा कह कद वि लहन्ति संठाणम् ॥ ६० ॥

[भरणमितनीलशाखाप्रखलितचरणार्धविधुतपक्षपुटा ।

तरुशिखरेषु विहगा कथं कथमपि लभन्ते सस्थानम् ॥]

नीलेलनेनार्द्रतया क्षिप्रत्वम् । तत्र पदस्वतने हेतुरिति सूचितम् ॥

अधर्ती प्रशसता केनापि सगता काचिदसती समाह—

अहरमहुपाणधारिज्जिआइ जं च रमिओ सि सविसेसम् ।

असइ अलज्जिरि बहुसिक्खिरि त्ति मा णाह मण्णुहिसि ॥ ६१ ॥

[अधरमधुपानलात्सया यत्र रमितोऽस्ति सविशेषम् ।

असती अलज्जाशीला बहुशिक्षितेति मा नाथ मस्या ॥]

असतीरक्षणस्य दुःशक्ततामसती पतिं श्रावयन्ती काचिदाह—

खाणेण अ पाणेण अ तह गहिओ मण्डलो अडअणाए ।

जह जारं अहिणन्दइ मुक्कइ घरसामिए एन्ते ॥ ६२ ॥

[खानेन च पानेन च तथा गृहीतो मण्डलोऽसौत्या ।

यथा जारंभिनन्दति मुक्कति गृहस्वामिन्येति ॥]

गृहीतो बशीकृत । मण्डल कुकुर । 'मण्डल परिधीं कुष्ठे देशे द्वादशराजसु । क्ली-

१ 'निरृतेऽस्माकं' ग, 'निरृतानि मम नयनानि' घ. २. 'वदति' ग. ३. 'विवरि'  
ग. ४. 'विलिब्धिसि' ग. ५. 'शब्दायनाने' ग. ६. 'विपिते' ग, 'वेपनशीले' घ.  
७. 'विलायिष्यति' ग. ८. 'चरणम्' ग. ९. 'चरणम्' ग. १०. 'भक्षणम्' ग.  
११. 'खीरिण्या' घ. १२. 'अभिनन्दयति शब्दायति स्वामिन्यागच्छमाने' ग.

वेऽथ निवहे विम्ये त्रिषु पुत्रि तु कुङ्कुरे ॥' इति मेदिनीकोषः । भुङ्क्ते शब्दायत्वे । एति आगच्छति । सतिसप्तमी ॥

नायिकान्तरानुरक्तजामातृदर्शनेन स्वदुहितरमनुसोचन्ती व्यापश्चधू दृश क विदाह—

कण्डन्तेण अकण्डं पल्लीमञ्जम्मि विअडकोअण्डम् ।

पइमरणाहिं वि अहिअं वाहेण रआविआ अत्ता ॥ ६३ ॥

[कण्डूयता अकण्डे पल्लीमध्ये विकटकोदण्डम् ।

पतिमरणादप्यधिक व्याधेन रोदिता श्वैश्च ॥]

कण्डूयता तक्षणेन सूक्ष्म कुर्वता ॥

किमेति रोदिपीति सरया पृथा कान्चिदाह—

अन्हे उज्जुअसीला पिओ वि पिअसहि विआरपरिओसो ।

ण हु अण्णा का वि गई वाहोहा कह पुसिजन्तु ॥ ६४ ॥

[वय ऋजुकशीला प्रियोऽपि प्रियसखि विकारपरितोष ।

न खल्वन्या कापि गतिर्बाष्पोघा कथ प्रोच्छ्रयताम् ॥]

विकारेषु हावभावादियु परितोषो यस्य स । हावभावव्यभिक्ताभिर्नायिकाभिरपहतह-  
दयोऽयम् । मया तु किमपि न ज्ञायत इत्यतो रुद्यत इति भावः ॥

अनुरक्तायामपि मयि नानुरक्तोऽसीति कापि नायक सोपालम्भमाह—

धवलो सि जइ वि सुन्दर वह वि तुए मञ्ज रञ्जिअं हिअअम् ।

राअभरिए वि हिअए सुहअ णिहित्तो ण रत्तो सि ॥ ६५ ॥

[धवलोऽसि यद्यपि सुन्दर तथापि त्वया मम रञ्जित हृदयम् ।

रागभृतेऽपि हृदये मुमग निहितो न रक्तोऽसि ॥]

धवल शुभ्र श्रेष्ठ । रागो लौहित्यमनुरागश्च ॥

उज्जुसत्कुङ्कुमादिपरिमलसमुज्ज्वलनेपथ्या गुणहीना कामव्यनुवर्तमान कामिजनमुपह-  
सन्ती कान्चिदाह—

चञ्चुपुडाहअविअलिअसहआररसेण सित्तदेहरस ।

कीररस मगलग गन्धन्धं भमइ भमरउलम् ॥ ६६ ॥

१. 'कर्षता च कष्ट' ग. २. 'वाष्पेण रुदिता' घ. ३. 'माता' ग. ४. 'उज्ज्वल-  
शीला' ग. ५. 'विकारदेशी' ग. 'विहारपरितोष' घ. ६. 'प्रसार्थ-वे' घ. ७. 'भ-  
रिते' घ.

[चमुपुटाहृतविगेलितसहकाररसेन सिक्तदेहस्य ।

कीरस्य मार्गलग्न गन्धान्ध भ्रमति भ्रमरकुलम् ॥]

आतानुरागा गृहिणी विदिताभिप्रायं प्रवासिजनमाह—

एत्थ णिमज्जइ अत्ता एत्थ अह एत्थ परिअणो सअल्लो ।

पैन्यिअ रत्तीअन्धअ भा मह सअणे णिमज्जिहिसि ॥ ६७ ॥

[अत्र निर्भ्रजति श्वश्रूत्राहमन परिजन सकल ।

पथिक रात्र्यन्ध[क] मा मम शयने निर्भ्रजचमि ॥]

निमज्जति स्वपिति ॥

विरहानलस्य दुःसहस्य प्रतिपादयन्ती विरहिणी काचिदाह—

परिओससुन्दराइ मुरएसु लहन्ति जाइँ सोकराइ ।

ताइँ छिअ उण विरहे खाउग्गिण्णाइँ कीरन्ति ॥ ६८ ॥

[परितोषसुन्दराणि सुरतेषु लभन्ते यानि सौरयानि ।

तान्येव पुनर्विरहे खौदितोद्गीर्णानि कुर्वन्ति ॥]

लभन्ते । यामिन्य इति शेष । तान्येवेति । तथा च नैमानि विरहदुःखानि किं तु पूर्वं भुक्तानि सुखान्येवोद्गीर्णानि । एतद्रूपेण परिणतानीत्यपहृत्यकारो व्यह्व ॥

कीडपि साभिलाप कस्याऽपि नोन्नतपयोधराया हारं वर्णयति—

मगगं चिअ अलहन्तो हारो पीणुण्णआणँ थणआणम् ।

उव्विअगो भमइ उरे जमुणाणइपेणपुञ्जो ऋ ॥ ६९ ॥

[मार्गमिश्रलभमानो हार पीनोन्नतयो स्तनयो ।

उद्विधो भ्रमायुरभि यमुनानदीकेनैपुञ्ज इव ॥]

अत्र यमुनाकेनोदरवेन स्तनमुखरदयामना व्यह्वत । तथा च सरवाधानम्, तेन चानुपभोग्यवेति स्वयमूदनीयम् ॥

रात्रसंनिधौ विद्यता तेन मम मित्रेण किं उपादितमिति केनापि पृष्ट कश्चिदन्याप-  
देशेनाह—

एपेण वि वडवीअङ्कुरेण सअल्लणराइमज्जन्मि ।

तह तेण कओ अप्पा जह सेसदुमा तले तरस ॥ ७० ॥

१. 'प्रकटित' ग. २. 'वक्षिण' घ. ३. 'हे परिअ रत्तिअ' घ. ४. 'निषीदति श्वश्रूत्राहं' ग. ५. 'निषीदित्यपि' ग. 'निनलो भू' घ. ६. 'भरिउग्गिण्णाणि' ग. ७. 'भरितोद्गीर्णानि कीर्वन्ते' ग. 'उपत्र' ग. 'निभानि कीर्वन्ते' घ. ८. 'एव' ग. घ. ९. 'पीनोन्नताना स्तनानां' ग. घ. १०. 'पुण्ज' घ.



[एकेनापि वटवीनाङ्कुरेण सकलवनराजिमध्ये ।

तथा तेन कृत आत्मा यथा शेषद्रुमास्तले तस्य ॥]

एकाकिनापि तेन सकलविपक्षमध्ये तद्योत्कर्षं संपादितो यथा तत्प्रभावेण सर्वऽपि विपक्षास्तिरस्त्वता इति भावः । मूढेनापि तरुणा उत्कर्षाय चेतित त्व पुनर्महावराप्रभव-  
यथा न यतसे इति निरक्षयः क्वचित्प्रयुपदेशो व्यङ्ग्य इति कश्चिद् ॥

गुणिन प्रायो दरिद्रा भवन्तीति प्रतिपादयन्कविद्वारिश्च सवोष्याह—

जे जे गुणिणो जे जे अ चाङ्णो जे विड्डुविण्णाणा ।

दारिद्र रे विअकरण ताण तुम साणुराओ सि ॥ ७१ ॥

[ये ये गुणिनो ये ये च त्यागिनो ये विदग्धविज्ञाना ।

दारिद्र्य रे विचक्षण तेषा त्व सानुरागमसि ॥]

कोऽपि साभिलाष कस्याजि-मुखचन्द्र वर्णयति—

जइ कोत्तिओ सि सुन्दर सहलतिहीचन्द्रदसनसुहाणम् ।

ता मसिण मोइज्जन्तकनुअ पेक्खसु मुह से ॥ ७२ ॥

[यदि कौतुकिकोऽसि सुन्दर सकलतिथिचन्द्रदर्शनसुखानाम् ।

तन्मैसुग मोच्यमानकञ्चुक प्रेक्षस्व मुख तैसा ॥]

सखाय प्रति सरयुरुक्ति । दूला वा नायक प्रत्युक्ति ॥

श्रीफालगुणैऽपि नायकस्यानागमने समाश्वासयन्तीं सखीं प्रति समुत्सुका नायिके  
दमाह—

समविसमणिठिवसेसा समन्तओ मन्दमन्दसचारा ।

अइरा होदिन्ति पद्दा मनोरहाण पि दुल्लहा ॥ ७३ ॥

[समविषमनिर्विशेषा समन्ततो मन्दमन्दसचारा ।

अचिराद्गविध्यन्ति पन्थानो मनोरथानामपि दुर्लभा ॥]

अथवा संकेतस्थलान्तराभावेन मार्गासनकुशादौ दत्तसंकेतां ययां विना जनसंचारेण  
तत्स्थल संप्रति न संकेतयोग्यमिति बोधयन्ती वाचिदिदमाह ॥

१ 'विड्डु' ख २ 'अचरचका ये ये विस्तसज्जावा' घ. ३ 'कौतुकोऽसि' ग  
४ 'असुगोचुच्च' ग ५ 'असा' ख. ६ 'अइरीहा होन्ति' ख. ७ 'अतिदीर्घा  
भवतीव' ग.

पराङ्मुखे दत्तसन्नेताया पुत्रवध्वास्तन गत्वा प्रिय समुज्य परावृत्तौ तत्पत्रादिसन्धेन  
स्फुटेऽपराधे तामुपहसत्वा शब्दा प्रति बन्दिमुखेन ( २ ) बभूरिदमाह—

अइदीहराँइ बहुए सीसे दीसन्ति वसवचाइं ।

भणिप भगामि अत्ता तुम्हाणं वि पण्डुरा पुढी ॥ ७४ ॥

[अतिदीर्घाणि वध्ना शीपे हरयन्ते वशापत्राणि ।

भणिते भगामि शब्द युष्माकमपि पाण्डुरं पृष्ठम् ॥]

अत्ता इति श्वसूत्रोपधने देशी । पृष्ठशब्दस्य स्त्रीलिङ्गत्वमनुशासनात् ॥

मानवत्वा नायिकाया विरक्ता सेति विरज्यन्त नायक बोधयती इतीदमाह—

अत्यक्कुरुसण रणपसिज्जण अलिअवअणणिअन्धो ।

उम्मच्छरसंतावो पुत्तअ पअवी सिणेहस्स ॥ ७५ ॥

[आवृत्तवरोपकरणं क्षणप्रसादनमलीकवचननिर्वन्ध ।

उन्मत्सरयताप पुत्रक पदवी ज्ञेहस्य ॥]

अत्यक्केति आस्मिके अद्भुते वा देशी । उन्मत्सरेणि बहुले । 'उन्मूर्छनं प्रतिकूल-  
बाधा प्रकोपनम्' इति प्राचीनटीका । तथा च श्लेहबहुलतया त्वयि सा नानाविधान्ना  
नमार्गानाचरताति न तद्विरक्तिसम्भावनापीति यथापूर्वं त्वया तस्या व्यवहर्तव्यमिति  
इत्या उक्ति ॥

जनसमर्द्धे जातदशना कटाक्षादिमविक्षिपन्ती नायिकामनुरचेतिसदिहान नायक  
प्रोत्साहयन्ती सखी इती चेदमाह—

पिज्जइ कण्णअलिहिं जणरवमिलिअ वि तुज्ज सलावम् ।

दुद्ध जलसमिलिअं सा बाला राजहसि व्व ॥ ७६ ॥

[पिबति कर्णाञ्जलिभिर्जनरवमिलितमपि तव सलापम् ।

दुग्ध जलसमिलितं सा बाला राजहंसीर ॥]

अत्र पिबतीति कर्मर्थे पीयत इति कर्मप्रत्यय । प्राइते िङ्गवचनमात्रमिलायनु-  
शासनात् । अथ वा सा बाला राजहंसी वेति प्रथमा तथा राजहस्येवेति तृतीयार्थे ।  
तथा च पीयत इति यथाश्रुतमेव व्याख्येयम् । तथा च कोलाहलप्रविष्टस्यापि भवद्-  
वसो वैपाल्य प्रेमातिशयेन युभुत्सया गुंहीत्वा त्वदुक्तशब्दार्थं मन्त्रिकटे वर्णयामासेति  
स्वधि सात्प्रन्तमनुरचेति यथापूर्वं श्लो विधेय इति सहयुक्ति ॥

प्रियगुणविशेषा दूर्ला प्रति पृच्छन्ती नायिका प्रति काचित्सखी वदति—  
अइ उज्जुए ण लज्जसि पुच्छिज्जन्ती पिअस्स चरिआइ ।

सख्यङ्गसुरहिणो मरुवअस्स किं कुसुमरिद्धीहिं ॥ ७७ ॥

[अयि ऋजुके न लज्जसे पृच्छन्ती प्रियस्य चरितानि ।

सर्पाङ्गसुरभेर्मरुवकस किं कुसुमर्द्धिभि ॥]

‘पिण्डीतद्धो मरुवक् प्रस्थपुप्प पणिज्जक’ इत्यमर । तथा च सहजसौ गुणगणालङ्कृतस्य किं गुणान्तरं पृच्छतीति भावः ॥

साभाविकलौहिलवन्तौ करौ धातुरागेण रक्षाविति विभ्रमेण वारं वारं प्रथं मुग्धा निवारयन्ती दूष्याह—

मुद्धे अपत्तिअन्ती पवालअङ्कुरअवण्णलोहिअए ।

णिद्धोअघाउराए वीस महत्थे पुणो धुअसि ॥ ७८ ॥

[मुग्धेऽपत्ययती प्रवालङ्कुरवर्णलोहितौ ।

निर्घोतधातुरागौ निमित्ति स्वहस्तौ पुनर्घावयसि ॥]

अप्रलययन्ती प्रत्यय विश्वासमकुर्वाणा । धावयसि प्रक्षालयसि । नायिकामुग्धस्तयो साहजिकरागवत्त्व तटस्थ नायक प्रति ख्यापयत्वा दूष्या सत्या वा उर्ध्वपार्श्वगमनेन दुःखिता नायिका शरत्कालोपगमेन स शीघ्रमायास्यतीति समाश्वासनादमाह—

उअ सिन्धवपव्वअसच्छहाई धुअतूलपुज्जसरिसाइ ।

सोहंन्ति सुअणु मुक्कोअआई सरए सिअअभाइ ॥ ७९ ॥

[पश्य सैन्धवपर्षतसदृक्षाणि धृततूलपुञ्जसदृशानि ।

शोभन्ते सुतनु मुक्कोदकानि शरदि मित्ताभ्राणि ॥]

‘सुअणु’ इति पाठे सुअणेति पान्थसमुद्धिः । वर्षाकालोपगमेन यथा यात्रात्प्रातरगमनेन द्रव्यादिस्पर्शनीय गृहे न स्वयेभित्तादि भङ्गा कश्चिदाहेति ॥

सकेनस्थानवृक्षाना महिषसानिध्वेन दुरासदत्वात्खिद्यत नायकं खिद्यन्ती यिका प्रोत्साहयन्ती काचिदाह—

आउच्छन्ति सिरेहिं विवलिएहिं उअ रीडिएहिं णिज्जन्ता ।

णिप्पच्छिमवलिअपलोइएहिं महिसा कुडङ्गाइ ॥ ८० ॥

१. ‘अतिऋजुके’ ग. घ. २. ‘अप्रतियन्ती’ घ. ३. ‘सिग्धलोहितौ’ घ. ४. ‘इति व’ ग. ५. ‘घोततूलादिगमानानि’ ग. ६. ‘पुण्यन्तीव मुक्को’ ग. ७. ‘एहिं’ ग.

[आपृच्छन्ति शिरोभिर्विलितैः पश्य [खङ्गिकैः] नीयमानाः ।

निःपश्चिमवलितप्रलोकितैर्महिषाः कुञ्जान् ॥]

महिषापगमेन कुञ्जा इदानीं निराबाधसंकेतस्थानतामुपगताः । पशवोऽपि महिषा  
गीष्मादौ यत्र स्थित्वा छायामुपलभ्य सुप्तमासादितवन्तस्तत्परित्यागे तेषामपि दुःखं  
पवति परावृत्त्य पुनस्तत्पश्यन्तीति सदयमाना (सहृदयाना) सुप्तसनिधानस्थलमवश्यं वि-  
श्लोकनीयमत्याज्यं चेति भावः । निःपश्चिमानि चरन्माणि यानि वलितानि परावर्तनानि  
प्रलोकितानि च तैः ॥

निजदारिद्रेणाथु विमुञ्चन्तीं नायिकां समाश्वासयन्ती दूत्याह—

पुसउ मुहं ता पुत्ति अ वाहोअरणं विसेसरमजिज्जम् ।

मा एअं चिअ मुहमण्डणं ति सो काहिइ पुणो वि ॥ ८१ ॥

[प्रोच्छस्व मुखं तैत्पुत्रि च (पुत्रिके) बाष्पोपकरणं विशेषरमणीयम् ।

र्षा इदमेव मुखमण्डनमिति करिष्यसि पुनरपि ॥]

मण्डनाभावेन त्वमथु विमुञ्चसि किंतु सहजसौन्दर्यशालिन्यास्तव अथु एव मण्डनं  
भवतीति किं मण्डनान्तरेण । अथवा दरिद्रेयं मण्डनमिच्छतीति धनिनो मण्डनादिदानेन  
सुप्तसाध्येति तटस्थ प्रति दूत्या उक्तिः ॥

पश्चि कर्दमवाहुत्येन त्वद्गृहे कथमागन्तव्यमिति जिज्ञासु नायकं नायिका वा बोध-  
यन्ती काचिदाह—

मज्झे पअणुअपङ्कं अवहोवासेसु साणचिकिरहम् ।

गामस्स सीससीमन्तअं व रच्छामुहं जाअम् ॥ ८२ ॥

[मध्ये प्रतनु[क]पङ्कमुभयोः पार्श्वयोः श्यानकर्दमम् ।

ग्रामस्य शीर्षसीमन्तमिव रथ्यामुखं जातम् ॥]

प्रतनु स्वरपं कं जलं यस्मिन्नेतादशः पङ्को यत्र तादृशम् । तथा च रथ्योभयपार्श्वयोः  
श्यानकर्दमत्वम् । दिवा निरीक्षितेन पथा रात्रावागन्तव्यमिति काचिद्वोधयति ॥

काचन नायिका पितृगृहे स्थिता कचिदासक्ता । तद्भर्तारि समागते व्याकुलचित्तं  
नायकं समादधती दूत्याह—

अघरहागअजामाउअस्स विउणेइ मोहणुक्कण्ठम् ।

बहुआइ घरपलोहरमज्जणपिसुणो बलअसहो ॥ ८३ ॥

१. 'खङ्गिकैः' ग. २. 'निजपश्चिम' ग. ३. 'तावत्सुन्दरि बाष्पाचरणपरिशेष' ग,  
'तावत्पुत्रक बाष्पावतरण' घ. ४. 'मातस्त्वैव' घ. ५. 'उभयपार्श्वयोः सरस' घ.  
६. 'सीमन्तकमि' घ.

[अपराङ्गागतजामातुर्द्विगुणयति मोहनोत्कण्ठाम् ।

वध्वा गृहपश्चाद्भागमञ्जनपिशुनो वलयशब्दः ॥]

मोहनं सुरतम् । मञ्जनं शयनमद्रुसंमार्जनं वा । तस्य पिशुनः सूचकः । अपराङ्गागते  
स्वनेन दिनसत्त्वे जामाता श्वश्र्वारिसान्निध्येन यथागृहे न गमिष्यति । सा तु दिनशे  
एव तत्र स्वपिति त्वया तत्र गन्तव्यं तत्र सा मुलभेति भावः ॥

कृतकर्मण आरभतीदर्शनेनैव परे पलायन्ते तत्र भीरवस्तु सुतरां पलायन्त इ  
भीरता न कर्तव्येति कथितकथिद्वोधयति—

जुञ्ज्वचेष्टामोडितजर्जरकर्णस जुण्णमहस्स ।

कच्छावन्धो चिअ भीरुमहह्मिअं समुत्तरणइ ॥ ८४ ॥

[जुञ्ज्वचेष्टामोडितजर्जरकर्णस जीर्णमहस्य ।

कच्छावन्ध एव भीरुमहहृदयं समुत्सनति ॥]

पूर्वं तत्पतिरतिशूरः समर्थश्च स्थितः । सप्रति वार्धकेन क्षीणशक्तिरिति यथापूर्वं तद्वे  
धारणमात्रेण सम्भाभ भेतव्यम् । क्षीणशक्तिरिवेन तस्या एव स न रोचते । सर्वत्र  
धारणमर्थं त्वयि सा जेहमाचारिष्यतीति भीरतामपहाय तस्या तया प्रवर्तितव्यमि  
भावः ॥

कञ्चन गृहजमुन्दरी ह्यातगुणवती च प्रियापमानितापि न लभिता दीर्माग्यस्य  
चिरकालानवस्थावित्त्वेन हर्षितैव तां बोधयन्ती उग्याह—

औणत्तं सेण तुमं पइणो पइएण पइहसइण ।

महि ण उज्जसि णससि दोहग्गे पाअडिजन्ते ॥ ८५ ॥

[औणत्तं तेन त्यां पत्या प्रहतेन पटहस्येन ।

महि न उज्जसे नृत्यसि दीर्माग्ये प्रकटीक्रियमाणे ॥]

पत्या भर्ता पटहस्येन जिह्वोरवेण यदीर्माग्यमाहृतं तेन त्व लज्जिता न भवति, गृह-  
हयेवेति क्षमापति त्वमसि । अथवा प-युर्विरचति नृत्यधीत्वनेन परमगुन्दरीयं यदीन्द-  
येर्गदिता मुदसाध्येति तदस्यं वामुकं प्रति प्रलोनोकिर्द्वजाः ॥

सलस्य वाद्याधुर्यमात्रेण विश्वासो न विषेय इति कथिराह—

मा वषह वीसम्भं इमाणं बहुचाडुक्कम्मणिउणामम् ।

णिव्वत्तिअकज्जपरम्महाणं मुणआणं च सलामम् ॥ ८६ ॥

१. 'भीरुमहानां हृदयं समुत्तयति' ग. 'पलायमानानामशुद्धयं समुत्तयति' घ.  
२. 'आणन्दीअ तुमं' ग. ३. 'आणन्दयन्ती त्वं पशुः' ग-घ. ४. 'प्रकटावसने' ग.

[मा व्रजत विसम्भमेधा बहुचाटुकर्मनिपुणानाम् ।  
निर्वर्तितकार्यपराङ्मुखाणां शुनकानामिष खलानाम् ॥]

सलखभावोक्तिरियम् ॥

ग्रामान्तरं गच्छन्तीमसतीमनु व्याजेन सह प्रस्थितान्वहून्कामुबान्दया कापि परि-  
सपूर्वमिदमाह—

अण्णगामपत्त्या कडुन्ती मण्डलाणं रिञ्जोलिम् ।

अकरण्डिअसोहग्गा वरिससअं जिअउ मे सुणिआ ॥ ८७ ॥

[अन्यग्रामप्रस्थिता कर्षयन्ती मण्डलाना पङ्क्तिम् ।

अखण्डितसौभाग्या वर्षशतं जीवतु मे शुनी ॥]

मण्डला कुचुरा । रिञ्जोलीति पङ्कया देशी ॥

वाचनं देवरेऽनासक्त्या, तेन च प्रियवाक्यशतं प्रलोभ्य वशीकृता । ततश्च कु-  
तश्चिन्निमित्ताद्विरज्यति तस्मिन्नुपासकान्धुमिदमाह—

सचं साहसु देअर तह तह चडुआरण सुणएण ।

णिञ्चत्तिअकजपरम्मुहत्तणं सिक्खिअं कत्तो ॥ ८८ ॥

[सत्यं वचय देवर तथा तथा चाटुकारकेण शुनकेन ।

निर्वर्तितकार्यपराङ्मुख्येन शिक्षित वैसात् ॥]

तथा च त्वत्त एवेदं तेन शिक्षितमिति मत्पराङ्मुख्येन सर्वथा हेयमिति भावः ॥

तस्या एहेऽन्नादिसमृद्धया रात्री च तदपतिर्गायतीत्यनेन तपतिसानिधेन चन्द्रि-  
शोभिचेन च रात्रेरप्य सा न मुखसाधेति वाचित्कचिदोपयति—

णिप्पण्णसस्सरिद्धी सच्छन्दं गाइ पामरो सरए ।

दल्लिअणवसालितण्डुलधवलमिअङ्गामु राईसु ॥ ८९ ॥

[निष्पन्नमसन्नद्धि सच्छन्दं गायति पामरः सरदि ।

दलितनयशाश्रितण्डुलधवलमृगाङ्गामु रात्रिपु ॥]

शरत्काले शालीनां पार्श्वे दृष्टिः सगृहे दृष्टिः, तदपार्श्वे तदपार्श्वे सय क्षेत्रादी  
पृथ्वीति दृष्टिः सगृहे शरत्कालानिरिषकाले गुलभेति कश्चिद्विद्वोपयतीति वा ॥

१. 'इमान्—खलान्' ग. २. 'इदन्ती' ग घ. ३. 'भवतु मण्डलिका' ग.  
४. 'शुना' ग घ. ५. 'कुत.' ग घ.

वर्षाकाले पूर्ववत्सरीयकलमगोपीपशङ्कितक्षेत्रकर्मणं दृष्ट्वा कथित्पान्थ आह—

अहिलिज्जइ पङ्कअले हलालिचलणेण कलमगोवीए ।

केआरसोअहम्भणतंसद्विअ कोमलो चलणो ॥ ९० ॥

[अहिलिख्यते पङ्कतले हलालिचलनेन कलमगोप्याः ।

केदारस्रोतोर्विरोधतिर्यक् (त्र्यंश) स्थित कोमलश्ररणः ॥]

द्वितीयपाठे 'अभिलिष्यते पङ्कजलुब्धालिवलयेन' ॥

अथेन भागत्रयेण स्थितः । असपूर्ण इति यावत् । यदा पूर्ववत्सरे क्षेत्रमध्यस्थितजलस्य शोष आरब्धस्तदा कलमगोप्याः शालिपात्रेण सचेतस्य लभाषयोधेन दुःखोपशये सपूर्णशरणो न पङ्कमध्ये प्रतिविम्बितः । स च वर्षान्तरे कर्मणावसरे दृष्ट । तेनाः क्षेत्रे कलमोत्पत्तिमारभ्य तत्पारम्पर्यन्तं कलमगोपी पान्थादिमुलभा स्थास्यतीति तत्प्राप्त्याशा पान्थो निवेदयति स्मरति वा पूर्वाऽनुभूतमर्थमिति भावः ॥

दिअहे दिअहे सूसइ सकेअअभङ्कवट्टिआसङ्का ।

आवण्डुरोणअमुही कलमेण समं कलमगोवी ॥ ९१ ॥

[दिवसे दिवसे शुष्यति संकेतकभङ्गवर्षिताशङ्का ।

आपाण्डुरावनतमुखी कलमेन समं कलमगोपी ॥]

यथा यथा कलमक्षेत्रमापाण्डुर भवति, तथा तथा कलमगोपी सचेतस्यलापगमन्तिन्तयावनतमुखी भवतीति कलमक्षेत्रकाले मुखसाभ्येति तटस्थ प्रति कस्याधिदुक्तिः ॥

णवर्कम्पिएण हेअपामरेण दट्टूण पैउहारीओ ।

मोक्तव्वे जोत्तअपग्गहम्मि अवहासिणी मुक्का ॥ ९२ ॥

[नवर्कम्पितेन हृतपामरेण दृष्ट्वा पैउदपङ्की ।

मोक्तुं वै एतावद्धसित्वा व्याक्रोशिनी मुक्ता ॥] (२)

विचार्यमेतत् ॥

१. 'अहिलिज्जइ' ग. २. 'वलण' ग. ३. 'रुन्धण' ग. ४. 'अभिलिष्यते' ग. 'अभिलिष्यते' घ. ५. 'पङ्कजलुब्धालिवलयेन' ग घ. ६. 'स्रोतोन्तरोधनतिर्यक्' ग. 'स्रोतोरोधनतिर्यक्' घ. ७. 'स्थितकोमलौ चरणौ' ग. ८. 'कर्मिण' ख. ९. 'उअ' ग. १०. 'पाणिहारीओ' ग. ११. 'नेविअपग्ग' ग. १२. 'कर्मणा पश्य' ग. 'कर्मि' घ. १३. 'पानीयभक्तहारिकाम्' ग. 'अजायाहारी' घ. १४. 'मोक्तुं' घ. १५. 'मोक्तव्वे योक्तृकप्रहोऽवकाशिनी' घ. 'निपुटप्रहो आशिनी' ग. 'मोक्तव्वे योक्तृकप्रहोऽवकाशिनी' घ.

[धन्या बधिरा अन्धास्त एव जीवन्ति मानुषे लोके ।  
न शृण्वन्ति पिशुनवचन खलानामृद्धिं न प्रेषन्ते ॥]

भसदरवां कस्याचिदात्तकः बधिदुस्तम एव सख्या वार्यमाणः सासूयं त  
दति—

एहिं वारेइ जणो तइआ मूइहओ व्व गओ ।

जाहे विसं व जाअं सब्वङ्गपहोहिरं पेम्म ॥ ९६ ॥

[इदानीं वारयति जनस्तदा मूलकः कुनापि वा गतः ( आसीत् ) ।

यदा विपमित्वा ज्ञातं सर्वाङ्गधूर्णित प्रेम ॥]

कस्याधित्तस्त्री सत्या अनुरागातिशयं नायकविषये सूचयन्ती नायकप्रे कथयति-  
कह तंपि तुइ ण णाअं जह सा आसन्दिआणं बहुआणम् ।

काऊण उच्चवचिअं तुह दंसणडेहत्ता पडिआ. ॥ ९७ ॥

[कथं तदपि त्वया न ज्ञातं यथा सा आसन्दिकानां बहूनाम् ।

कुर्या उच्चावचिका तव दर्शनलाटसा पतिता ॥]

राप्रियेपे कुट्टः शब्दं करोतीति कुट्टानां खान्नायिक रूपम् । तच्छ्रुत्वा तस्य  
भेदनमुत्प्रेक्ष्य विवृणोति कथितम्—

घोराणं कामुआणं अ पामरपहिआणं कुकुडो वअइ ।

रे रमह वहह वाइयह एर्य तणुआअण रअणी ॥ ९८ ॥

[घोरान्कामुकांश्च पामरपथिकाश्च कुकुटो वदति ।

रे रमत बहूत वाइयत अत्र तन्वी भवति रजनी ॥]

यथायोगमन्वयः, न तु यथासंक्षमम् ॥

कयोधिप्रायिकनोरन्धोन्धं कलहं इतश्चो कटाक्षान्तरेण निरीक्षणं कुर्वतोरेन्नन्त  
मन्धोन्धं कटाक्षयोः संनिपाते सम प्रहसितबोधेष्टितमेका परम्याः कथयति—

अण्णोण्णकडक्खन्तरपेसिअमेठीणविट्ठिपसराणम् ।

दो, चिअ मण्णे कअभण्णणाइं समअं पहसिआइं ॥ ९९ ॥

[अन्धोन्धकटाक्षान्तरेपेष्टितनिलितदृष्टिप्रसरी ।

द्वयवि मन्वे कृतकटहौ समक प्रहसितौ ॥]

मण्चनशब्दः कलहविशेषे वर्तते ॥\*



७ शतकम्]

गाथासप्तशती ।

२०७

अथ समाप्ता इरनमस्काररूप मङ्गलमाचरति—

संज्ञागहिअजलज्जलिपडिमासंकन्तगोरिसुहकमलम् ।

अलिअं चिअ फुरिओट्टं विअलिअमैन्वं हरं णमह ॥ २०० ॥

[सध्यागृहीतजलाज्जलिप्रतिमासङ्कान्तगौरीमुखकमलम् ।

अलीकमेव स्फुरितोष्ठं विगलितमैत्र हर नमत ॥]

हरस्यापि गौरीमुखकमलप्रतिबिम्बं दृष्ट्वा सध्यारूपनित्यकर्माहमन्त्रलोपो भवति, किं  
 नरस्मदादेलोकस्य प्रियात्तानिध्ये व्याकुलचित्ततेति सर्वथा स्त्रीसङ्गः परिहरणीय इति  
 ज्ञात्पर्यार्थः ॥

इअ सिरिहालविरइए पाउअकव्वम्मि सत्तसए ।

सत्तमसअं समत्तं गाहाणं सहावरमणिज्जम् ॥

[इति श्रीहालविरचिते प्राकृतवाक्ये सप्तशते ।

सप्तमशतं समाप्त गाथानां स्वभावरमणीयम् ॥]<sup>3</sup>

हाल इति राज्ञः शालिवाहनस्य सङ्गान्तरम् । गाथेति च्छन्दः । इतिशब्दो प्रथम-  
 रि समाप्ता ॥

इति गङ्गाधरभट्टविरचिता प्राकृतगाथासप्तशतीटीका समाप्ता ।